जल-चिकित्सा-विज्ञान

जल-चिकित्सा-विज्ञान

देवराज विद्या वाचस्पति

गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी
यन्त्रालय में मुद्रित
सम्वत् १९८६ वि.

प्रथमबार १००० } { मूल्य सजिल्द २)
बिना जिल्द १॥।)
पैकिङ् पोस्टेज अतिरिक्त

पूज्य पिताजी को

लेखक के पूज्य पिता



ला० ज्वाला प्रसाद जी

जल--चिकित्सा
विज्ञान

विषय सूची

प्रारम्भिक वचन

गुरुकुल विश्वविद्यालय की सम्वत् १६८६ की चतुर्दश श्रेणी के कई ब्रह्मचारियों की बात चीत से मुझे ज्ञात हुआ कि बिजनौर में महाशय कृष्ण-स्वरूप जी श्रोत्रिय का लूईकूने आश्रम के नाम से एक जल-चिकित्सालय स्थापित है। एक ब्रह्मचारी मुखदूषिका रोग की चिकित्सा भी सफलता के साथ करवाके आया था। उस के मुख से वहां की बहुत प्रशन्सा सुनी। उस की प्रशन्सा में उसने एक लेख भी 'ज्योति' मासिक पत्रिका में दिया। मैंने उसको कहा कि इसके साथ साथ जल-चिकित्सा के सिद्धान्त और प्रयोग भी लिखने चाहियें। मैंने उसे उत्साह दिया कि यह कुछ कठिन कार्य नहीं है प्रयत्न करो सब हो जायगा और तुमने वहां अच्छी प्रकार रह कर सब देखा

भोला भी है। दूसरे को कहने से बात मुझ ही पर आपड़ी। मैंने कई ब्रह्मचारियों को जलचिकित्सा के सिद्धान्त आयुर्वेद के आधार पर समझाने आरम्भ किये। ब्रह्मचारी कहने लगे कि इतना तो श्रोत्रिय जी भी नहीं जानते, आप बहुत जानते हैं। मैंने बहुत समझाया कि मैं कुछ नहीं जानता। इस विषय के ज्ञाता श्रोत्रिय जी ही हैं। मैं तो आयुर्वेद के आधार पर तुम्हारे सामने बोलता चला गया, वस्तुतः मुझे इस विषय में ज्ञान नहीं के बराबर है। सब कुछ प्रयत्न करते हुए भी ब्रह्मचारियों की ज्ञान पिपासा मुझे कब चैन लेने देती थी। ब्रह्मचारियों की श्रद्धा ने बाधित किया कि मैं जलचिकित्सा पर वक्तृता दूँ या निबन्ध पढ़ूं। अन्त को गुरुकुल की आयुर्वेद परिषद् में जलचिकित्सा-विज्ञान विषयक एक निबन्ध पढ़ा। मैं तो इस परोपकार से बचना चाहता था, परन्तु जाल में हाथ डाल कर जितना खैंचे उतना ही फंसता है। मैं भी छुटने का प्रयत्न करते करते अधिक २

फंस गया। जितने श्रोता उपस्थित थे प्रायः सब ही ने वह लेख बहुत पसन्द किया। सभापति रामदास जी गौड़ थे जिन्होंने जलचिकिसा पद्धति की और इस लेख की बहुत २ प्रशन्सा की और अपनी उत्तम सम्मति प्रदान कर इस लेख को अलंकृत किया। इतना हो नहीं परन्तु गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) डा० राधाकृष्ण जी इस लेख को पढ़ कर अत्यधिक प्रसन्न हुए। इन दोनों ने इस लेख को जनता तथा विचारशील चिकित्सकों के लिये उपयोगी समझ कर पुस्तकाकार में छपवाने के लिये मुझे साग्रह प्रेरित किया। इन्कार करने की आदत का मुझ में प्रायः अभाव होने से मैंने ऐसा करना भी स्वीकार कर लिया। मैंने यह देख कर कि यह निबन्ध पुस्तकाकार में तो होना ही है, अतः जलचिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों को दिखलाने के लिये निबन्ध के साथ एक विस्तृत भूमिका भी लिख ही डाली।

इस पुस्तक में यद्यपि रोगों की चिकित्सा भी दिखलाई है तथापि जलचिकित्सा-विज्ञान पर अधिक बल दिया है । प्रायः लोग समझे हुए हैं कि जो मनुष्य वाष्प-स्नान, कटि-स्नान, और मेहन-स्नान जानता है और करता है तथा एक टब मंगाकर उस में पानी में बैठकर मध्य स्थान को रगड़ा करता है वह पूरा जलचि-कित्सक है । उसे इस विषय में कुछ ज्ञातव्य शेष रह नहीं गया है । परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है । यह एक अद्भुत विज्ञान है । आयुर्वेदज्ञ इस के रहस्य को अच्छी प्रकार समझ कर लाभ ले दे सकता है।

जिन महानुभावों के कारण यह अल्प ज्ञान मेरे द्वारा जनता के सम्मुख उपस्थित हुआ है वे धन्यवादार्ह हैं।

जो कुछ इस में लिखा गया है इतना ही सब इस विषय में पर्याप्त है ऐसा मैं नहीं समझता। इस लिखने में कुछ अशुद्धि भी नहीं रही होगी

यह भी मैं नहीं समझता । पाठक इस विषय को समझ कर अनुभव लें और अपने २ अनुभव से मुझे सूचित करें । उनके यथार्थ अनुभव उन के नाम से अगले संस्करण में प्रकाशित कर दिये जावेंगे और जो अशुद्धि ज्ञात होगी वह भी शुद्ध कर दी जावेगी ।

गुरुकुल कांगड़ी
११ । ८ । ८६ } देवराज

प्रस्तावना

जल शरीर का एक आवश्यक भाग है। लगभग शरीर का ६०% भार तो जल ही बनाता है। इसी लिये तो शरीर इतना कोमल और लचकीला है। ज़रा त्वचा को कुछ समय के लिये जल (स्वेद) से तर न होने दीजिये तो फिर देखें त्वचा कितनी शुष्क होकर फटने लगती है। जल न पिया जाय तो आंखें ही शुष्क होकर अपनी चमक खो बैठती हैं।

जल केवल इसी लिये ही नहीं पिया जाता कि यह शरीर का पर्याप्त भाग बनाता है, प्रत्युत इसके अन्य अत्यावश्यक लाभ भी हैं। यही कारण है कि हम अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक जल पीते हैं। यह जल अपना कार्य समाप्त करते करते भी हमारे काम का पदार्थ है।

भोजन के साथ जल इस लिये पीते हैं कि इस से भोजन द्रवीभूत होकर शीघ्र पचता है। जल बड़ी अंतड़ियों में मल को नरम रखता है। रक्त में प्रविष्ट होकर जल सब प्रकार की विषों को घोल लेता है। तन्तुओं को धोकर जल उन्हें विष रहित करता है। इस विष को घोल कर जल इसे स्वेद और मूत्र द्वारा बहा ले जाता है।

कैसा अद्भुत पदार्थ है। वास्तव में इस के बिना जीवन रहना कठिन है। ज़रा शरीर में से जल निकलने दीजिये, कैसा बुरा हाल हो जाता है अधिक मूत्र आगया—जैसे मधुमेह में—तो प्यास बेचैन करती है। अतिसार या विषूचिका के रोगों में जल अधिक निकल गया तो शरीर के सब स्थान जलरहित से हो जाते हैं। रक्त गाढ़ा हो जाता है, मूत्र बनना बन्द हो जाता है, त्वचा सूख जाती है, सब तन्तु सुकुड़ जाते हैं, गालें पिचक जाती हैं। आंखें अन्दर धस जाती हैं।

इसके विरुद्ध शरीर में से जल न निकलने दें, स्थान २ पर जल एकत्रित हो जाने से अंग सूज जावेगें और शोथ हो जावेगी। पैर सूज जाते हैं, आंखें सूज जाती हैं, टांगें फूल जाती हैं और अन्त में सारा शरीर शोफमय हो जाता है।

स्पष्ट है कि जल शरीर में जितना आवश्यक है उससे कम या अधिक हो जाने पर उतना ही हानिकारक है। रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जल की कमी के लिए जल किसी रूप में किसी मार्ग से दें। जल की अधिकता के लिये किसी प्रकार जल निकालें; यही जलचिकित्सा है। पंचभूतों में से यह एक महत्व पूर्ण भूत है, इसी लिये सुयोग्य लेखक ने दार्शनिक विधि से और बड़ी उत्तम विधि से इसका विवेचन करते हुए चिकित्सा में इसका लाभ दिखलाया है।

लेखक के विचार मौलिक हैं। उनका आधार प्राचीन है, परन्तु कल्पनायें नवीन हैं। उदाहरण के तौर पर—

१. पञ्चभूतों के कार्यों में विषमता दूर करके समता पैदा करने का नाम चिकित्सा है। अन्य तत्वों का कार्य सम्पादन करने के लिए जल अच्छा आधार चुना है। जल शरीर में शीघ्र ही जज़्ब हो जाता है। जल अन्य तत्वों से भावित भी शीघ्र और आसानी से हो जाता है। जल को भिन्न २ रङ्गों की बोतलों में रख कर सूर्य की रश्मियों के द्वारा भिन्न २ बोतलों से भावित करके चिकित्सा के लिये अच्छा प्रकार चुना है।

२. चिकित्सा के शोधन और शमन दोनों प्रकारों में से शोधन की प्रधानता को ध्यान में रख कर और जल के शोधन गुण को दृष्टि में रख कर जल चिकित्सा की अन्य चिकित्सा पद्धतियों से भली प्रकार विशेषता दिखलाई है।

३. वात पित्त श्लेष्मा में से पित्त और श्लेष्मा के कार्यों तथा शरीर धातुओं के कार्यों का सञ्चालन वात पर आश्रित है। वात संस्थान पर जल-चिकित्सा पद्धति में निर्दिष्ट उपायों से सीधा और

शीघ्र प्रभाव उत्पन्न होता है। जब कि अन्य पद्धतियों में उतना सीधा नहीं होता। इस विचार को पुष्ट करके जल चिकित्सा पद्धति का महत्व बहुत बढ़ा दिया है।

४. रोगों के क्रिमियों की प्रकृति के प्रतिकूल भिन्न २ तत्वों से भावित जल को सूचीवेध द्वारा वा अन्न प्रणाली द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराके क्रिमियों के नाश का सरल उपाय जलचिकित्सा पद्धति में कितना उत्तम सन्निविष्ट है यह बिलकुल नवीन विचार चिकित्सकों के सामने लेखक ने रक्खा है। इसके आधार पर परीक्षण करके विज्ञ चिकित्सक बहुत लाभ उठा सकते हैं। और दवाइयों के कृत्रिम उपायों के झंझटों से बहुत कुछ बच सकते हैं।

लेखक के परिश्रम, मौलिक विचार और इस पद्धति की मैं हृदय से सराहना करता हूँ और आशा रखता हूँ कि लेखक के इस श्रम को चिकित्सक जनता अपनाकर सफल करेगी और लेखक

को अधिक उत्साहित करेगी। प्रचलित पुस्तकों में निर्दिष्ट बातों की अपेक्षा बहुत अधिक नवीन बातें इस पुस्तक में पाठकों को मिलेंगी॥

राधा कृष्ण

२०—३—८६ B.Sc., M.B., B S.

——————अध्यक्ष, आयुर्वेद महाविद्यालय

३ जुलाई २६. गुरुकुल-कांगड़ी

अनुवचन

आज कल जल-चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत समझी जाती है। और प्राकृतिक चिकित्सा उन उपचारों का समूह है जो प्रकृति में साधारणतया पाये जाते हैं, अथवा सुलभ और अनुकूल होते हैं, परन्तु प्रकृति शब्द इतना व्यापक है कि लोग मानव प्रकृति से अत्यन्त दूर चले जाते हैं और एक दम पशुओं की प्रकृति से मिलान करने लग जाते हैं। पाश्चात्य भाषाओं में इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं साथ ही साहसिकों ने बहुत अद्भुत अद्भुत प्रयोग भी कर डाले हैं। पशु की तरह जङ्गल में हिम, आतप, वर्षा, वात के अत्याचारों को सहते हुए नङ्गे जीवन बिताया है। कोई झोंपड़ी नहीं बनायी और न ओढ़ने बिछाने

का कोई प्रबन्ध किया। और न अपने साथ मनुष्यता की सामग्री के नाम से एक लोटा भी रक्खा। पक्षी तो घोंसले बनाते हैं, परन्तु इन्होंने इतना भी न किया। मांदों और कन्दराओं में छिप रहते थे। देखा गया कि कई मास के ऐसे प्रवास के बाद भी स्वास्थ्य अच्छा ही रहा। इस प्रकार के प्रयोक्ताओं का कहना यह है कि पूर्ण प्राकृतिक जीवन ही मनुष्य के लिये लाभदायक है और साम्प्रतिक पाश्चात्य सभ्य जीवन हानि कारक।

परन्तु मेरी समझ में यहां कुछ थोड़ा सा भ्रम है। प्राकृतिक जीवन और उस में विकार उत्पन्न होने पर प्राकृतोपचार मानव प्रकृति के अनुकूल होने चाहिये। हमें पशुओं से अनुकूलता खोजने की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्यों का विश्वास है— और यह विश्वास उनके सम्बन्ध में सत्य तथ्य पर ही अवलम्बित है— कि पशुओं से विकसित होते २ धीरे २ वे मनुष्य योनि को प्राप्त हुए हैं। परन्तु भारत की आर्य सन्तति अपना

उन्नत पशुत्व से विकसित होने में नहीं मानते। हम तो सृष्टि की आदि से ही पूर्ण विकसित मनुष्य चले आये हैं। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में मनुष्य की विशेषता अग्नि द्वारा अन्न के पकाने में मानी गई है। परन्तु हमारे यहां तो अनादि काल से केवल अग्नि से परिचित ही नहीं हैं, प्रत्युत अग्नि कर्म में पूर्ण निष्णात होते आये हैं। इसी प्रकार मनुष्य की जितनी विशेषतायें हैं, वे संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों में, सभी पूर्ण विकसित रूप में पाई जाती हैं। अतः हमारे लिए प्राकृतिक चिकित्सा सीधा सादा संयमित आहार विहार वाले जीवन के अनुकूल होनी चाहिये। आयुर्वेद में इन सब भागों पर पूर्ण विचार करके ही उपचार दिये गये हैं। परन्तु इस सम्बन्ध का आयुर्वेद का यथार्थ परिशीलन बहुत कम होता है। और अपने यहां शास्त्रों में बताई विधियों को न जानने के कारण लोग बड़े चाव से पाश्चात्य आधुनिक और अनेक अप्राकृतिक विधियों की ओर दौड़ते हैं। जल-

चिकित्सा पाश्चात्य प्राकृतोपचारों में मुख्य समझी जाती है। उस में भी लूईकूने की विधि हमारे देश में बहुत फैली हुई है। और इसकी बहुत परीक्षा भी हो चुकी है। इससे लोगों ने लाभ भी उठाया है। परन्तु मेहन-स्नान से युवकों को लाभ के बदले हानि भी पहुंची है, और यह आवश्यक नहीं है कि लुई कुहने की जल चिकित्सा जो कोई माने वह उसकी सारी विधियों को अवश्य ही माने। प्रस्तुत पुस्तिका में हमारे मित्र पं० देवराज विद्या-वाचस्पति ने आयुर्वेद पर अवलम्बित प्राकृतो-पचार की चर्चा करते हुए घर्षण स्नान के साथ २ लूईकूने के मेहन स्नान के बदले अपने निबन्ध में सीवनस्नान का वर्णन करके जल चिकित्सा के अभ्यासियों के लिये एक नवीन परन्तु दोष से रहित उपयोगी उपचार बताया है। श्रद्धेय वर पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की लिखी जल चिकित्सा नाम की पोथी लूई कूने पर अवलम्बित है। परन्तु इस पुस्तिका में यह विशेषता है कि

इस में अनेक बातें उसके अतिरिक्त भी बताई गई हैं। मुझे आशा है कि इस छोटी सी पुस्तिका से प्राकृतोपचार के प्रेमियों को अनेक उपयोगी बातें मालूम होंगी।

गुरुकुल कांगड़ी
१।४।८६ } रामदास गौड़

भूमिका

(१)

निवेदन

जल चिकित्सा के विषय में यह छोटा सा लेख इस बात को मान कर लिखा गया है कि इस का पढ़ने वाला आयुर्वेद के सिद्धान्तों से अच्छी प्रकार परिचित है। इस लेख में जिन २ सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है उन के निरूपण का अभिप्राय इतना ही है कि जलचिकित्सा के वे सिद्धान्त आयुर्वेदोक्त सिद्धान्तों के साथ किस प्रकार सम्बद्ध हैं, अथवा आयुर्वेद के सिद्धान्त जल-चिकित्सा में किस प्रकार लागू हैं। इस प्रकार यह दिखलाया गया है कि जल-चिकित्सा आयुर्वेद से बाहिर वा पृथक् नहीं है।

इतना ही नहीं प्रत्युत आयुर्वेद बिना जाने जल चिकित्सा से पूरा २ लाभ भी नहीं उठाया जा सकता। लाभ न उठाने के अतिरिक्त कई बार, आयुर्वेद सिद्धान्तों की अनभिज्ञता के कारण, बड़ी हानि उठानी पड़ती है। यदि एक २ सिद्धान्त का विस्तृत निरूपण किया जाता तो उतना ही कहना पड़ता जितना आयुर्वेद शास्त्र में विस्तार से निरूपण किया है, इस प्रकार एक बड़ा पोथा बन जाता। इसी लिये रोग का निदान, रोग की सम्प्राप्ति, रोगी के भोजन की व्यवस्था, रोगी परिचर्या और चिकित्सा इन विषयों का सामान्य ज्ञान कराने के अतिरिक्त इनको विस्तार से नहीं लिखा है। आयुर्वेद सिद्धान्त सम्मत जल-चिकित्सा पद्धति को स्वीकार करते हुए जल-चिकित्सा को औषध चिकित्सा के सदृश ही निरूपण किया है।

अर्थात् जैसे औषध चिकित्सा में कोई द्रव्य पाञ्च भौतिक होने से वह चिकित्सा मिश्रित कहलाती है, वैसे जल-चिकित्सा में भी जल को अन्य तत्वों

से भावित करके प्रयोग करने से जल-चिकित्सा भी मिश्रित कहलाती है। अतः जल-चिकित्सा को भी शुद्ध-जल-चिकित्सा न समझ कर मिश्रित चिकित्सा ही समझना चाहिये। परन्तु चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर औषध-चिकित्सा से जल-चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ है, यथा शक्ति इसको दिखलाने का प्रयत्न किया है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान काल में जल-चिकित्सा के पुनरुद्धार का श्रेय डा० लूई कूने को है, परन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्त के आधार पर जल-चिकित्सा पद्धति में अब भी अधिक उन्नति की जा सकती है। इस उन्नति का निर्देश लेख में भली प्रकार किया है। रोगों में दोषों के लक्षणों के अनुसार जल-चिकित्सा में औषध द्रव्यों का भी, जल चिकित्सा के सिद्धान्तों में जहां तक बाधा न हो वहां तक, प्रयोग हो सकता है। जल चिकित्सा में जल को अन्य तत्वों से भावित करने का प्रकार रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्तों से लिया

गया है। रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्त भी आयुर्वेदीय पाञ्चभौतिक वा त्रिदोष सिद्धान्तों पर ही अवलम्बित हैं। रश्मि चिकित्सा का सम्बन्ध जल चिकित्सा के साथ होने से रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कुछ कर दिया है। सूर्य की रश्मियां भिन्न २ रङ्गों की किरणों से मिल कर बनी हुई हैं। भिन्न २ रङ्गों की किरणों का पदार्थों पर भिन्न २ प्रभाव होता है। इसी सिद्धान्त को लेकर जल को भिन्न २ रङ्गों की किरणों से भावित करके अथवा सीधा भिन्न रंगों की किरणों को ही शरीर पर डाल कर विशेष परिवर्तनों को उत्पन्न करके शारीरिक अस्वास्थ्य दूर किया जाता है। सूर्य की विशेष किरणों से भावित जल का प्रयोग जैसा रश्मि चिकित्सा में है वैसा जल चिकित्सा में भी है। रश्मि जलचिकित्सा के सिद्धान्त अन्त में परिशिष्ट में दे दिये हैं वहां देख लेने चाहियें।

पं० ज्वालाप्रसाद झा की बनाई पुस्तक (Chromopathy) में ग्रन्थकर्ता के अनेक अनुभव दिये हुए हैं, उन के आधार पर रश्मि जल-चिकित्सा के सिद्धान्त स्वयं निश्चित करके आपके सामने रक्खे हैं। किस २ रोग की चिकित्सा में पं० ज्वालाप्रसाद जी किस प्रकार सफल हुए इस का निर्देश, 'रोग और उन की चिकित्सा' नाम से एक विस्तृत सूची बना कर, कर दिया है।

मैंने यह लेख अपनी आदत के अनुसार आयुर्वेद के सिद्धान्तों को लक्ष में रख कर बिना किसी पुस्तक के आश्रय अपने स्वतन्त्र विचार से लिख डाला था। बहुत से मनुष्य जिन्हें स्वयं सोचने की आदत नहीं होती अर्थात् जिन की ज्ञान चक्षु विकृत होती है देखने के लिये ऐनक रूपी प्रमाणापेक्षी होते हैं उन के सन्तोष के लिये वृद्ध जनों की अनुमति से कुछ २ प्रमाणों का भी निर्देश कर दिया है। यदि प्रमाणों से सन्तोष न

हो तो कुछ आश्चर्य नहीं, ठीक ही है, इस के लिये मेरा दोष समझिये कि मुझे दूसरे के मुख से बोलने की आदत नहीं अपने ही मुख से मैं बोला करता हूँ।

जल चिकित्सा सम्बन्धी यह लेख सरल भाषा में थोड़े में ही बहुत भाव को प्रकट करते हुए लिखा है। आशा है आप इसे सावधान होकर सुनेंगे और पढ़ेंगे तथा मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। किसी रंग के जल से उस रंग वाली बोतल का जल ऐसा समझना चाहिये।

(२)

रोग और उन की चिकित्सा

ज्वर—

१. Typhus or brain fever (मस्तिष्क ज्वर) with the looseness of the bowels

नीला प्रकाश, नीला जल

२. Typhoid fever (आन्त्रज्वर)

नीला जल

३. Ramittent and Intermittent fevers

(सतत और सन्तत ज्वर)

नीलाजल, नीला प्रकाश

४. Malaria. (ऋतुज्वर)

ठण्डा पीला जल दो औन्स की मात्रा में कब्ज़ के लिये आधी रात में दो बार।

नीलाजल ज्वर के लिये

५. Eruptive fevers (पिडकाज्वर)

i Smoll pox मसूरिका (चेचक)
ii Chicken pox विस्फोटिका
iii Measles रोमान्तिका

नीला जल प्यास में।
नीला प्रकाश प्रलाप में।
वाष्प स्नान

iv Erysipelas

हरा प्रकाश १, २ घंटे तक।

६. श्लैष्मिक ज्वर (Phlegmetic fevers)

पित्त की कमी से। रात को वृद्धि।

श्वेत मूत्र आना। कभी कब्ज़ कभी दस्त। शौच का रङ्ग सफेद।

नारंगी जल की ३, ४ मात्रा।

बच्चों के लिये १, २ मात्रा।

७. Mucous fevers

i Influenza श्लैष्मिक ज्वर

हरा प्रकाश, हराजल।

ii Hooping cough कूकुर कास

गहरा नीला जल।

iii Croup गल कण्डु

गहरा नीला जल।

iv Cholera विसूचिका

v Dysentry प्रवाहिका

८. Constitutional diseases

i Rheumatism (आमवात)

(१) acute तीव्र

नीलाजल, नीला प्रकाश

(२) chronic पुरातन

नारङ्गी जल, नारङ्गी प्रकाश

ii Gout सन्धिशोथ

नारङ्गी जल

iii Phthisis राजयक्ष्मा

गाढा नीला जल पीने को

लाल प्रकाश फेफड़ों पर, यदि लाल
प्रकाश से दाह हो तो नीला कपड़ा
रखकर लाल प्रकाश डालो।

वात संस्थान के रोग

१. Inflammation of the Brain मस्तिष्कशोथ

नीला प्रकाश

२. Apoplexy मूर्छा

नीला प्रकाश

३. Hysteria योषाऽपस्मार

नीला प्रकाश

४ Epilepsy. अपस्मार
नारङ्गी जल पीने को।
नीला या हरा प्रकाश सिर पर डाले
१५ दिन तक।

५. Infantile Convulsions
चेहरे और सिर पर नीला प्रकाश

६. Child crowing
चेहरे और सिर पर नीला प्रकाश

७. Headache शिर पीड़ा
नीला या हरा प्रकाश सिर पर

८. Newralgic Pains वातिक पीड़ा
नीला या हरा प्रकाश

९. दिमाग़ के थक जाने पर
नीला या हरा प्रकाश

१०. melancholic उदास पुरुष
नीला प्रकाश

श्वास संस्थान के रोग

१. Cold in the head प्रतिश्याय

हराजल, हरा प्रकाश

२ Hoarseness स्वर भङ्ग

नीला जल अथवा गहरा नीला जल । प्रति आध घण्टे पर आधा तोला पानी।

ऐसी ६ मात्रा, ३ प्रातः ३ सायम्

3 Laryngitis स्वरयन्त्रशोथ

नीला जल ½ तोला प्रति आध घंटे पर।

4 Bronchitis (श्वास नलिका शोथ)

(१) acute (तीव्र)

गाढ़ा नीला जल।

(२) chronic पुरातन—

नारङ्गी जल कुछ मास तक।

५ Cough कास

ठण्ड लगने से होती है।

(१) शुष्क कास

गाढ़ा नीला जल। यह जल कफ को तरल करता है। जब कफ मुश्किल से निकले तो नारंगी जल।

(२) आर्द्र कास

नारङ्गी जल। एक मात्रा प्रातः, दूसरी तीसरे पहर। १५ दिन तक।

६ Asthma श्वास रोग

नारङ्गी जल। १ तोला जल प्रति १० मिनिट के पश्चात् १ घंटे तक। यदि आराम न हो तो ३, ४ घंटे तक मात्रा न दो। आवश्यकता हो तो फिर दो। स्वस्थ काल में भोजन के पश्चात् १ तोला नारङ्गी जल। नारङ्गी जल tonic है, पाचक है। प्रारम्भिक अवस्था में गाढ़े नीले जल से काम हो जाता है। पित्त प्रकृति के लोगों को ठण्ड लग जाने से हुआ पुरातन श्वास रोग भी गाढ़े नीले जल से शान्त हो जाता है।

७ (Pneumonia) श्वास ज्वर

मुख गले आदि के रोग

१ मुख गले के रोग और उन से उत्पन्न आमाशय व आन्तों के रोग।

नीला जल आधा तोला प्रत्येक ½ घंटे के पश्चात् ३,४ घंटे तक। यदि रोग शान्त न हो तो २४ घण्टे पश्चात् फिर ऐसा ही करे।

२ Tooth ache दन्त पीड़ा, मसूड़ों का सूजना नीले जल से गरारे ५,७ बार करे।
सूजन न हो तो नारङ्गी जल

३ (Gumboil) दन्तवेष्ट पिडका— नीला जल

४ (Dentition = Teething) दन्तोद्गम।
नीला प्रकाश

५ (Sore throat) गल शोथ
तीन २ घंटे पर नीले जल के गरारे। ४,५ दिन में आराम।

पाचक अङ्गों के रोग

१. अजीर्ण—

पानी सर्वदा खाली पेट पीवें। भोजन अच्छा चबावें। भोजन में पानी न पीवें या बहुत कम। भोजन हलका।

i पित्त के कारण अजीर्ण हो तो गाढ़ा नीला जल।

पित्त के कारण पुरातन अजीर्ण हो तो दिन में दो बार गाढ़ा नीला जल प्रत्येक बार १ औन्स जल की मात्रा। इस प्रकार १, २ मास तक।

ii श्लेष्मा के कारण अजीर्ण हो तो

व्यायाम, भ्रमण। बैठना कम। नारङ्गीजल। चिकित्साशनैः २ देर तक। एक सप्ताह के बाद शरीर में कुछ रक्त की वृद्धि। अथवा भोजन के ठीक बाद नारङ्गी जल। हेमन्त में प्रत्येक एक औन्स की चार खुराक।

iii Heart burn हृद्दाह-नारङ्गी जल १ औंस।

iv Waterdrash

v डकारों वा उबासियों का निरन्तर आना।

नारङ्गी जल । कभी २ नीला जल । १ औन्स प्रत्येक ३ घण्टे पर । ३ मात्रा ।

२. पेट में हवा । नारङ्गी जल या गाढ़ा नीला जल।

३. वमन. जी मचलाना । नीला जल

४. पेट दर्द (stomach pain)

i वातिक शूल (windy pain), नारङ्गी जल

ii अजीर्ण जन्य शूल (Dyspeptic pain)

गाढ़ा नीला जल । चिकित्सा शनै. २ ।

iii पैत्तिक शूल—नारङ्गी जल । १५ दिन तक ।

५. पित्त विकार

नीला जल । दो २ घंटे के पश्चात् । तीन मात्रा

६ कामला— नीला जल

७ अतिसार नीला जल

८ मलबन्ध (यकृत् की मन्दता)

प्रातः सायम् नारङ्गी जल

९ आन्त्र शूल (colic) नीला जल । १ औंस की मात्रा । प्रति १० मिनट के पश्चात् । १ घण्टे तक ।

१० अर्शस्

i अरक्तार्शस्

नारङ्गी जल। नीले जल से धोना।

ii रक्तार्शस्। नीले जल से धोना।

११ गुदशोथ—नीला जल

मूत्र संस्थान के रोग

१ वृक्क शोथ

i शीतजन्य वृक्कशोथ

आघात जन्य ॥

नीला प्रकाश

ii पथरी वा शर्कराजन्य शोथ

नारङ्गी प्रकाश

२ मूत्रकृच्छ्र—नीला पानी

३ अनैच्छिक मूत्रस्राव

मूत्राशयपर बैंगनी (purple) या हरा प्रकाश

नेत्रशोथ—

i पाक संस्थान विकारजन्यशोथ

आस्मानी ऐनक

ii Granularlids नेत्राङ्कुर

नीला प्रकाश चेहरे पर । प्रातः भ्रमण ।

iii नेत्र दाह, नेत्र शूल, अश्रुन्यारी ।

नीला प्रकाश, नीले पानी से धोना ।

कर्ण रोग—

कर्णशूल, कर्णस्राव, कर्णपिडका

नीला जल ।

कर्ण कूजन—

सिरपर नीलाप्रकाश, सोने से

पहिले पांच ठण्डे हाँ तो १० मिनट

गर्म पानी में रख कर मलना

त्वक्रोग

iBoils फफोले

हरा प्रकाश, नीला प्रकाश

ii Scald head

नीला प्रकाश

iii Ulcers—हरा प्रकाश

iv खुजली—नीले जल से धोना,
नीला प्रकाश दो घण्टा प्रतिदिन ।

अन्य रोग

i नकसीर
नाक से नीला जल चढ़ाना ।
सोते समय नीले जल की एक
मात्रा ७ दिन तक ।

ii हृत्कम्प (Palpitation)
नीला जल

iii व्रण, दाह
नीले जल में फोया भिगो कर रक्खो ।

iv दंश—नीले जल का फोया ।
शोथ हो तो नीला प्रकाश ।

स्त्रीरोग

i ऋतुरोध
नारङ्गी जल की एक मात्रा
प्रतिदिन प्रातःकाल १५ दिन तक

ii कष्टार्तव

नारङ्गी जल स्राव से पहिले और बीच में,

iii अति आर्तव—

१० मिनट में एक २ मात्रा नीलाजल पिलाओ।

नाभी से नीचे नीले जल में

कपड़ा भिगो कर रक्खो

अथवा नाभी से नीचे नीला प्रकाश।

iv Whites—नीला जल पिलाओ।

v गर्भ स्थितिकाल—नीला जल

(३)

रङ्गों का रोगों पर प्रभाव

(१) जामनी [Indigo, deepblue]

= नीला + लाल

अङ्गों को आराम पहुंचाता है, शोथ को कम करता है और कफ को बाहिर फेंकता है।

क्षोभक स्रावों को रोकता है। वमन, अतिसार को रोकता है पाचक अङ्गों में स्फूर्ति देता है।

फुप्फुस रोग, श्वासप्रणाली रोग, आन्त्र रोग।

वृद्ध वा क्षीण पुरुष के लिये आकाशीय की अपेक्षा जामनी उत्तम है।

निमोनिया, कुत्ताखाँसी, ज्वर, गल शोथ।

पुरातन-अजीर्ण।

(२) पीला [yellow]

बैठे रहने के कारण जिन को मल बन्ध हो, उन के लिये यह उपयोगी है। जैसे दूकानदार, सौदागर, न्यायाधीश, लेखक, विद्यार्थी।

१५, २० वर्ष तक की आयु में लाल रङ्ग के स्थान में पीला ही वर्तना चाहिये।

मलबन्ध में आन्तों को शक्ति देने के लिये देर तक चिकित्सा करनी चाहिये। आन्तों के बल के लिये इस की बड़ी मात्रा न लें, क्योंकि दाह पैदा हो जायगी।

कुष्ठ को ६ मास में दूर कर सकता है। प्रातः सायम् प्रति दिन एक २ मात्रा। मलाशय में

ताप की घटती बढ़ती के अनुसार मात्रा में फर्क करना चाहिये। चावल, दूध, मच्छी, दही, कच्ची खांड़से परहेज रहे। थोड़े गेहूँ के साथ चना अच्छा भोजन है। मक्खन, घी अवश्य देना चाहिये। नमक न खावे।

(३) लाल रंग—

गर्मी देने वाला, संकोचक और स्तम्भक नहीं; शरीर की सोई हुई, निश्चेष्ट, जड़ अवस्थाओं को हटाता है। नीले रंग से जो अधिक संकोच हुआ हो उसे फैलाना है।

अर्धाङ्ग। दाह, गुल्म, शोथ। स्थानिक अर्धाङ्ग पर लाल प्रकाश डालो।

नोट—रङ्गों का प्रभाव दिखलाते हुए प्रकरणवश यह भी बतला देना अनुचित नहीं है कि नीले रंग की बोतल में सरसों का तेल १ मास तक धूप में रख कर सिर के पीछे मलने से स्वप्नदोष को दूर करता है। वीर्यस्राव और वीर्य का पतलापन भी दूर होता है। सिर पर मलने से गञ्ज हटता है। बाल काले होते हैं।

‡रोग परीक्षा—आँख, नख, मूत्र, शौच इन चारों का रंग देख कर रोग की परीक्षा करनी चाहिये। इन का रंग लाल वा पीला हो तो पित्त का विकार समझ कर जामनी व नीले जल से शीत चिकित्सा करनी चाहिये। नीलापन झलकता हो, तो वात विकार समझ कर उष्ण स्निग्ध चिकित्सा लाल वा लालपीले (सिन्दूरी) जल से, और यदि सफेदी सी झलकती हो तो लाल जल से चिकित्सा करनी चाहिये।

रश्मि भावित जल बनाने के लिए बोतलों की पहिचान—

१. धूप में सफ़ेद कागज़ पर प्रतिबिम्ब डाल कर देखना चाहिये।

२. नीले रङ्ग की बोतल के प्रतिबिम्ब में यदि लाल झलक न हो तो हलके नीले रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये।

---

‡ पं० ज्वालाप्रसाद झा की Chromopathy

३. प्रतिबिम्ब में नीले रङ्ग में लाल झलक हो तो गाढ़े नीले रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये। कैस्टर ऑयल की बोतलें गहरे नीले रङ्ग की होती हैं।

४. पीले रङ्ग के प्रतिबिम्ब में यदि लाल झलक भी हो तो नारङ्गी रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये।

५. जिस पीले रङ्ग के साथ लाल न दीखे उस रङ्ग की बोतल शुद्ध पीली होती है।

६. हरा प्रतिबिम्ब हो तो हरी बोतल समझते हैं।

७. श्वेत रङ्ग की बोतल वही कहलाती है जिस के प्रतिबिम्ब में कोई रङ्ग न दीखे। बोतल में भी किसी रङ्ग की झलक न हो।

भिन्न २ रङ्गों की बोतलों के जलों को मिला कर मिश्रण का उपयोग—

बदहज़्मी (मेदे की खराबी)	अनुपात	प्रातः	सायम्	
१ जिगर की गर्मी से हो तो	हलका नीला जल + हरा जल भाग २ भाग १	२½ औन्स	२½ औन्स	खाली पेट पीवे।
२ यदि केवल गर्मी से हो तो	गहरा नीला जल + हरा जल २ भाग १ भाग	२ औं०	२ औं०	खाली पेट।
३ ठण्ड के कारण हो तो	नारञ्जी + हरा २ भाग १ भाग	२ औं०	२ औं०	भोजनोपरान्त।
४ कब्ज के लिये	पीला	२ औं० रात को		सोने से पहिले।
५ अजीर्ण और कब्ज के लिये	नारञ्जी	२ औं०		भोजनोपरान्त। २ घण्टे के अन्तर से ३ बार

बोतल जल से भर कर दो घण्टे से लेकर तीन दिन तक धूपमें रखने से जल तय्यार होजाता है। यदि अन्यरङ्गों के पानी में श्वेत पानी मिलाकर दिया जाय तो रङ्गके पानी की ताकत ४ गुणाअधिक होजाती है।

(२)

जलचिकित्सा पद्धति की उत्तमता

शरीर में जितना भी कार्य हो रहा है वह सब मान्स पेशियों के द्वारा हो रहा है। भोजन का पचना, शरीर में उसका अङ्ग होकर रहना, मल का बाहिर निकलना इत्यादि सब काम मान्स पेशियों के द्वारा हो रहे हैं। जिस अङ्ग की मान्स पेशियां ढीली पड़ जाती हैं, उस अङ्ग का काम बन्द हो जाता है। शरीर का सब काम संकोच प्रसारात्मक गति रूप है। मान्स पेशियों में संकोच प्रसारात्मक गति करने की योग्यता जब तक बनी रहती है तब तक शरीर का सब काम ठीक चलता रहता है। जब गति करने की योग्यता में फ़र्क आ जाता है तब काम बन्द हो जाता है।

मान्स पेशियों को गति देने का साधन शरीर में नाड़ीजाल है। जिस नाड़ी का सम्बन्ध जिस मान्स पेशी से है उस मान्स पेशी को वह नाड़ी

गति देती रहती है वा उससे गति दी जा सकती है। नाड़ी के कार्य में फ़र्क पड़ जाने से मान्स पेशी के कार्य में फ़र्क पड़जाता है। फिर शरीर के अङ्गों के कार्यों में फ़र्क पड़कर शरीर अस्वस्थ, विकृत और रोगी हो जाता है।

नाड़ी के कार्य में विकृति होने के अनेक कारण हैं। नाड़ी से अधिक काम लेने से, कम काम लेने से, वा किसी प्रकार के आघात से जैसे विद्युत, प्रकाश, ताप, शब्द और अन्य किसी प्रकार की चोट से नाड़ी के कार्य में विकार उत्पन्न हो जाता है। किसी भी प्रकार से क्यों न हो नाड़ी के कार्य में रुकावट विजातीय पदार्थ के सञ्चय से होती है। विजातीय पदार्थ जो शरीर में नहीं रहना चाहिये वह ही मल कहलाता है। मल को दूर कर देने से शरीर की नस नाड़ियों का कार्य सुचारु रूप से चलने लगता है।

जल चिकित्सा का प्रधान कार्य शरीर शुद्ध कर देना है। शरीर की शुद्धि से नाड़ियों में स्फूर्ति (tone) पैदा हो जाती है। जितना ही हम नाड़ियों में स्फूर्ति जागृत रखते हैं उतना ही हमारे

अन्दर रोगों के प्रति प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। तब रोग हम में नहीं रहते और हम पर नहीं आते।

जल चिकित्सा से नाड़ी संस्थान को बल मिलता है। नाड़ी संस्थान में भिन्न २ प्रकार की नाड़ी हैं। एक ज्ञानवाही, दूसरी क्रिया वाही, तीसरी पोषक नाड़ी।

ज्ञानवाही वे नाड़ियां हैं जो पञ्चज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान को बाहिर से भीतर मस्तिष्क में ले जाती हैं। क्रियावाही वे नाड़ियां हैं जो मस्तिष्क से बाहिर त्वचा की ओर जाती हैं और मान्स पेशियों को गति देती हैं। तीसरी पोषक नाड़ियां वे हैं जो हृदय, रक्तवाहिनियां, आमाशय, यकृत, प्लीहा, आन्त्र, वृक्क, वस्ति आदि शरीर के पोषक अवयवों को बल देती हैं। ज्ञानवाही नाड़ियों के प्रारम्भिक सिरे त्वचा में रहते हैं और अन्तिम सिरे मस्तिष्क में। क्रियावाही नाड़ियों के प्रारम्भिक सिरे मस्तिष्क में और अन्तिम सिरे त्वचा में रहते हैं। पोषक नाड़ियों का प्रारम्भ सौषुम्न काण्ड में वर्तमान नाड़िचक्रों

(Ganglions) से होता है और अन्त उस २ अङ्गमें होता है जिस जिस अंग को वे नाड़ियां क्रियाशील रखती हैं और पोषणकार्य के लिये उपयुक्त बनाती हैं।

मलाशय से मल को बाहिर निकालने का कार्य विशेषतः Coccygeal plexus का है। मूत्रसंस्थान के अङ्गों और जनन अङ्गों को बल पहुंचाने का काम विशेषतः Sacral plexus-का है। पाचक संस्थान को बल Lumber plexus से विशेष मिलता है। रक्त संस्थान को बल Cardiac plexus से विशेष मिलता है। श्वास संस्थान को बल विशेषतः Cervical plexus से मिलता है। और सम्पूर्ण शरीर को समुदाय रूप से बल Cerebral plexus से मिलता है।

इस नाड़ि संस्थान को बलवान रखने से सम्पूर्ण शरीर पर मनुष्य का ऐच्छिक अधिकार हो जाता है। जल चिकित्सा की विधियों से नाड़िसंस्थान को विशेष बलवान बनाया जाता है। सीवनस्नान (Cold Parineal bath)से सम्पूर्ण नाड़िसंस्थान को बल मिलता है। इस से शरीर

के मल दूर होकर वात, पित्त, कफ की समता (पारस्परिक निर्बाधगति) से शरीर स्वस्थ निरोग हो जाता है। औषध प्रयोगों से तो नाड़िसंस्थान को परम्परया बल मिलता है, परन्तु इस पद्धति में सीधा ही नाड़ीसंस्थान को बल मिलता है। इस लिये यह पद्धति अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक उत्तम है।

(३)

‡ शराब तमाखू और मान्स क्यों त्याज्य हैं?

शराब

थोड़ी मात्रा में शराब पीजाय तो वह धीरे २ दिमाग में प्रवेश कर के नाड़ी जाल को उत्तेजित करती है। खुशी, बात करने की शक्ति, कथन में प्रभाव, विनोद, विचारों की विभिन्नता और शीघ्रता इनमें वृद्धि पाई जाती है। इच्छाशक्ति का बल कम हो जाता है। ज्ञान का ग्रहण, स्मरणशक्ति, कल्पना शक्ति बढ़ जाती है। कुछ मात्रा बढ़ाने से

‡ Smedley's Practical Hydropathy; page 238—239.

हृदय तीव्र होता है। धड़कन बढ़ जाती है। रक्त सञ्चार तीव्र हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर गर्म हो जाता है अधिक मज़बूत और अच्छा मालूम होता है।

‡ शराब की मात्रा लगातार बढ़ाई जाय तो इस के प्रभाव दिमाग के अगले और ऊंचे भाग पर होते हुए ही नहीं दीखते, प्रत्युत पिछले और गहरे भाग पर भी होते हुए दीखते हैं। इस पिछले भाग में ज्ञानेन्द्रिय और मानस पेशियों की शक्ति के केन्द्र होते हैं। दृष्टि और श्रवण शक्ति कम होजाती है। भुजा और टांगे कमज़ोर पड़ जाती और लड़खड़ाने लगती हैं। सिर हिलने लगता है। जीभ तुतलाती है अच्छी प्रकार स्पष्ट शब्द नहीं निकलता है। बुद्धि की तीव्रता बुद्धि भ्रंश में बदल जाती है। प्रलाप आरम्भ हो जाता है। तर्कना शक्ति घट जाती है। इच्छा शक्ति बिलकुल शून्य हो जाती है। मनुष्यत्व क्षीण हो कर पशुत्व की वृद्धि होती है दुर्वासनायें बढ़ जाती हैं। सदाचार टूट जाता है। मनुष्य शैतान का रूप धारण कर लेता

है। वह कुछ समय के लिये पागल हो जाता है और अपने पर तथा दूसरों पर आक्रमण करता है।

शराब के साथ यदि विष पदार्थ भी शरीर में प्रविष्ट हो जावें तो अवस्था अधिक भयानक हो जाती है। बुद्धिनाश, मान्सशैथिल्य, इन्द्रियां क्षीण, सम्पूर्ण मस्तिष्क का परिवर्त्तन, सुषुम्ना काण्ड के शिर में कष्ट, हृद्दौर्बल्य, नाड़ी मन्द, श्वास काठिन्य, चेहरा सूजा हुआ और काला नीला सा, मूर्छा और पश्चात् मृत्यु हो जाती है।

शराब भोजन के तौर पर

शराब का भोजन के तौर पर प्रयोग अनुचित है। शराब शरीर को पुष्ट नहीं करती केवल वात संस्थान को उत्तेजित करती है। वह पदार्थ भोजन कहलाता है जो पहिले आमाशय में जाता है और वहां से शरीर में फैल कर शरीर को पुष्ट करता है और शरीरके तापमान को स्थिर रखता है। भोजन आमाशय तथा अन्यरस जनक अङ्गों के स्रावों में घुल जाता है। ये अङ्ग लाला ग्रन्थियां, यकृत् और क्लोम (Pancreas) हैं।

घोल बनाने के लिये बाहरसे भी द्रवकी आवश्यकता है। इस द्रव के लिये शराब का प्रयोग नहीं हो सकता है। शराब आमाशय के पाचक स्रावों से मिल कर भोजन पर उन की क्रिया को रोक देती है, चाहे वह भोजन प्राणिज हो और चाहे वनस्पतिज हो। क्रिया रोक देने का कारण यह है कि पाचक स्रावों के साथ शराब के मिलने से एक श्वेत पदार्थ निक्षिप्त हो जाता है जिस के कारण पाचक स्राव भोजन को पचाने में असमर्थ होजाते हैं। (Pepsin) पैप्सीन जम जाता है, अतः भोजन को नहीं पचा सकता है।

शरीर में अति शीघ्र फैलने की शराब में विशेष शक्ति है। शराब में पदार्थों को घोलने की अद्भुत सामर्थ्य है। शराब में भिन्न २ पदार्थ घोल कर मद्यासव (Tinctures) बनाये जाते हैं। आमाशय में शराब भोजन को घोलने के स्थान में कठोर बना देती है और गाढ़ा कर देती है। शरीर विज्ञान वेत्ता बतलाते हैं कि अमाशय में भोजन का पतला घोल बनाने के लिये जल से

अच्छा और कोई पदार्थ नहीं है। जल भोजन का घोल बनाता है, भोजन को रक्त में बहा ले जाता है और फिर शरीर में फैला देता है। निकम्मे भाग को शरीर में से निकाल फेंकता है। जल की इसी शक्ति पर जल चिकित्सा की सफलता निर्भर है।

शराब से शरीर की धातुओं के तन्तु नहीं बनते क्योंकि इस में शरीर को बनाने वाले रासायनिक घटक पर्याप्त नहीं हैं। शराब बिना हज़म हुए ही रक्त में फैल जाती है। यह रक्त में घूमती रहती है जब तक कि फेफड़ों में जाकर जलती नहीं है या मल निस्सारक अङ्गों से बाहिर नहीं निकाल दी जाती।

क्या शराब शरीर के तापमान को बढ़ाती है ?

फुप्फुस में शराब का दहन होने से किसी अंश में यह कहा जा सकता है कि शराब शरीर के तापमान को बढ़ाती है। परन्तु हमारा साधारण भोजन मिश्रित होता है। उस में पोषक पदार्थ तो होते ही हैं उस के साथ घी, तेल खाण्ड भी होते हैं जो शरीर में गर्मी को पैदा

करते हैं। घी, तेल खाण्ड से अतिरिक्त भोजन में ऐसे पदार्थ हैं जो खाण्ड की शकल में बदल जाते हैं। यह पदार्थ निशास्ता (starch) है। ये पदार्थ और विशेषतः तेल फुप्फुस के द्वारा दहन के लिये सर्वथा उपयोगी हैं। इसी कारण इन्हें श्वासंस्थानिक भोजन (Respiratory food) कहते हैं। शरीर के ताप की रक्षा यह इन का मुख्य कार्य है। शिरा रक्त में वर्तमान मल के दहन से भी यह कार्य होता रहता है। शरीर में ठोस से द्रव और द्रव से ठोस रूप में होने वाला पदार्थों में परिवर्तन भी ताप को उत्पन्न करता रहता है। शरीर में तन्तुओं और कोष्ठों के टूटने और बनने में भी ताप उत्पन्न होता है।

यदि भोजन के साथ वा आगे पीछे शराब पी जाय तो शराब रक्त में फैल कर एक दम फुप्फुस में पहुंच जायगी और ओपजन से मिलने को अत्यन्त आतुर होने से सब से पहिले एक दम दाह उत्पन्न करेगी। इस प्रकार यह ठीक है कि शराब से तापकी वृद्धि होती है परन्तु यह भी देखना

है कि इस प्रकार तापकी वृद्धि का क्या असर होता है। शराब से ही ताप की वृद्धि होने पर घी, तेल, खाण्ड का पर्याप्त मात्रा में जलना नहीं होता। ये पदार्थ अनुचित मात्रा में शरीर में सञ्चित हो जाते हैं। शिरार तथा मलभूत पदार्थ का भी दहन न होने से वह भी शरीर में सञ्चित हो जाता है। रक्त दुष्ट विषैला हो जाता है। फिर अन्य भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं। शराब के द्वारा ही सम्पूर्ण ओषजन खर्च हो जाने से अन्य दूरस्थ अङ्गों के तन्तुओं के बनने बिगड़ने में स्वतन्त्र रूप से भाग लेने वाली ओषजन उन अङ्गों को नहीं प्राप्त हो सकती। इस से न तो तन्तुओं का बनना बिगड़ना ठीक हो सकता है और नाहीं ताप की उत्पत्तिठीक हो सकती है। इस प्रकार ताप की उत्पत्ति में शराब का अनुचित हस्ताक्षेप सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार उपर्युक्त विचार के आधार पर शराब न केवल अनावश्यक है परन्तु हानिकर है।

तमाखू

तमाखू में एक विष होता है, जो शरीरमें प्रविष्ट हो कर रक्त वाहिनियों के द्वारा वात नाडियों के

केंद्रों पर अधिकार प्राप्त कर के वात नाड़ियों को क्रिया शून्य बना देता है जिस से वह २ स्थान जिस २ पर वात नाड़ी अपना कार्य करती है मारा जाता है। तमाखू के पीने से पहिले तो उत्तेजित वात नाड़ियां शान्त होती हैं फिर अधिक उत्तेजित होकर कमज़ोर पड़ जाती हैं। वात नाड़ियों के कमज़ोर पड़ जानेसे शरीर की मान्स पेशियां कार्य नहीं कर सकतीं हैं। जिस अङ्ग की मान्स पेशियां निर्बल हो जाती हैं, उस अङ्ग का कार्य मन्द पड़ जाता है। तमाखू के विष के प्रभाव से श्वास प्रणाली निर्बल पड़ जाती है तो श्वास काठिन्य हो जाता है। फेफड़े निर्बल पड़ जाने से रक्त का शोधन ठीक नहीं हो सकता और रक्त दुष्टि होकर अनेक रक्त दुष्टि जन्य रोग हो सकते हैं। हृदय पर विष का प्रभाव हुआ तो हृदयके दुर्बल हो जाने से रक्त सञ्चार मन्द पड़ जाता है, अङ्गों का पोषण ठीक नहीं होता। शरीर दुर्बल, पाण्डु हो जाता है। आमाशय वा आन्तों पर विष का प्रभाव हुआ तो अजीर्ण और मलबन्ध जन्य अनेक विकार प्रकट हो सकते हैं, आन्त्र ज्वर

(Typhoid) प्रायः होने लगता है। मस्तिष्क पर विष का असर होने से मूर्छा, भ्रम, अपस्मार, शिरोवेदना आदि रोग हो सकते हैं। बाल पक कर सफेद हो सकते हैं। आयु की क्षीणता तो होती ही है। इस प्रकार तमाखू शरीर के लिये अत्यन्त हानिकर पदार्थ है। मल निकालने वाले अङ्गों के शिथिल पड़जाने से शरीर में मल का सञ्चय हो जाता है, और मल के संग्रह से सब रोग हो सकते हैं। जो मनुष्य शरीर शोधन के लिये जल चिकित्सा कर रहा है और तमाखूसेवी भी है उसे जल चिकित्सा से कोई लाभ न होकर वह अधिक २ रोगी हो जावेगा, क्योंकि विष का प्रभाव अधिक तीव्रता से होगा। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा और स्वास्थ्य वर्धन की दृष्टि से तमाखू का कभी सेवन न करना चाहिये। इसी प्रकार भांग, गांजा, चरस, बीड़ी, सिगार आदि पदार्थ भी हानि कर समझने चाहियें और छोड़ देने चाहियें।

मान्स

अनेक मनुष्यों का ऐसा विचार है कि शारीरिक बल बढ़ाने के लिये और विशेष शारीरिक पुष्टि के

लिये मान्स सेवन हितकर है। संसार में कोई भी वस्तु अनौषध नहीं है, इसलिये औषधार्थ किसी स्थान में मान्स वा मांस रस का व्यवहार अनुपयुक्त नहीं भी हो सकता है, परन्तु साधारण भोजन के निमित्त मान्स का व्यवहार सर्वथा अनुचित है।

१ शरीरोपयोगी पदार्थों की योजना रासायनिक दृष्टि से मान्स में सरल है इसलिये सरल भोजन के पक्षपाती मनुष्यों को मान्स ग्रहण करना चाहिये, यह युक्ति अपने रूप में चाहे कितनी ही सुन्दर लगे परन्तु कई एक प्रबल हेतुओं के आधारपर मान्स भोजन के लिये स्वीकार नहीं की जा सकती।

२. मान्स प्राणियों के शरीरों से प्राप्त होता है। प्राणियों के शरीर वनस्पति भोजन से बनते हैं। जो प्राणी उन प्राणियों के शरीरों पर आश्रित रहते हैं जो वनस्पति भोजन करते हैं, उन प्राणियों को भी परम्परया वनस्पति से ही जीवन प्राप्त होता है। वनस्पति को जीवन जल, वायु, सूर्य की धूप, प्रकाश और खनिज-द्रव्यों से मिलता है। पृथिवी,

अप, तेज, वायु और आकाश में जीवनशक्ति स्वतन्त्रता से सञ्चरण करती है। इस जीवनशक्ति का कैसे उपभोग किया जाय? शुद्ध जल को पीकर शुद्ध वायु का सेवन कर के, खुलेपन में धूप और प्रकाश को ग्रहण करके हम योग्यता के अनुसार जीवन शक्ति लेते रहते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों से सीधा सम्बन्ध कर के शक्ति प्राप्त करते हुए भी अपने शरीर के संघटन के लिये घनीभूत द्रव्य को भी ग्रहण करना पड़ता है। शक्ति की अधिकता में द्रव्य में विरलता होती है और शक्ति की न्यूनता में द्रव्य में घनापन आता है। सरलता से विषमता में जाते हुए पदार्थ में शक्ति की न्यूनता होती जाती है और द्रव्य का संघटन बढ़ता जाता है। पदार्थ जितना ही सरल अवस्था में है उतना ही वह अधिक प्रभावशाली है शीघ्र अङ्ग बनने योग्य है और जितना विषम अवस्था में है उतना ही कम प्रभावशाली और अङ्ग बनने में मन्द योग्य है। जिस पदार्थ में शक्ति कम है, जो रचना में सरल नहीं किन्तु विषम है, जो अनेक सरल पदार्थों का

समास (compound) है वह शरीर का अङ्ग जल्दी न बन सकने से गुरु है, भारी है, तामसिक है, हमें अधिक शक्ति देने के स्थान में हमारा अङ्ग बनने के लिये हमारी बहुत सी सञ्चित शक्ति का व्यय कर डालता है। जो द्रव्य सञ्चित शक्ति को बुद्धि में विकसित होने देने से रोक कर उस को अपने जज़्ब होने में ही लगा डालता है वह बुद्धि को मन्द करने वाला है। मांस इसी प्रकार का पदार्थ होने से ग्राह्य नहीं है।

३. हमारे शरीर को शक्ति प्राप्त करने के लिये भोजन के रूप में प्राणिज (Organic) पदार्थ होना चाहिए। अप्राणिज पदार्थ का पहला प्राणिज रूप, जो हमारे शरीर के लिये उपयोगी है और सरलरूप है, वनस्पति में प्राप्त होता है। सरल से सरल रूप में प्राणिज पदार्थ को यदि हम ग्रहण करना चाहें तो वनस्पति का सेवन करना चाहिये मांस का नहीं।

४. शरीर में से मल को साफ़ करने के लिये काष्ठोज (Cellulose) की बड़ी आव-

श्यकता है। वनस्पति में काष्ठोज प्रचुर मात्रा में है जो न तो मलबन्ध होने देता है, यदि हो जाय तो उस को दूर करने में सहायता करता है। मान्स में काष्ठोज का अभाव होने से मान्स भोजन से प्रायः मलबन्ध और पश्चात् अजीर्ण की शिकायत सुनी जाती है। अतः मान्स अग्राह्य है और वनस्पति ही ग्राह्य है।

५. सूर्य की किरणों में एक प्रकार की किरणें नीलोत्तर रश्मि (ultra violet rays) होती हैं। इन किरणों के द्वारा वनस्पति, शाक, फल आदि की त्वचा के नीचे एक प्रकार का जीवनीय पदार्थ उत्पन्न होता है इसे vitamin कहते हैं। इस पदार्थ की यह विशेषता है कि फलादि जिस पदार्थ को खावें उस का vitamin उस को पचाने में सहायता करता है। इस पदार्थ के नष्ट हो जाने से द्रव्य सुगमता से पच नहीं सकते। यह पदार्थ पचन क्रिया में सहायक तो है ही, साथ ही शरीर की ग्रन्थियों के रसों में कार्य कर्तृत्व सामर्थ्य को पैदा करने में भी अद्वितीय है। इस प्रकार

भिन्न २ प्रकार का Vitamin शरीर के भिन्न २ प्रकार के रोगों को दूर करता है या होने ही नहीं देता। वनस्पति को पकाने की अधिक प्रक्रियाओं में से गुज़रने से यह जीवनीय पदार्थ ६० अंश लगभग पर नष्ट हो जाता है। इस लिये वनस्पति भी अधिक प्रक्रियाओं में गुज़ार कर न खानी चाहिये। मान्स तो अपने स्वरूप में ही वनस्पति के अधिक प्रक्रियाओं में गुज़रने से बना होता है। मान्स में वह जीवनीय पदार्थ vitamin नहीं होता। मान्स दुर्जर है खाने योग्य पदार्थ नहीं है। वनस्पति ही खानी चाहिये मान्स नहीं।

६. शरीर के पोषण के लिये जिस नत्रजनीय मान्स वर्धनोपयोगी पदार्थ के निमित्त मान्स को ग्राह्य समझा जाता है वह नत्रजनीय पदार्थ तथा अन्य शरीरोपयोगी पदार्थ बादाम आदि वनस्पति से प्राप्त हो सकते हैं। मान्स के सब पदार्थ सरल रूप में वनस्पति से ही प्राप्त हो सकते है अतः वनस्पति का सेवन अधिक श्रेयस्कर है मान्स का नहीं।

७. मान्स कभी शुद्ध प्राप्त नहीं होता। यूरिया यूरिक एसिड आदि कई विषें ऐसी हैं जो मान्स से सर्वथा पृथक् नहीं की जा सकतीं। इन को दूर करने के लिये मान्स को चाहे कितना ही धोवें साफ़ करें ये विषें बनी ही रहती हैं। बहुत सावधानता से तैय्यार किये मान्स का भी जब यह हाल है तो साधारण बाज़ारू मान्स की तो बात ही क्या है। अतः मान्स भोजन त्याज्य है वनस्पति भोजन ही करना चाहिये।

८. मान्स शरीर को पुष्ट करता है या नहीं? इत्यादि विषयों को छोड़कर इतना तो मान्स भोजियों से निर्विवाद मत प्राप्त हुआ है कि जब तक मान्स नहीं खाते तब तक काम वासना की जो अवस्था रहती है उस में मान्स खाने से अत्यधिक वृद्धि होती है।

यदि जाति में मान्स खाने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ जावे तो लोगों में काम वासना अधिक बढ़ जावेगी। काम वासना के बढ़ जाने से उसे पूरा करने के लिये देश में बलात्कार अधिक बढ़ जावेंगे। बाल

विवाह की ओर भी प्रवृत्ति अधिक हो जावेगी। वेश्यावृत्ति भी अधिक बढ़ जावेगी और लोगों का धन दुराचार में अधिक नष्ट होगा। देश आचार में धन में बल में क्षीण हो जावेगा। वीरता जाती रहेगी। लोगों में युद्ध में टिककर लड़ना न रहेगा कार्य करने की सामर्थ्य भी कम होजावेगी। लोग काम करने से जी चुराएंगे और बेईमानी, धोखे बाज़ी, लूट खसोट, चोरी डाका बढ़ेगा। गम्भीर विचारों में लोगों का दिमाग न लगेगा, आविष्कार होने और अध्यात्मविद्या में गति रुक जावेगी। देश पराधीन होजावेगा और पराधीन रहेगा। इस प्रकार मान्स से साक्षात् वा परम्परया आचार सम्बन्धी, समाज सम्बन्धी, राजनीति सम्बन्धी अनेक प्रकार के दोषों के उद्गम होने को अवकाश रहता है अतः मान्स भक्षण त्याज्य है वनस्पति सेवन ही करना चाहिये।

६. संसार में प्राणियों के शारीरिक अङ्गों की रचना और संस्थान को देख कर वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि मनुष्य वनस्पति भोजी है और

वह रचना बन्दर के सदृश होने से मनुष्य फल भोजी है, मान्स भोजी तो सर्वथा नहीं है। अतः मान्स को सर्वथा त्याग कर वनस्पति का ही सेवन करना चाहिए।

अब कुछ पाश्चात्यों की सम्मतियां देना भी अच्छा ही है—

‡ "That men can be perfectly nourished, and that their physical and intellectual capabilities can be fully developed, *in any climate*, by a diet *purely vegetable*, has been proved by such abundant experience, that it will not be necessary to adduce any formal arguments on the subject."

‡ 11. Man is provided neither with the teeth to cut flesh, nor the power to hold its poisonous salts in solution and pass

‡ Rees's 'Encyclopaedia', Article 'Man', by Sir william Laurance.

them out of his body, whilst the carnivore is provided with these powers to a very considerable extent.

‡ 12. The products of the vegetable kingdom contain all that is necessary for the fullest sustenance of human life.

‡ 13. There is little need for wonder that flesh-eating is one of the most serious causes of the diseases that carry off ninety nine out of every hundred people that are born.

14 परिशिष्ट रोग (Appendicitis) का कारण और उपाय । An exhaustive inquiry, into the possible causes of increasing Appendicitis, was made recently by Mr. Rendle Short. He came to the conclusion, that the increase in the incidence of Appendicitis was most likely due to some

‡ Josiap Old Field, D C.L.

change in the dietary of the nation, but his evidence was against the common assumption that increased meat-eating had anything to do with the increase of the disease. By comparing the common articles of diet at the present time with these most in use before the great increase of Appendicitis Mr. Short found that the chief change was a gradual diminution in the amount of cellulose-containing foods. He suggests that herein lies the cause of the great predisposition to, and incidence of Appendicitis.

I think, it will be allowed, that Appendicitis is a microbial disease, which attacks certain people who are at the moment of attack in a state of diminished resistance to that infection. It will hardly be questioned, that

stagnation of the intestinal contents and the presence of much decomposing meat in the intestines are factors, which would favour the growth of the infective organisms. It may be, that cellulose-containing foods help to prevent stagnation or the intestinal contents, and they may possibly supply some vitamin, which maintains resistance against the organisms. The moral, to be deduced from this, is that so far as our knowledge goes at present, a predisposition to appendicitis would be lessened by—

1. Preventing constipation.
2. Minimizing the amount of meat eaten.
3. Increasing the amount of food containing cellulose.

4. Diminishing the total amount of food taken.

British Medical Journal January 5. 1929

१५. भारतीय धर्मशास्त्र में मद्य मांस आदि पञ्चमकारों के सेवन में भूतों की साधारण प्रवृत्ति बतलाई है। जो प्राणी इन का त्याग कर देते हैं, वे अधिक श्रेय के भागी हैं। मनुष्य, जीवन प्राप्त करने के लिये, जीवित प्राणियों पर आश्रित है। मनुष्य को कार्य करने के लिये उत्तेजना भी चाहिये। मनुष्य ने संसार में सन्तानोत्पत्ति भी करनी ही है, इन कार्यों के लिये मांस मद्य और मैथुन का सेवन अनिवार्य है। परन्तु जो मनुष्य उच्च कक्षा के हैं, वे संयम और तपश्चर्या से इन को त्याग देते हैं, नीच कक्षा के मनुष्य इन का सेवन अपरिहार्य समझ कर करते जाते हैं और उन्नति शील नहीं होते। इसलिये उच्च कक्षा में रहने के लिये इन का सेवन त्याज्य है और जो नीच कक्षा में ही रहना चाहें वे बेशक इन का सेवन करें। यही भाव निम्न श्लोक से निकलता प्रतीत होता है।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ मनु ॥

इसी विचार से उत्तम मनुष्य, पशु पक्षी आदि प्राणि जन्य, मांस का त्याग कर के वानस्पतिक मांस को ग्रहण कर लेते हैं। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी उन्नति को लक्ष्य में रख कर प्राणिज मांस का त्याग कर के वानस्पतिक मांस का सेवन करे ॥

‡ कुछ रोगों का निरूपण—

किसी भी रोग की स्थिर चिकित्सा नहीं की जा सकती है जब तक कि वात नाड़ियों में शक्ति फिर जागृत न कर ली जावे । छाला डालना, रक्तमोक्षण, बत्ती भरना, विरेचन ये बल देने या शक्ति प्राप्त करने के साधन नहीं हैं, किन्तु कमज़ोर करने और क्षोभ पैदा करने के साधन हैं। वात-संस्थान के चार मुख्य विभाग हैं । १ मस्तिष्क २ सुषुम्ना काण्ड, ३ मास्तिष्क सौषुम्न नाडिजाल ४ वातग्रन्थियां (ganglions), जीवन दाता वात-नाड़ियां (Nerves of organic life) । वात·

‡ Smedley's practical Hydropathy.

ग्रन्थियों का अधिकार रक्त-संचार व पोषण, स्राव, आत्मीकरण, मलत्याग इन पर है। वातग्रन्थियों की रचना नलिका रूप में वैसी ही है जैसी सौषुम्न मस्तिष्क वातनाड़ियों की है। इन के आवरणों में द्रव भरा रहता है। ये अपनी वैद्युत शक्ति के द्वारा कार्य करती हैं। जब बहुत मानसिक कार्य करने के कारण दिमाग़ थक जाता है तब ये उस के स्थान में कार्य करती हैं। जब मानसिक कार्य का बोझ इन पर बहुत आ पड़ता है तब इन पोषक नाड़ियों का अपना पोषण सम्बन्धी वास्तविक कार्य मन्द हो जाता है। अजीर्ण, पित्त वृद्धि, यकृत् वृद्धि, पोषण और रक्त संस्थानों के अङ्गों की शक्ति की क्षीणता उपस्थित हो जाती है।

इस के विरुद्ध जब मन उचित बलवान् नहीं होता, तब मास्तिष्क नाड़ी समूह का जीवनीय बल पोषक नाड़ियों के बल के साथ जुड़ जाता है और स्थूलता की अवस्था उत्पन्न हो जाती है, यहां तक कि Apoplexy भी उत्पन्न हो जाती है।

जब हम आमाशय में भोजन डालते हैं, तब यह पाचक रस के द्वारा पचने लगता है। जब तक आमाशय के गढ़े पर वर्तमान पोषक नाड़ियों के बड़े जाल का जीवनीय वैद्युतिक बल पर्याप्त बलवान् नहीं होता तब तक इस में रासायनिक परिवर्तन आरम्भ नहीं होता है। इस का परिणाम यह होता है कि अम्लता उत्पन्न हो जाती है, पश्चात् सड़ांद पैदा होने लगती है,इस से आमाशय ग्रहणी और बृहदन्त्र में क्षोभ पैदा हो जाता है। यह अस्वास्थ्यकर द्रव्य आंतों में गुजरता है। आंतों से इस द्रव्य को रसायनियां खैंच कर रक्त में डाल देती हैं। इस प्रकार यह शरीर की धातुओं (Tissues) में पहुंच जाता है। वहां शरीर के प्रतिकूल समझा जाकर शरीर के लिये अन्य हानि कर पदार्थ के साथ इस को बाहिर फेंकने का प्रयत्न किया जाता है। यदि इसको बाहिर फेंकने की सामर्थ्य हुई तो छाले, फफोले, फुन्सियां, दाद आदि उभार निकल आते हैं या दस्त लग जाते हैं। इन के द्वारा शरीर का मल दूर होकर

शरीर स्वस्थ होजाता है। यदि शरीर में मल को बाहिर फेंकने की सामर्थ्य न हुई अर्थात् जीवनीय शक्ति कमज़ोर हुई तो अङ्ग विकार को बिना प्राप्त हुए नहीं रहते, परिणाम यह होता है कि शोथ ज्वर आदि उपद्रव प्रकट होते हैं और कभी २ सारा ढांचा ही बदल जाता है और मृत्यु हो जाती है।

पोषक नाड़ियों में वर्तमान विद्युत् शक्ति ही शरीर में रक्त सञ्चार का कारण है। यकृत् रक्त में से विषैले पदार्थ को इकट्ठा कर के जो पित्त बनाता है उसको बनाने वाली भी वही पोषक नाड़ियों की विद्युत्-शक्ति है। इसी से यकृत् को शक्ति मिलती है जिस से वह खांड या saccharine matter और रक्त की वृद्धि के लिये रक्त कण बनाता है। वृक्क में स्थित uriniferous tubes को यही शक्ति देती है कि जिस से वे नलियां रक्त में से मूत्र और अन्यविषों को खैंच लेती हैं। मान्स अस्थि आदि धातुओं को यहां से ही शक्ति मिलती है, इसी से

वे अपने २ अभीष्ट पदार्थ को रक्त में से ग्रहण कर के अपना भरण पोषण करते हैं।

इन नाड़ियों की जीवनीय शक्ति या विद्युत् शक्ति को ganglionic या organic कहते हैं। यही शरीर का जीवन है। जितना ही शरीर के भिन्न २ चक्रों के रूप में इस शक्ति का सञ्चार होगा उतना ही शरीर की क्रियाएं स्वस्थ रूप में होंगी। विद्युत् इच्छा की प्रकाशक है। मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। इन पोषक वाततन्तुओं में भी वही पदार्थ है। उसी से सब पोषण आदि का कार्य चलता है। यह विद्युत् शक्ति शरीर में अधिक व्यापक रूप में उत्पन्न होती है। यह विषय 'प्राणि चुम्बक' पर लिखी गई पुस्तकों में विस्तार से मिलेगा। शरीर के सौत्रिक तन्तु और चौम्बकिक सिद्धान्त की मात्रायें शरीर में अत्यधिक विस्तृत हैं। इसी लिये शरीर की चौम्बकिक शक्ति या विद्युत् शक्ति का ज्ञान, रोग चिकित्सा या स्वास्थ्यरक्षा के लिये, आवश्यक है। जल चिकित्सा से विद्युत् शक्ति को

बलवान बना कर रोग चिकित्सा और स्वास्थ्य रक्षा की जाती है।

आमवात

यह एक व्यापी शिकायत है। मैं इसे रोग विशेष नहीं कह सकता हूँ। यह पोषक अङ्गों में उत्पन्न विकारों का एक चिह्न विशेष है। यह पीड़ा, दाह और उभार का कारण है। मांस पेशियों और वात नाड़ियों के कोषों में इस का स्थान है। कोषों में जब वह द्रव नहीं रहता जो मान्स पेशियों और वात नाड़ियों को तर रख कर उन्हें गति करने में सुगमता पैदा करता है, तब आमवात उत्पन्न होता है। कोषों में यह द्रवविशेष रक्त से प्राप्त होता है। मिथ्या आहार विहार के कारण जब रक्त में से वह द्रवविशेष कोषों को नहीं प्राप्त होता और जब मान्स पेशियां तथा वात नाड़ियां सूखे कोषों में गति करने लगती हैं तब पीड़ा, दाह और शोथ उत्पन्न हो जाते हैं। कोषों की जीवनीय शक्ति नष्ट हो जाती है और तब अङ्ग अगतिशील दृढ़ हो जाता

है। आमवात का कारण रक्त दुष्टि और प्राण शक्ति की हीनता है।

आमवात में चाहे वाष्प दी जाय, चाहे छींट और स्पञ्ज की पट्टियां बांधी जावें, चाहे गर्म और ठण्डे पानी से स्नान कराये जावें, कष्ट प्रद स्थान पर डूश का प्रयोग किया जाय तब तक कुछ लाभ नहीं होता जब तक जिह्वा लाल रहती है, उस पर मैल की तह चढ़ी रहती है। जिह्वा का लाल होना या उस पर मैल की तह चढ़ा होना सिद्ध करता है कि आमाशय यकृत आँतों की अन्तः श्लैष्मिक कला में चिरस्थाई शोथ है। जब तक यह शोथ दूर न हो जावे, तब तक आमवात दूर नहीं हो सकता। इस शोथ का मुख्य कारण पोषक नाड़ियों की प्राण शक्ति की क्षीणता है, अतः आमवात की यथार्थ चिकित्सा पोषक वात नाड़ियों को बलवान करना है।

गृध्रसी (Sciatica)

[Sciatic nerve] श्याटिक नर्व में उपस्थित आमवात को गृध्रसी कहते हैं।

यह पीड़ा श्रोणी प्रदेश से आरम्भ होती है और नीचे ऊरू तथा जङ्घा के पीछे से हो कर पांव तक पहुंचती है। इस के कारण बहुत से व्यक्ति निकम्मे हैं। इन में से कुछ तो सर्जनों के कृत्रिम उपायों के कारण ऐसे हो गये हैं। पोषक बलों की जागृति के सिवाय और कोई तरीका नहीं है जो अङ्ग को जीवन दे सकता हो। छाले डालना, लोशन लगाना चीरा देना, खुरचना या कपिङ् करना आदिउपाय रोग को बढ़ाते हैं, शोथ को भी कम नहीं करते बढ़ाते ही हैं और जो कभी न कभी ऊरुसन्धि में वर्तमान उपास्थि (cartilage) को मोटा कर देते हैं और हड्डी को कप (cup) से बाहर कर देते हैं। हड्डी जोड़ से हट कर बाहिर निकल जाती है। कई डाक्टर दर्द को कम करने के लिये मार्फिया (अफीम का सत) को सूची वेध से मांस के अन्दर डाल देते हैं। इस से दर्द कुछ काल के लिये शान्त हो जाती है और रोगी रोग मुक्त समझ लिया जाता है। इस प्रकार प्रायः किया जाता है। यदि प्रारम्भ से ही पोषक बलों की वृद्धि की

जावे, पूर्ण विश्राम दिया जाय और ठण्ड से बचाया जाय, साधारण पौष्टिक भोजन पर रक्खा जाय त्वचा को कवोष्ण जल और भाफ़ लगाई जाय तो आराम आ जाता है। अन्य घातक प्रयोगों को छोड़ कर प्रारम्भ से ही इन का प्रयोग करना चाहिये।

क्षय (consumption)

यह कभी न हो यदि पेट ठीक रहे या पाकस्थली में विकार उत्पन्न न हो। फुफ्फुस हजारों छोटी २ वायु प्रणालिकाओं से व्याप्त रहते हैं। ये नालियां भी सूक्ष्म वायु प्रणालिकाओं से ढकी रहती हैं। जिस मान्स में या जिन तन्तुओं में ये पड़ी होती हैं उस की रचना भी बहुत सूक्ष्म होती है। जहां इतनी सूक्ष्म रचना हो वहां आवश्यक है कि उस को नया बनाने के लिये जो सामान हो वह अवश्य उत्तम होना चाहिये क्योंकि यह रचना प्रतिक्षण तीव्र कार्य करती हुई शरीर के अन्य भागों को

तरह टूट रही है। जिन मनुष्यों की पाचन शक्ति दुर्बल है या जिन्हें भोजन पर्याप्त नहीं मिलता अथवा जिन का भोजन तुच्छ होता है उन का रक्त अशुद्ध हो जाता है। इसी अशुद्ध रक्त से फेफड़ों की बारीक रचना बनाये जाने को होती है। प्रकृति इसे रचना के लिये लगाती है यत्न होता है, पता लगता है कि रचना इस से नहीं बन सकती। फिर इस अस्वस्थ निकम्मे पदार्थ को शरीर से बाहिर फेंकने के लिये यत्न होता है। इसी यत्न के रूप में उभार (Tubercles) और फोड़े (abscess) निकल आते हैं। इन का निकलना शरीर में से रोग को दूर करने के लिये प्रकृति की ओर से यत्न है। फेफड़े के वे भाग, जहां इस प्रकार के यत्न आरम्भ होते हैं, नष्ट हो जाते हैं। परन्तु उन नष्ट स्थानों के ऊपर एक तह आ जाती है। इस तह को Cicatrix कहते हैं। इस तह के द्वारा उभार और फोड़ों के स्थान के चारों ओर नालियों के मुख के बन्द हो जाने से हानि रुक जाती है, परन्तु साथ ही नालियों का विस्तार और वायु लेने की योग्यता कम हो

जाती है। ऐसे मनुष्यों के फेफड़ों की शक्ति पहिले से कमज़ोर पड़जाती है। तो भी हज़ारों ऐसे रोगी मनुष्य स्वस्थता के साथ जीवन व्यतीत करते हैं और पूर्ण बुढ़ापे तक की उमर भोगते हैं।

कमज़ोर भोजन, हवा रहित बन्द मकानों में रहना, अत्यन्त परिश्रम, आदि के कारण अजीर्ण, रक्तजिह्वा, ज्वर, खांसी रोग हो जाते हैं। इन के होने से सूचित होता है कि वायु प्रणालिकाओं की श्लैष्मिक कला में शोथ फैल गई है। ऐसे समय छाती के ऊपर क्षार वा दाहक पदार्थ प्रयोग किये जावें तो वे त्वचा के द्वारा अन्तः प्रविष्ट हो कर शोथ को अधिक २ बढ़ा देते हैं और साथ ही फफोलों को उत्पन्न कर के जीवन शक्ति को घटा देते हैं। स्वाभाविक कमज़ोर फेफड़ों में एक बार आरम्भ हुआ वास्तविक रोग कभी २ ऐसे अस्वाभाविक उपायों से आराम भी हो जाता है। ज्योंही इस रोग के कारण उपस्थित हों त्योंही निम्न लिखित सावधानतायें लेनी चाहियें, जिन में मुख्य २ ये हैं—वनस्पति का भोजन, स्वच्छ खुली

वायु, विश्राम, जलचिकित्सा का हलका प्रयोग। जब खांसी और कफ़ का निकलना आरम्भ हो जावे तो समझलो कि रोग आरम्भ हो चुका है। ऐसी अवस्था में यदि रोगी सावधान हो जावे तो रोगी नीरोग हो जाता है।

खांसी

(Bronchitis)

बड़ी वा छोटी श्वास प्रणाली और वायु नलिकाओं की शोथ को खांसी कहते हैं। गले में ठण्ड लग जाना, ऊंचा और लम्बा बोलना या गाना, आमाशय की शोथ ये इस रोग के मुख्य कारण हैं। शोथ जिस समय श्वास प्रणाली के ऊपर के ही हिस्से में हो तो थोड़ी सी सावधानी से नष्ट हुई cilia वाली तह शीघ्र ही बन जाती है। यह आवरण श्वास प्रणाली के ऊपर के सिरे से लेकर छोटी वायु प्रणालिकाओं के बारीक सिरों को छोड़ कर शेष सब पर फैला होता है। ये छोटे cilia या बिन्दु लगातार हिलते रहते हैं।

इतने गति शील होते हैं कि इन्हें शरीर से पृथक् कर के बाहिर किसी गर्म mucilage में रक्खा जावे तो भी गति करते रहते हैं। इन के कारण श्लैष्मिक कला में वर्तमान श्लेष्मा प्रतिक्षण हिलती रहती है, ताकि पड़ी २ सड़ न जावे और सड़ने से वात नाड़ियों तथा cellular tissue को ख़राब न करे।

श्वास प्रणाली के सिर की शोथ cilia को स्थान च्युत कर देती है। श्लेष्मा में गति होनी बन्द हो जाती है। फिर श्लेष्मा सड़ने लगती है। सड़ने से Cellular tissue और वात नाड़ियों में क्षोभ प्रारम्भ हो जाता है। फिर उस सड़ी हुई श्लेष्मा को बाहिर फेंकने के लिये यत्न आरम्भ होता है अर्थात् खांसी उठती है। यह वही यत्न है जो cilia स्वस्थ अवस्था में करता था। श्वास प्रणाली के शिखर पर का cilia ज़ोर से खांसने से बाहिर फेंक दिया जाता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से कफ़ को देखने से cilia उस में दिखाई पड़ते हैं।

श्वास-प्रणाली के ऊपर के हिस्से से जो खांसी उठती है वह तभी आराम होती है जब cilia अपने स्थान में आ जाता है। इस के लिये गीला कपड़ा या गीली फ़लालैन एक दिन रात गले पर लपेट रखना चाहिये। इस से शोथ दूर हो जावेगी और अङ्गों को शक्ति प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

यदि प्रारम्भिक हलकी श्वास प्रणाली की शोथ की उपेक्षा की जावे तो वह शोथ वायु नलिकाओं से नीचे उतर कर फुफ्फुस में पहुंच जाती है। तब रोग का स्वरूप भयानक हो जाता है। इस के लिये गले पर राजिका प्रलेप (mustard plaister) १०, २० मिनिट लगाना उत्तम है। रात को फ़लालैन का गीला ऊनी कपड़ा गले पर लपेटना चाहिये। प्रातः काल जागने पर गले और छाती को ठण्डे पानी से धोना चाहिये। छाती से नीचे तक सम्पूर्ण शरीर शीतकाल में गर्म पानी में रक्खा जावे। दुपहर से पहिले २० मिनिट तक साधारण गर्म पानी से सेक भी करना चाहिये।

तौलिये से छाती को खूब मलना चाहिये। दुपहर के पश्चात् ७० अंश फा० के जल से १० मिनिट तक सीवन स्नान कराना चाहिये। पांव १०५ अंश फा० के जल में पड़े रहें। इस जल में कुछ राई का चूर्ण भी पड़ा रहे। १० दिन तक लगातार ऐसा ही किया जा सकता है। फिर प्रातः स्नान और तीसरे पहर सीवन स्नान रख कर शेष सब बन्द कर सकते हैं जब तक कफ़ बन्द न हो। मान्स तथा अन्य सब उत्तेजक पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार दुर्बल मनुष्य को भी तीन सप्ताह से अधिक पुरानी खांसी के आराम होने में नहीं लगते। छाती को ठण्ड न लगने दो। ठण्ड के समय छाती पर गर्म कपड़ा रक्खो जिस से पसीना आवे।

Chronic Pulmonary consumption.

(पुरातन फुफ्फुस क्षय)

जब खांसी में कफ़ कुछ रङ्गीन, काला हरा सा आने लगे गाढ़ा २ होजावे और कभी २ रक्त भी

रेखा भी उस में पहिचान में आवे तो समझो कि रोग ने फुफ्फुस के शरीर पर आक्रमण कर लिया है। उस समय इसे फुफ्फुस क्षय कहते हैं। जब यह अवस्था हो और फेफड़ों से पस निकलती हो, गांठें (Tubercles) पड़ गई हों, उस समय लेटे २ ही शरीर का ऊपर का आधा हिस्सा कोसे जल में भीगे हुए तौलिये से मलना चाहिये। फिर ऊपर के हिस्से को ढक कर यही क्रिया शरीर के नीचे के भाग पर करनी चाहिये। जहां पसीना आता हो वहां साबून लगा कर फिर तौलिये से मलना उत्तम है।

क्षय रोग भिन्न २ अनेक कारणों से होता है। कारणों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। प्रायः ठण्ड लगने से होता है, या बिना अभ्यास के गर्मी से एक दम ठण्ड में जाने से होता है, वायु के ठण्डे झोकों में बैठने से भी होजाता है, गीले कपड़े पहने हुए सोने से भी होजाता है। यदि फेफड़े पहिले ही पर्याप्त दुर्बल हों तो फेफड़ों में

सीधी शोथ हो सकती है, चाहे श्वास प्रणाली में शोथ न हो और कफ़ भी बिलकुल न आता हो, सांस लेना कठिन होता है और तीव्र वेदना का अनुभव होता है।

यह ठीक है कि जो फेफड़े की बीमारी से मुक्त होते हैं अजीर्ण से पीड़ित हो जाते हैं। अजीर्ण के कारण आमाशय, आंत और यकृत की श्लैष्मिक कला में चिरस्थायी शोथ उत्पन्न हो जाती है। शरीर इसे निर्जीव भागों में फेंकने का यत्न करता है इस का परिणाम यह होता है कि फफोले, फोड़े फुन्सियां और दाद आदि निकल आते हैं। बहुत से इसी प्रकार मृत्यु से बच चुके हैं कि उन के टूटे हुए अङ्ग ने स्वस्थ अङ्ग से शोथ ग्रहण करली है। परन्तु जब शरीर शोथ को बाहिर भेजने में असमर्थ होता है तब जीवन शक्ति देने वाले अङ्गों में से जो सब से निर्बल होता है वही आक्रान्त हो जाता है और रोग भयानक रूप में प्रकट होता है। जिस मनुष्य को माता पिता से ही कमज़ोर

फेफड़े मिले हैं उसे क्षय की बहुत सम्भावना रहती है। दरिद्र भोजन, दूषित वायु वाले स्थानों में निवास, अतिश्रम आदि कारण अजीर्ण, रक्तजिह्वा, ज्वर, कास (श्लैष्मिक कला की शोथ का वायु प्रणालिकाओं में प्रसार) को उत्पन्न कर देते हैं।

उन सब अवस्थाओं में जिन में शोथ एकदम आरम्भ हो जाती है हमारी लघु जल चिकित्सा अद्भुत प्रभाव दिखलाती है। उस समय जितना गर्म पानी सहारा जासके उतने गर्म पानी में कपड़ा भिगो भिगो कर शोथ युक्त स्थान पर आध घंटे तक सेक करना चाहिये। फिर गर्म पानी में तौलिया भिगो कर निचोड़ कर पौण घण्टा तक लपेट दे। फिर एक मिनिट तक ८६ अंश फा. के जल में शरीर को खूब मलते हुए स्नान करे यदि दर्द फिर भी जारी रहे तो गर्म पानी से फिर सेक करे और गर्म पानी में भीगा निचोड़ा कपड़ा लपेटे जब तक दर्द शान्त न हो जाय। फिर छाती पर गर्म कपड़ा लपेट दे। एक सप्ताह से कई सप्ताह तक

गर्म कपड़ा रात दिन पहिनाये रखना चाहिये। जिस दिन दर्द बिल्कुल शान्त हो जाय उस से अगले दिन प्रातः काल साबुन मलकर और गीले तौलिये से शरीर को रगड़ कर स्नान कराना चाहिये। कई दिनों तक बिल्कुल शान्त होकर बिस्तर पर लेटा रहे। यदि दर्द फिर शुरू हो तो फिर वही गर्म पानी से सेक और तौलिये से छाती को लपेटने की प्रक्रिया करे। जब सांस लेने में दर्द बिल्कुल शान्त हो जावे तो प्रातः साधारण जल के द्वारा साबुन मलकर शरीर को तौलिये से मलते हुए स्नान करावे, गर्म पानी में खड़ा रक्खे, गीला कपड़ा लपेटे और बिलकुल शान्त रहे। तीसरे पहर ८६ अंश फा० जल से सीवन स्नान कराना चाहिये। इस समय छाती पर गर्म पट्टी रक्खे। रात को सोने से पहिले १०५ अंश फा० के राई के जल में ३ मिनट तक पांव रक्खे। फिर ठण्डे भीगे कपड़े से पांव पूंछ डाले। फिर रूई की जुराब पहिने। जुराब के पञ्जे साधारण जल में भीगे होने चाहियें और उस पर भेड़ की शुष्क ऊन होनी चाहिये।

मांस तथा सब उत्तेजक पदार्थों का सेवन छोड़दे, काफ़ी और मसाले भी नहीं लेने चाहियें। दूध साधारण पेय वस्तु के तौर पर नहीं लेना चाहिये क्योंकि यह भारी है। प्रथम दिन थोड़ा और हलका भोजन लेना चाहिये।

जब मनुष्य स्वस्थ हो जावे तब भी लगभग ठण्डा पानी बहाता हुआ कपड़ा लपेटना, गर्म गद्दे पर खड़ा होना, गर्म जल में खड़ा होना, छाती पर गर्म कपड़ा रखना, गीला कपड़ा लपेटा हो तो छाती पर सूखा कपड़ा रखना, यह प्रक्रिया प्रातः काल जागने पर करनी चाहिये, ८५ अंश के जल से सीत्रन स्नान करना चाहिये। तीसरे पहर या सायंकाल गर्म गद्दा निकाल देना चाहिये। जबतक रक्तसञ्चार बिलकुल ठीक न हो जावे तब तक गर्म या शीत उपचारों से रक्तसञ्चार को उत्तेजित न करना चाहिये। जब शोथ बढ़ रही हो तब स्वेदन जितना गर्म हो उतना अच्छा है, परन्तु जब वेदना शान्त हो तब ऐसा न करे क्योंकि तब ऐसा करना

कमज़ोर कर देगा और क्षोभ उत्पन्न करेगा। ठण्ड में जाना हो तो श्वास यन्त्र (Respirator) लेकर जावे। सोने का कमरा ठण्डा हो तो वहां भी यन्त्र साथ रक्खे।

फेफड़ों की शोथ को शान्त करना बहुत कठिन और भयानक काम है। इस का कारण यह नहीं कि फेफड़े में बारीक नलिकाओं का समूह है, परन्तु फेफड़े चूंकि निरन्तर गतिशील रहते हैं और लगातार रक्त को ओपजन देते रहते हैं तथा गंदी हवा को बाहर फेंकते रहते हैं।

शोथ कैसे पैदा होती है

शरीर में शिराएं अशुद्ध रक्त को शरीर में से लेकर हृदय में पहुंचाती हैं और धमनियां हृदय से शुद्ध रक्त को लेकर शरीर में पहुँचाती हैं। इन रक्तवाहिनी नाडियों के साथ इन्हें गति देने के लिये मान्स पेशियां लगी रहती हैं। मान्स पेशियों में वातनाडियों के कारण संकोच विस्तार की गति होती रहती है। उस गति के कारण शिराओं में

रक्त सञ्चार होता रहता है। वात नाडियों में जिन केन्द्रों से प्राण (विद्युत् शक्ति) का सञ्चार होता है। उन केन्द्रों से आती हुई प्राण शक्ति थोड़ी भी न्यून हो जावे तो रक्त की गति मन्द पड़ जाती है और शिराओं में रक्त स्थिर होजाता है हृदय में नहीं पहुंचता। स्थिर रक्त में सञ्चित हुए मलों को निकालने का भार फेफड़े, जिगर, गुर्दे, ग्रन्थियां, और त्वचा आदि पर विशेष पड़ जाता है। इस के प्रति अति श्रम के कारण ये अङ्ग रोगी हो जाते हैं और सम्पूर्ण शरीर विषैला होजाता है। विष के कारण शरीर टूटने लगता है और मृत्यु उपस्थित होती है। जहां २ यह विष इकट्ठी होती है वहां २ शोथ उत्पन्न हो जाती है।

इस शोथ का मूल कारण पोषक वात नाड़ियों की जीवन शक्ति का कम हो जाना है अतः तीव्र वा चिरस्थाई शोथ को दूर करने के लिये पोषक वात नाड़ियों में बल पैदा करना चाहिये। इस के लिये यदि वेदना तीव्र हो तो उष्णस्वेद करना चाहिये

और उष्ण गद्दे पर चुप चाप लिटाना चाहिये। जब कुछ आराम मालूम हो तो गर्म पानी में भीगा निचोड़ा कपड़ा रोगी के उदर पर लपेट दें। ऊपर से गर्म कम्बल उढ़ादें। आध घण्टे तक इसी प्रकार पड़े रहने दें। फिर लपेटे कपड़े को हटा दें. साधारण पानी में कपड़ा भिगो कर उदर को खूब मलें या ७५ अंश फा० जल में १ मिनिट तक खूब मलते हुए स्नान करावें। इतने पर भी यदि वेदना शान्त न हो तो फिर उष्ण स्वेद की प्रक्रिया करें और गर्म पानी में भीगा कपड़ा उदर पर लपेटें जब तक दर्द शान्त न हो। ऐसा करने से शोथ अवश्य बैठ जावेगी। जब दर्द शान्त हो जाती है तब बन्धन खुल जाते हैं, रक्त सञ्चार होने लगता है, भूख लगती है।

आमाशय की शिकायतें

आमाशय की शिकायतों के अनेक कारण होते हैं। यदि उन कारणों का ठीक ज्ञान हो जाय तो चिकित्सा में अशुद्धियां न हुआ करें। मुख्य कारण

दिमाग से अत्यधिक काम लेना है । दिमाग से अत्यधिक काम लेने में, वह जीवनीय शक्ति (प्राण शक्ति वा विद्युत् शक्ति) जो आमाशय में उत्पन्न भोजन के रस में रासायनिक परिवर्तन विशेष उत्पन्न कर रही है, अपने केन्द्र से दिमाग की ओर खिंच जाती है । इस का परिणाम यह होता है कि अम्लता उत्पन्न हो जाती है । आमाशय में बने हुए रस में उत्पन्न अम्लता आमाशय और ग्रहणी के अन्तरावरण को क्षुब्ध कर देती है । यहां से यह अम्लता आन्तों में जाती है । आंतों से यह रक्त में प्रविष्ट होती है । यह विकृत रस विकृत रक्त को उत्पन्न करता है और उस विकृत रक्त से शरीर के तन्तु विकृत बनते हैं । विकृत रक्त शरीर में चक्कर लगाता हुआ सूक्ष्म वात संस्थानिक सूक्ष्म तन्तुओं के साथ सम्बद्ध होता है । इस सम्बन्ध से वात नाड़ियां क्षुब्ध हो जाती हैं और उन की शक्ति मारी जाती है, क्योंकि उनके आश्रय के लिये स्वस्थ पदार्थ प्राप्त नहीं होता है ।

जब मनुष्यों के पेट बिगड़ जाते हैं तब वे उन्हें ठीक करने के लिये साधारणतया औषधियों का सेवन करते हैं। औषध सेवन से तात्कालिक आराम मिल जाता है। औषध आमाशय को कार्य करने के लिये बाधित कर के शिकायत अधिक बढ़ा देते हैं। आमाशय को अधिक उत्तेजित करने के दुष्परिणाम रूप में शिकायत अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये—जब अम्लता उत्पन्न हो जाती है तब क्षार, सोडा, मैग्नीशिया आदि के सेवनरूप उपाय किये जाते हैं कि अम्लता दूर हो जावे। जहां तक आमाशय के उस समग्र के पदार्थों के साथ सम्बन्ध है अम्लता को ये क्षार उदासीन कर के शान्त कर देते हैं, परन्तु चूंकि सम्पूर्ण क्षार जीवन शक्ति या वात नाड़ियों की विद्युत् शक्ति को क्षीण करते हैं, अतः आराम क्षणिक होता है और तकलीफ़ अधिक स्थिर हो जाती है और अगली बार जब भोजन आमाशय में लिया जाता है तब यह अनुभव में आती है।

इस प्रकार आमाशय और ग्रहणी का चिरस्थाई रोग प्रायः उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य सोडे के लगातार प्रयोग के बिना नहीं रह सकता है। सोडा निरन्तर प्रयोग करते २ कुछ समय के पश्चात् आराम देना बन्द कर देता है। तकलीफ़ अत्यन्त दीर्घ काल तक के लिये स्थिर हो जाती है। अन्त को मृत्यु ही रोगी को दुःख से छुड़ाती है।

स्मैइले कहता है कि जब कभी मुझे अम्लता उत्पन्न होती है जो कि अतिश्रम के कारण होती है तब मैं विश्राम के सिवाय और कोई प्रतिकार नहीं करता हूँ। वह कहता है कि मैं साधारण भोजन लेता रहता हूँ। भोजन में किसी उत्तेजक पदार्थ चटनी, चाट, मसाले रायी, मिर्च, या Pastry आदि का प्रयोग नहीं करता हूं। दिमाग़ को पूर्ण विश्राम देता हूँ जो जीवन शक्ति दिमाग ने पोषक नाड़ियों से खैंची है उसे लौटाता रहता हूं। बहुत से मनुष्य बेचैन और चिन्तित हो जाते हैं यदि उन के आमाशय में

अम्लता उत्पन्न हो जाय । वे इस को लेकर कभी आराम नहीं लेते हैं । पहले एक इलाज करते हैं और फिर दूसरा। अब सोडा लिया तो फिर ब्रान्डी या अन्य कोई उत्तेजक पदार्थ । इस प्रकार लेते ही रहते हैं जब तक कि श्लैष्मिक कला की चिरस्थाई शोथ वास्तविक रूप में प्रारम्भ न हो जावे । मैं अम्लता से कष्ट पाता रहता हूं जब तक यह विश्राम और भोजन से दूर न चली जावे । यदि कई दिन लगातार लग जावें तो भी कोई क्षति नहीं होती । अम्लता को दूर करने के यत्न, जिन में प्राकृतिक उपायों द्वारा जीवनीय शक्ति को बढ़ाने की अपेक्षा अन्य उपाय अवलम्बन किये जाते हैं, वातिक क्षोभ को बढ़ाते हैं ।

तमाखू और अफ़ीम आमाशय रोग के बड़े सफल कारण हैं । ये दोनों जीवन शक्ति का ह्रास करते हैं, अम्लता और आध्मान उत्पन्न करते हैं । विनाशक आदतों के होने से तब तक दूर नहीं होते जब तक वे आमाशय

और वात नाड़ियों को आगे के लिये बिल्कुल निकम्मा नहीं कर छोड़ते। आमाशय को आवृत रखने वाली श्लैष्मिक कला प्रथम आहत होती है। इस के आहत होने से जिह्वा लाल और मल से लदी हुई हो जाती है। फिर वह शोथ, निस्सन्देह, वात नाड़ियों में फैल जाती है और इस के कारण जिह्वा श्वेत हो जाती है। सहानुभूति के कारण दिमाग़ भी बचता नहीं है। आमाशय का आवरण करने वाली श्लैष्मिक कला ग्रहणी और आंतो में भी गई होती है, पित्त वाहिनी नाली में से गुज़रती हुई ऊपर यकृत् में पहुंची होती है, और पैङ्क्रियास में भी जाती है। ये सब आपस में सम्बद्ध होने से आमाशय की श्लैष्मिक कला में विद्यमान शोथ इन में भी सञ्चार कर जाती है। यदि मनुष्य का शरीर मज़बूत हो तो बिना किसी प्रकार की बाधा पहुंचाये दीर्घ काल तक बढ़ती रहती है। परन्तु किसी दिन यदि अधिक भोजन किया, या उत्तेजक पदार्थ अधिक खा लिये, या ठण्ड का तीव्र आघात हुआ तो सब गाड़ी की गाड़ी फुंक जाती है और

सम्पूर्ण शोथ सम्बन्धी कार्य किसी निर्बलतम अङ्ग में जमा हो जाता है चाहे वह अङ्ग फेफड़े हों, चाहे यकृत् हो, आमाशय वा आंतें हों। ऐसे समयों में रक्त मोक्षण, छाले डालना, और कैलोमल प्रभृति विरेचन तत्काल और तीव्रता से प्रयोग में लाये जाते हैं कि किसी प्रकार शोथ कम हो जावे परन्तु इस के साथ जीवन का बल और रक्तगत जीवनीय शक्ति इतनी कम हो जाती है कि फिर वह प्रायः कभी पूर्वावस्था को प्राप्त नहीं होती। उष्ण जल से स्वेद, शरीर को लपेटना, साधारण भोजन और विश्राम शायद ही कभी पूर्ण इलाज न करते हों और रोगी को बिना हानि के न करते हों।

जब किसी मनुष्य की जिह्वा असाधारण लाल, फटी हुई, दाह युक्त हो तब समझना चाहिये कि जीवन ख़तरे में है। यदि विश्राम और साधारण इलाज किया जाय तो बिना कोई हानि उठाये कारण दूर किया जा सकता है। परन्तु उन सब अवस्थाओं में जिन में जिह्वा की यह अवस्था होने

दी जाती है सप्ताहों के इलाज से कुछ नहीं होता किन्तु इलाज में महीने लग जाते हैं।

मैल चढ़ी हुई शोथ युक्त जिह्वा बतलाती है कि रक्त गन्दा है।

बदबूदार पदार्थ फेफड़ों से आता है आमाशय से नहीं। जब कोई जिह्वा हमेशां ही मैल से परिप्लुत रहे तब शीत के तीव्र आघात से टाइफ़स ज्वर उत्पन्न हो सकता है। जिह्वा की मलिन अवस्था में तीव्र विरेचन का प्रयोग अवस्था को दस गुणा बढ़ा देता है। गर्म और ठण्डे पानी में भीगी चद्दरों से त्वचा को उत्तेजित करना, तुषार स्नान, शीत जल स्नान या पानी से भरी या भीगी चद्दर का लपेटना, प्रति दिन ५, ६ या अधिक गिलास ठण्डे पानी के होंठों से सिप करते हुए पीना, उत्तेजक पदार्थ, चाय और सब से अधिक मांस का त्याग करना, रोगी के बल के अनुसार जल चिकित्सा की राशि नियत करना, नेचर को कार्य करने देना इस लिये कि दिन में अधिक जल के प्रयोग के

द्वारा त्वचा और सम्पूर्ण शरीर की अधिक उत्तेजना से कोई हानि उत्पन्न न हो जाय, यह उचित उपाय है। यह ध्यान रखना चाहिये कि शरीर को अधिक स्नान कराने से त्वचा से बहुत अधिक मल के निकल जाने से शरीर का बल, किसी प्रकार के घातक परिणाम को दिखलाता हुआ, कम न हो जाय।

आमाशय के रोग अनेक विभिन्न कारणों से होते हैं। कारणों को देख कर चिकित्सा करनी चाहिये। बिलकुल एक ही चिकित्सा सर्वत्र लागू नहीं हो सकती है।

आध्मान (Flatulency)

भोजन के परिपाक काल में रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न गैसों के कारण आमाशय के फूल जाने को आध्मान कहते हैं। आध्मान हो जावे तो लोग ब्रान्डी लेते हैं, तमाखू पीते हैं, और कई उत्तेजक पान पीते हैं। ये सब उन कारणों को दस गुणा बढ़ा देते हैं जिन से रोग हुआ होता है।

प्रारम्भ २ में पोषक वात नाड़ियों की कमज़ोरी के कारण आध्मान होता है। पहिले अम्लता उत्पन्न होती है और फिर उफान उठता है। आमाशय और आन्तों में गैस उत्पन्न होती है। मज़बूत स्वस्थ मनुष्यों को आध्मान नहीं होता। जिन को यह हो जावे उन्हें धैर्य रखना चाहिये। इन को चाहिये कि उचित भोजन करें और विश्राम लें। हरे शाक, उत्तेजक पदार्थ छोड़ दें जब तक आमाशय अधिक शक्ति सम्पन्न होकर कार्य प्रारम्भ न करे। तब आध्मान दूर हो जावेगा। अन्य किसी प्रकार से यह आराम न होगा।

जिगर की शिकायतें।

इन के मुख्य चिन्ह शरीर का पीला रंग हो जाना जी मचलना, विवमिषा, जिह्वा पर मल जमना, सिर दर्द, मुख वैरस्य, तबियत का गिर जाना, रक्त में चक्कर लगाते हुए पित्त का मस्तिष्क में पहुंच कर वात नाड़ियों को क्षुब्ध करने से पागलपन इत्यादि हैं। जिस समय जिगर काम ठीक

नहीं करता है उस समय वह रक्त में से पित्त को पृथक् नहीं कर सकता है। पित्त रक्त में चक्कर लगाता रहता है। और शरीर के जिस भाग के साथ स्पर्श में आता है उसी भाग को रोगी कर देता है। अत्यधिक थकावट और अनुचित भोजन के कारण पोषक वात नाड़ियां कमज़ोर पड़ जाती है और इसी कारण रक्त में से पित्त पृथक् नहीं होता है। रक्त में इतना अधिक पित्त इकट्ठा हो जाता है कि रोग को कामला कहते हैं। जो पित्त ग्रहणी में आता है वह इतना कड़वा, तेज़ और जलाने वाला होता है कि श्लैष्मिक कला में विद्यमान ज्ञान तन्तु इस की उपस्थिति को सहन नहीं कर सकते हैं तत्काल इसे या तो वमन के द्वारा ऊपर से बाहिर निकाल देते हैं या दस्तों के द्वारा नीचे से बाहिर निकाल देते हैं।

इसके लिये सब से पहिले यह आवश्यक है कि आमाशय में कुछ भी भोजन न डालाजाय। भोजन डालने से क्षोभ में वृद्धि होगी। जिगर जब बिल्कुल

काम न करता हो तब आमाशय, ग्रहणी और आंतों का ख्याल कर के थोड़ा २ साधारण भोजन खाते रहो। जब तक उन में काम करने की ताकत न आजावे कोई उत्तेजक पदार्थ मत खाओ। चाय, कौफी, मास्न और दूध मत ग्रहण करो। आटे के वे पदार्थ जिन में निशास्ता अधिक हो, हरेशाक मत खाओ। परन्तु आलू का आटा थोड़ा खा सकते हो।

आमाशय और आंतों पर गर्म पानीसे स्वेदन करो फिर ठण्डे पानी में तर चद्दर का प्रयोग करो, फिर शरीर को गीले कपड़े से लपेट दो। जब कभी बहुत थकावट से पित्त वृद्धि हो जावे, तब गीला कपड़ा लपेटने से शीघ्र शान्त होता है। साधारणतया एक बार पर्याप्त है। परन्तु यदि तकलीफ़ अधिक हो तो दो तीन दिन में एक बार करते रहें। यदि जिगर का रोग पुराना हो गया हो तो निम्न लिखित प्रकार से जिगर को लपेटना बहुत लाभप्रद है। शरीर को रात दिन गीले कपड़े से लपेटना बहुत लाभदायक है। ७० अंश फा० के या ठण्डे जल

में १५ मिनिट बैठ कर स्नान करना चाहिये, कभी कभी राई वाले गर्म पानी में पांव भी रखने चाहियें। जो मनुष्य गर्म मुल्कों में गये हैं, वहां बहुत अनियम से रहे हैं, उन का जिगर कभी २ बिलकुल काम करना बन्द कर देता है। यह कभी ठीक नहीं होता है। परन्तु सावधानी रखने से और जल चिकित्सा के हल के और सरल उपाय करते रहने से आयु जल्दी समाप्त नहीं होती चलती रहती है। इन रोगियों को पित्त की वमन नहीं देखी जाती इन का जी नहीं मचलाता, भूख खूब लगती है, परन्तु जो कुछ भोजन वे लेते हैं उस से उन का पोषण होता नहीं दीखता, रंग फीका पीला सा हो जाता है, रक्त में रक्ताणुओं की बहुत कमी हो जाती है। ऐसे रोगियों का कुछ नहीं किया जा सकता है। एलोपैथिक और हाइड्रोपैथिक कितनी भी तीव्र चिकित्सा की जाय केवल उन के जीवन को छोटा ही कर देगी और कष्ट बढ़ायेगी। फिर भी भोजन, विश्राम और शरीर पर जल का हल का प्रयोग सावधानी के साथ करना ही चाहिये। जल

का प्रयोग करते हुए ध्यान रक्खें कि जीवन शक्ति बहुत कम हो चुकी है। यदि रोग में कुछ भी फ़र्क न मालूम हो तो निम्न लिखित प्रकार से पेट पर गीला कपड़ा रक्खो। इस विधिको स्टोमक पैक (Stomach pack) कहते हैं:—

आमाशय अतिक्षुब्ध हो तो रोगी को शय्या पर पूर्ण विश्राम करने दो। भोजन बिलकुल न दो। ठण्डा पानी बार २ होठों से सिप कराओ। एक दोहरा तौलिया ठण्डे पानी से भिगो कर निचोड़ कर आमाशय पर रक्खो। ऊपर से मोटा गर्म कम्बल उढ़ाओ कि शरीर का तापमान सुरक्षित रहे। दस दस मिनिट के बाद तौलिया उसी प्रकार बदल २ कर रक्खो। जब तक बीमारी ठहर न जावे तब तक पानी के सिवाय कुछ भी भोजन मत दो। आमाशय में जब तक क्षोभ है तब तक भोजन से एक दो दिन तक भी परहेज़ रखने से कोई हानि नहीं है। अनेक भयानक रोगियों में केवल यही एक इलाज लगता पाया गया है।

ऐसी अवस्थाओं में कैलोमल यद्यपि जीवन का नाशक है तथापि इसका प्रयोग कर ही डालते हैं। पैत्तिक आक्रमणों में जिगर और आमाशय पर राई का प्लस्तर निस्संकोच प्रयोग कर दिया जाता है। इस वानस्पतिक प्रयोग से ऐसी कोई हानि की सम्भावना नहीं जैसी पारदीय प्रलेपों के लगाने से छालों के कारण हानि होने की सम्भावना है। यदि अत्यन्त तीव्र दर्द के दौरे आवें तो गर्म पानी से सेक करें गर्म पानी में स्नान और गर्मपानी में भीगा कपड़ा भी लपेटना चाहिये।

गुर्दे के रोग—

गुर्दे, त्वचा, यकृत् और फेफड़े ये चार मुख्य साधन शरीर में से मलों को बाहिर फेंकने के हैं। यदि त्वचा और जिगर शरीर और रक्त में से मलों को निकालने में सुस्त पड़ जायं तो काम का बोझ गुर्दों पर आपड़ता है। यदि गुर्दे और त्वचा अपने काम में ढीले

पड़जावें तो जिगर पर काम का बोझ आपड़ता है। इसी प्रकार अन्यों के विषय में भी समझना चाहिये। शरीर में से जैसे पाखाने को आंत बाहिर फेंकती हैं वैसे ही रक्त मेंसे मूत्र को छान कर गुर्दे मूत्राशय में लाते हैं और पीछे वह बाहर निकल जाता है। गुर्दे जब रोगी होते हैं तब मूत्र के अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ (रक्त का द्रव भाग, रक्त का जीवन, मधु, खांड इत्यादि) भी रक्त में से निकलने लगते हैं।

सब प्रकार की शरावें, गर्ममसाले, रसोइये की आविष्कृत भोजन सम्बन्धी अनेक पेचीदगियां रक्त में घूम कर गुर्दे और जिगर के पास आते हैं और कहते हैं कि हम से इस रक्त को बचाओ। ये पदार्थ गुर्दों में शोथ पैदा करते हैं। गुर्दे रक्त को साफ़ करने का काम भली प्रकार नहीं कर सकते हैं। इसका बोझ या तो जिगर पर जा पड़ता है या जिगर से गुर्दों पर आपड़ता है या दोनों से

त्वचा और फेफड़ों पर चला जाता है। इन पदार्थों के कारण जहां शोथ पैदा हो जाती है वहीं का काम ढीला पड़ जाता है।

जब गुर्दे रोगी होते हैं तब गुर्दों के स्थान पर कमर में दर्द प्रतीत होती है। वहां बेचैनी सी मालूम होती है। मूत्र बन्द हो जाता है। जो कुछ आता है वह गाढ़े पीले या लाल रङ्ग का होता है।

ऐसी अवस्था में आध घण्टे तक गर्मपानी में कपड़ा भिगो कर सेक करना चाहिये। पीठ पर दर्द के स्थान में सेक करें और शरीर के आगे भी सेक करें। इस से जिगर, आमाशय और गुर्दे तीनों में उन की कार्य करने की शक्ति बढ़ जावेगी। सेक करने के पश्चात् ठण्डेजल में या कोसे जल में कपड़ा भिगोकर मध्य भाग को खब रगड़ें। फिर मध्यभाग पर गीला कपड़ा लपेटें। २, ३ घण्टे के पश्चात् कपड़ा बदलते रहें। १०० से १०५ अंश फा०

गर्मजल में १५ मिनट तक बिठाकर स्नान करावें। फिर गीला कपड़ा पेट पर लपेट दें। कपड़ा दिन रात लिपटा रहने दें या केवल दिन भर ही लपेटें। कपड़े के ऊपर गर्म कपड़ा लपेट दें जिस से गर्मी सुरक्षित रहे। ठण्डे पानी के ६ से ८ तक गिलास दिन भर में पिलादें। इस से रक्त शुद्धि अच्छी प्रकार हो जावेगी।

गुर्दे की बीमारी में सब उत्तेजक गर्मपदार्थ, मिर्च मसाले, और मैदा की बनी चीजें, मांस सर्वथा छोड़ दें।

मधुमेह

इस रोग की चिकित्सा दवाइयों से बहुत ही कम होती है। गुर्दों में और विशेषतया वृक्कान्त्रों (malphigiontubes) में शोथ उत्पन्न करने के कारणों को, छोड़ने के स्थान में, अधिक मात्रा में प्रयोगकरने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि रोगी के बल को कायम रखने के लिये अधिक २ उत्तेजक

पदार्थ देने चाहियें। इस लिये नाना प्रकार की शराब और मान्स का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में आरम्भ कर दिया जाता हैं। इस से रचना दुगने वेग से नष्ट होने लगती है। यदि कुछ भी सहायता न कर के रोगी को वैसे ही छोड़ दिया जाता तो भी रचना का इतना विनाश न होता जितना तब होने लगता है जब रोगी के बल की रक्षार्थ उत्ते-जक पदार्थों का सेवन बढ़ा दिया जाता है।

शोथ का कारण रक्त में रहता है। उत्तेजक पदार्थ और अनुचित भोजन के कारण रक्त रोगी हो जाता है। इस के रासायनिक धर्म बिगड़ जाते हैं। रक्त के द्वारा रोग गुर्दों में और वृक्कान्त्रों में पहुंच जाता है।

चिकित्सा के लिये मधु मेह के रोगी के भोजन पर अधिकार करना चाहिये। वृक्क रोगों के सम्बन्ध में कहे गये सब उत्तेजक आदि पदार्थ बिलकुल रोक देने चाहियें। मान्स बिलकुल छुड़ा-देना चाहिये। गर्म पानी से हलकी स्वेदनक्रिया

करे । ८० अंश का जल से सोचन स्नान कराना चाहिये । ८० अंश का जल अधिक ठण्डा मालूम हो तो आरम्भ में ९० अंश का जल प्रयोग करना चाहिये । इस रोग में जीवन शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है, अतः जल चिकित्सा के तीक्ष्ण प्रयोग करते हुए बहुत सावधान रहना चाहिये ।

आंतों के रोग

आंतों में बहुत भयानक रोग हो जाता है। आंतों की श्लैष्मिक कला का शोथ बहुत भयानक रोग है । यदि इसे प्रारम्भ में ही न सम्भाल लिया जाय तो यह घातक परिणाम उपस्थित करता है। श्लैष्मिक कला झड़ झड़ कर निलकने लगती है। कभी २ इस में रक्त की रेखा भी दीखा करती है। जब आंतें ढीली ही रहने लग जावें तो समझना चाहिये कि वात नाड़ियां कमज़ोर पड़ गई हैं और रोग भयानक परिणाम उपस्थित कर सकता है ।

ऐसी अवस्था में सीवन स्नान बहुत उपयोगी है। यदि शरीर में बल पर्याप्त हो तो ठण्डे पानी से स्नान लेवें। साथ ही सौषुम्नकाण्ड को रगड़ते रहें तो बहुत लाभ होगा। साधारण स्नान के समय आंतों को रगड़ना चाहिये। हो सके तो शरीर के मध्य भाग को खब लपेट भी दिया करें।

यदि आंतों में चिरस्थाई शोथ हो जावे और श्लेष्मा झड़े तो सम्पूर्ण शरीर को ही बल देने के लिये अत्यन्त शीत प्रयोगों के दुष्परिणामों से बचे रहने में सावधान रहना चाहिये। पहले २०, ३० मिनिट तक गर्म पानी से हलका स्वेदन करें। फिर ८० से ८५ अंश फा० जल से ५ मिनिट तक सीवन स्नान करें आंतों को हाथों से आहिस्ता २ मलते रहें। यदि ८०, ८५ अंश का जल अधिक ठण्डा मालूम होता हो तो ९० अंश का जल लें। प्रातः जागने के पश्चात् और मध्यान्ह के समय साधारण जल से स्नान करें साथ ही पेट पर गीला कपड़ा लपेटें। सायं काल के समय १५ मिनिट

तक केवल सीचन स्नान करें उसी समय पांव गरम कम्बल में लपेट रक्खें।

सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थ छोड़ दें, मान्स छोड़दें, कम से कम जब तक श्लेष्मा का निकलना बिलकुल बन्द न हो जावे। अधिक व्यायाम न करें, मानसिक उत्तेजना से अलग रहें। इस रोग में प्रायः स्रंसकों (opiates) का विशेष प्रयोग किया जाता है। निस्सन्देह वे पीड़ा को हलका कर देते और किसी हद्द तक स्राव को बल पूर्वक रोक देते हैं परन्तु चूंकि स्रंसक पदार्थ पोषण के प्रतिकूल होते हैं अतः शान्ति क्षणिक होती है, और दुष्परिणाम बहुत बड़ा होता है।

कीड़े भी आन्तों में रोग पैदा कर देते हैं और बहुत क्षोभ पैदा करते हैं, और ऐसी शिकायतें पैदा करते हैं जो शरीर के अन्य भागों में प्रकट होती हैं। साधारण देखने वालों को इस का सम्बन्ध आन्तों से नहीं मालूम पड़ता आन्तों में कृमियों के हो जाने से मृगी के दौरे आते हैं,

जी मचलता है, भोजन के लिये इच्छा उत्कट हो जाती है, चुटकी भरने की सी दर्द प्रायः हो जाती है।

इस के लिये साधारण स्फूर्ति को देने वाले इलाज करने चाहियें। मध्य भाग पर बन्धन का प्रयोग करना चाहिये, खाली पेट २, पाव ठण्डा जल दिन में चार बार पीना चाहिये। कीड़ों को जड़ से निकाल डालना बड़ा कठिन है। परन्तु आयुर्वेदिक प्रयोगों को मिलाकर चिकित्सा की जाय तो सफलता हो सकती है।

दस्तावर पदार्थों का लगातार प्रयोग चाहे कितनी ही थोड़ी मात्रा में हो, अन्त को वह रोग उत्पन्न कर देगा। बहुत से मनुष्यों का यह विचार कि आंतें हमेशा खुली रहनी चाहियें प्रायः आन्तों की श्लैष्मिक कला को नष्ट कर देता है। जब तक विरेचक पदार्थों का प्रयोग जारी रहता है आंतें कभी साधारण अवस्था में नहीं आतीं। आंतें कई दिन या एक सप्ताह तक भी सुस्त पड़ी रहें तो

कोई हानि नहीं है। उत्तेजक पदार्थ और तमाखू आंतों की वात नाडियों की शक्ति को नष्ट करते हैं, अनियमितता और रोग उत्पन्न करते ।

गलशोथ (Sore throat)

गले में खाज हो वा सूजन हो, कोई फोड़ा निकल आया हो, गले में धूल मट्टी वा धुआं लग गया हो, ठण्ड लग गई हो तो गलशोथ हो कही जाती है।

ऐसी अवस्था में ठण्डे पानी में कपड़ा भिगो कर कपड़े को चार तहें करके गले के चारों ओर लपेटो। ऊपर से गर्म कपड़ा लपेट दो कि गर्मी उत्पन्न होवे। यदि अच्छी प्रकार गर्मी उत्पन्न न हुई तो हानि होगी। यदि शोथ अधिक हो तो गीला कपड़ा प्रति पन्द्रह मिनिट के पश्चात् बदल दो।

यदि गलशोथ किसी अन्य रोग के उपद्रव रूप में हो तो भोजन के विषय में सावधान होना आवश्यक है। मान्स तथा अन्य उत्तेजक पदार्थ बिलकुल

त्याग दो। दिन भर में ४,५ गिलास ठण्डे पानी के पी जाओ। होठों से सिप करते हुए पिओ। जिस समय पीड़ा मालूम हो उस समय पानी के कई चम्मच उसी प्रकार पी जाओ। गल शोथ के लिये राई के प्लास्टर का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रयोग करते समय टांगें राई के पानी में १५ मिनिट तक डुबो रखनी चाहियें। जल १०५ अंश फा० का लेना चाहिये।

प्रतिश्याय या नासाशोथ

मस्तक पर ठण्डा भीगा कपड़ा रक्खो, फिर एक बर्तन में ठण्डा पानी भर कर उस में नाक डुबोवो। नाक से पानी ऊपर खैंचो। खैंचते समय जीभ को ऊपर की तरफ मोड़ कर जीभ की नोक को पीछे तालू के साथ लगा रक्खो। ऐसा करने से पानी आसानी से नाक से चढ़ कर मुख में भर जावेगा। पानी मुख में भर जावे तो कुल्ला कर दो। इस प्रकार ३,४ मिनिट तक नाक से पानी पियो। रोग की प्रबलता के अनुसार दिन में कई वार पीओ।

रात को सिर पर कपड़ा लपेट कर रक्खो। नाक से यदि खून बहता हो तो भी इस प्रकार पानी पीना चाहिये। साथ ही गर्दन के पिछले उभार पर ठण्डा कपड़ा रखना चाहिये।

Typhus fever

टाइफ़स ज्वर का कारण भी रक्त दुष्टि है। दुष्ट भोजन से तथा त्वचा, जिगर और गुर्दों इन शोधक अङ्गों के सुस्त पड़ जाने से किसी भी समय में यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

यह ज्वर इन लक्षणों से आरम्भ होता है—चक्कर आना, बलक्षय, तन्द्रा, जिह्वामालिन्य-दुर्गन्धित श्वास, लघु और तीव्र नाड़ी, गर्मी को अति वृद्धि, त्वचा ठण्डी।

रोग की चिकित्सा का उद्देश्य यह है कि पोषक घात नाड़ियों में जीवन शक्ति की वृद्धि की जावे। विशेषतया आमामाशय के गढ़े में वर्तमान वात नाड़ियों में जीवन शक्ति बढ़ाई जावे। क्योंकि सम्पूर्ण अन्तरङ्गों की जीवन शक्ति की कुञ्जी ये ही

हैं। यदि ये स्वस्थ अवस्था में उत्तेजित की जावें तो वे रक्त के लिये उत्तम पदार्थ को भेज कर रोग को दूर कर देंगी।

इस रोग की चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिये—एक चटाई पर दरी बिछाओ। दरी पर दो कम्बल बिछाओ। कम्बल पर साधारण जल में भीगी चद्दर बिछाओ। गर्म पानी में निचोड़ा कपड़ा पीठ और कन्धों के नीचे रक्खो। ऐसा ही दूसरा कपड़ा शरीर के ऊपर रक्खो। कम्बल पर बिछी गीली चद्दर में शरीर को लपेट दो, टांगों और पावों को भी लपेट दो। फिर ऊपर कम्बल लपेट दो। फिर गर्म पानी से भरा हुआ बर्तन ऊपर रक्खो। उस पर कम्बल की दूसरी तह लपेट दो। खूब बांध दो। इस सब क्रिया करने से पहिले बग़ल के गढ़ों में भीगा निचोड़ा पतला कपड़ा भर दो। आध घंटे तक इसी प्रकार लपेट रक्खो। फिर सब खोल दो और साधारण पानी में भीगा कपड़ा रक्खो। फिर सूखे तौलिये से शरीर पोंछ

डालो। ध्यान रक्खो ठण्ड न लगने पावे। जब तक दूसरी वार क्रिया करने का अवसर न आवे रोगी को गर्म कम्बल ओढ़ाये रक्खो। फिर दूसरी वार यह सब लपेटने की क्रिया करो। दो वार यह वेष्टन क्रिया कर चुकने के पश्चात् रोगी को स्वच्छ वस्त्र पहिना कर नर्म विस्तर पर आराम करने के लिये लिटादो। छः २ घण्टे के पश्चात् रातदिन इसी प्रकार दो २ वार वेष्टन क्रिया करो, जब तक ज्वर कम न हो जावे। ज्वर जैसे २ कम होता जावे वेष्टन संख्या घटाते जाओ।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह ज्वर बल को बहुत अधिक क्षीण कर देता है। रक्त और तन्तु गन्दे माद्दे के कारण विषयुक्त हो जाते हैं जो न निकाला जावे तो शीघ्र सड़ने लगता है और निश्चय से जीवन को नष्ट करता है। यदि वेष्टन क्रिया और गर्म पट्टियों से भी आंतें काम न करने लगें तो गर्म पानी में साबुन घोलकर बस्ति (एनिमा) दो। धड़ पर रात दिन गीला कपड़ा

रक्खो। दो २ घण्टे के बाद कपड़ा बदलते रहो, यदि थकावट बहुत अधिक न हो। गीला कपड़ा धड़ पर से उतारने के बाद खूब धो डालो क्यों कि यह शरीर में से बहुत से गन्दे पदार्थ खैंचकर गन्दा होजाता है। चादरें और कम्बल भी खूब साफ़ कर डालने चाहियें और फिर उन्हें खुली हवा में डाल रखना चाहिये।

धड़ पर वेष्टन क्रिया के साथ टांगो पर भी वेष्टन क्रिया जारी रखनी चाहिये। साधारण जल में कपड़े की पट्टियां भिगोकर टांगों पर लपेटी जाती हैं। उपर से गर्म कपड़ा कम्बल आदि लपेटे जाते हैं।

इन सब क्रियाओं से त्वचा जिगर और गुर्दे अच्छी प्रकार कार्य करने लग जाते हैं और रक्त को अच्छी प्रकार शुद्ध करते हैं। ज्योंहि ये अङ्ग क्रिया शील होते हैं त्योंहि प्रकृति स्वयं इलाज करने लगती है।

यदि शिर विशेष आक्रान्त हो जैसा कि प्रायः होता है तो गर्दन के पीछे और पृष्ठवंश के ऊपर के हिस्से पर राई की पुल्टिस बांधो। जब सूख जावे तब उतार डालो और ताज़ी बांधो कि रक्तिमा बनी रहे। गले पर लगातार गीली पट्टी लिपटी रहे बार २ इसे गीला करते रहो और अन्य वेष्टनों के साथ इसे बदलते रहो। बुखार उतरने तक बराबर करते रहो अन्त को कमज़ोरी बढ़ जावेगी। जब त्वचा बहुत गर्म हो जावे तो ठण्डे पानी से स्पंजिङ् करो। बहुत बार मत करो क्योंकि अत्यन्त निर्बलता होने और थकान होने का भय है। स्पञ्जिङ् के लिये ६५ अंश से ७० अंश फा० तक का जल लो। ज्वर की तीव्रता में ठण्डा पानी सिप कराओ। जब प्यास लगे तब पानी पिलाओ। याद रक्खो पानी रक्त को साफ़ करता है।

बुखार चढ़ता हो तो जितना कम भोजन दो उतना ही अच्छा है। भोजन द्रव होना चाहिये।

अरारोट, सागूदाना खाने के लिये दो। रोटी मान्स आदि ठोस पदार्थ बिलकुल मत दो। बुखार उतरते हुए जब कमज़ोरी अधिक अनुभव हो तो अरारोट या सागूदाना दो। ढाई पाव जल में एक बड़ा चम्मच ब्रान्डी भी मिला कर दो। जैसे २ बल आता जावे, उचित भोजन बढ़ाते जाओ। अन्य प्रकार की उत्तेजक शराब, मसाले तथा ऐसे ही मिठाई, मैदे आदि के भोजन बिलकुल मत दो, क्योंकि ये जिगर को और रक्त को ख़राब करते हैं।

स्कार्लेट फीवर

इस ज्वर में शुरू २ में गले में पीड़ा, जी मचलाना, आंखों में सूजन, ठण्ड लगना और फिर शरीर गर्म होना, चेहरे और बाहु पर लाल २ धब्बे पड़ जाना आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा के लिये रात दिन गीला कपड़ा लपेट रक्खो। दुपहर को बुख़ार बढ़ने लगे तो साधारण पानी में भीगा कपड़ा धड़ पर बार २

रक्खो । गले को गीले पतले कपड़े से लपेट कर ऊपर से गुलबन्द लपेट दो । रात दिन लपेटे रक्खो प्रति घण्टे के पश्चात् कपड़ा बदलते रहो । बदलते हुए दूसरा कपड़ा रखने से पहले गले पर ठण्डा पानी डालकर हाथ से रगड़ो । जब तक सारा शरीर लाल न होजावे यह सब क्रिया जारी रक्खो । फिर शरीर को ठण्ड से बचाओ स्नान कराते समय शरीर को हवा से बचाओ । अब ठण्डे पानी का प्रयोग हानि करेगा । परन्तु रोगी को चाहिये कि ठण्डा पानी सिप करता रहे । दिन में ४, ५ गिलास पी डाले, इसी प्रकार रात में भी पी डाले । तीन २ घंटे के पश्चात् धड़ पर का वेष्ठन गीला कर २ के बदलते रहना चाहिये ।

भोजन अत्यल्प दो । शराब, मान्स, चाय, कॉफ़ी, तथा अन्य गर्म मसाले आदि उत्तेजक पदार्थ मत दो ।

जिस समय रोग पूर्णरूप से फूटेगा उस समय शरीर खुरदरा और छिलकों वाला होजा-

वेगा। यदि इस अवस्था में ज्वर न हो तो कोई चिकित्सा न करो। क्योंकि यदि त्वचा का घर्षण किया जायगा तो नई त्वचा देर में बनेगी। यदि कुछ बुख़ार प्रतीत होता हो तो ८५ अंश फा० के जल से स्पञ्ज करो। इस बीमारी से छूटने में सात दिन लगेंगे।

स्कार्लैटिना

स्कार्लैट ज्वर का ही हलका रूप है। उसी प्रकार इस की भी चिकित्सा होती है। स्कार्लैट फ़ीवर में त्वचा और त्वचा के श्लैष्मिक भाग की तीक्ष्ण शोथ होती है। ख़सरे आदि विस्फोटक ज्वरों की तरह का ही यह ज्वर है। एक या दो दिन में दूर नहीं हो सकता है। सात दिन का अपना काल पूरा करता है। जलचिकित्सा से इन विस्फोटक ज्वरों में विशेष उपकार होता है। औषध चिकित्सा से आगामी जीवन के लिये रोग का कुछ अंश शरीर में बना ही रहता है और कई

अवस्थाओं में तो शरीर बिलकुल निकम्मा होजाता है।

चेचक

इसके इलाज में विस्फोटक ज्वर के इलाज की जिस प्रकार विधि लिखि है उसी प्रकार करनी चाहिये।

मिर्गी, अपस्मार

यह भयानक और घातक रोग है। जो लोग शराब पीते हैं, धनि भोजन करते हैं और आराम से पड़े २ दिन काटते हैं, व्यायाम नहीं करते हैं उनको यह रोग प्रायः होता है।

इस रोग में डाक्टर लोग विरेचन देते हैं और जोंक लगाते हैं। इनसे आयु क्षीण होती है। जब तक रोगी सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थ छोड़ कर सादा जीवन व्यतीत नहीं करता और व्यायाम नहीं करता तब तक शरीर नष्ट ही होता है।

इस रोग में निम्न लक्षण प्रायः पाये जाते हैं शरीर के एक हिस्से में आक्षेप और दूसरे हिस्से में अर्धङ्ग, दिमाग़ का भारीपन। दिमाग़ में रक्त या पानी भरजाने से दिमाग़ में भारीपन होजाता है। रक्त भर जाने से जो मिर्गी होती है उसे Sanguineous (पैत्तिक) कहते हैं। रक्त के पतला होने से जब दिमाग़ में पानी भर कर यह रोग प्रकट होता है तो इसे Serous (श्लैष्मिक) कहते हैं। पैत्तिक अपस्मार में नाड़ी कठोर और पूर्ण होती है, चेहरा सुर्ख होता है, सघोष श्वास होता है। श्लैष्मिक अपस्मार में नाड़ी मन्द और चेहरा फीका होता है। इनसे अतिरिक्त ऐसा भी अपस्मार मिलता है जिस में दिमाग़ का किसी प्रकार का भारीपन नहीं होता। अपस्मार के इस भेद को वातिक अपस्मार कहते हैं। वातिक अपस्मार में वेग का आक्रमण सहसा होता है, पहिले कोई सूचना नहीं होती। वातिक अपस्मार के वेग के पश्चात् सिर में कुछ दर्द मालूम हुआ

करती है। साथ ही कभी २ भार का बोध, निद्रा और चक्कर भी शामिल होते हैं। साधारणतया मिर्गी में श्वास अधिक गहरे होते हैं, चेहरा और आंखें लाल होती हैं, नाक से प्रायः रक्त गिरता है। वेग के समय रोगी भूमि पर गिर पड़ता है, मूर्छा आजाती है, श्वास काठिन्य हो जाता है यद्यपि पहिले मन्द और नियमित होता है तथापि पीछे अधिक तीव्र, अनियमित और निर्बल हो जाता है। कभी २ श्वास रुक २ कर आता है और उस में आक्षेप उठते हैं। स्वर यन्त्र और श्वास प्रणाली में कफ भर जाने से श्वास सघोष हो जाता है। मुख में गाढ़ा २ थूक इकट्ठा हो जाने से निकला करता है।

इस रोग के पहिले दिमाग़ की शक्ति विषम हो जाती है, सिर में खून भर जाता है, सिर से खून लौटना बन्द होजाता है।

जो मनुष्य रक्त से भरे हुए होते हैं, बहुत मोटे होते हैं, जिन की गर्दन छोटी और मोटी होती है

उनको यह रोग प्रायः होता है । शराब बहुत पीने से भी यह रोग हो जाता है ।

इस रोग की चिकित्सा में डाक्टर लोग रक्त का दबाव कम करने के लिये शरीर में से रक्त निकलवाते हैं, विरेचक औषधियां देते हैं । इन उपायों से न तो पोषण होता है और नाहीं जीवनीय शक्ति मिलती है, उलटा वे उपाय कम करते हैं और अन्त को बिलकुल समाप्त कर देते हैं । इस रोग में किन्हीं ख़ास कमज़ोर नाड़ियों में रक्त भर जाता है । ये नाड़ियां रक्त को आगे धकेल नहीं सकतीं अतएव जिस अङ्ग की नाड़ियों में रक्त भर जाता है वह अङ्ग भारी लगने लगता है । अतः चिकित्सा के लिये उचित है कि जो अङ्ग पूर्व की अपेक्षा भारी प्रतीत होने लगा है उस अङ्ग की वात नाड़ियों को शक्ति दी जावे । रक्त सञ्चार में लगने वाली वात शक्ति का केन्द्र आमाशय के गढ़े में है । इस केन्द्र को बलवान बनाने से रक्त सञ्चार ठीक होता है तथा किसी अङ्ग में रक्त इकट्ठा नहीं होता । अतः रोग की उचित चिकित्सा के लिये

वात शक्ति के केन्द्र को पूर्व निर्दिष्ट प्रकारों से बलवान बनाने का प्रयत्न विशेष करना चाहिये।

लकवा Paralysis

ऐच्छिक गति के बल की कमी या नाश के रूप में यह रोग होता है। इस रोग का कारण अपस्मार भी है, अर्थात् जिस रोगी को मिर्गि की बीमारी हो उस रोगी को यह रोग हो सकता है। दिमाग़ से वात नाड़ियों में बहते हुए शक्ति के प्रवाह में बाधा डालने वाले किसी पदार्थ से यह रोग हो सकता है। मादक और शामक द्रव्यों का लगातार प्रयोग भी इस रोग का कारण है। शारीरिक शक्ति को जो पदार्थ क्षीण करते हैं वे भी इस रोग के कारण हैं। एक सूत्र में कहा जाय तो पोषण सम्बन्धी वात नाडियों में विद्युत् शक्ति या जीवन शक्ति की केवल कमी से यह रोग होता है।

लकवा रोग वंशानुगत नहीं होता। पिता माता से पुत्र को कमज़ोर शरीर अवश्य मिल

सकता है जिस में इस रोग के होने के लिये प्रवृत्ति हो। यदि कमज़ोर शरीर वाला मनुष्य भी स्वास्थ्य के स्वाभाविक नियमों का पूरा पालन करे, अनुचित उत्तेजक खाना पीना छोड़दे, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक बिना विश्राम लिये पढ़ने की आदत न रक्खे, दुर्वासनाओं को त्याग दे, विनाशक परिणाम पैदा करने वाले तम्बाकू, सूंघनी, अफ़ीम आदि पदार्थों से बिलकुल परहेज़ रक्खे तो इस रोग के लिये माता पिता से प्राप्त प्रवृत्ति से सर्वथा मुक्त हो जावेगा।

इस लकवे की बीमारी में जो भाग निश्चेष्ट हुआ हो, उस में प्रायः अनुभवशक्ति तो विद्यमान रहती है परन्तु वह उस भाग को हिला नहीं सकता। ज्ञान तन्तु ठीक अवस्था में रहते हैं, परन्तु वे गति की नाड़ियों को कार्य करने के लिये उत्तेजना नहीं दे सकते। इस रोग के कभी २ ऐसे बीमार भी देखने में आते हैं जिनके अङ्गों में न अनुभव होता है और न गति। यहां पर गति

की नाड़ियां और ज्ञान की नाड़ियां जो साथ २ रहती हैं दोनों ही जीवन शक्ति से रहित होती हैं। मल और मूत्र को रखने और बाहिर फेंकने की शक्ति मन्द पड़ जाती है, इनका धारण या तो नहीं करतीं या अधूरा करती हैं।

अनेक बार ऐसा होता है कि मनुष्य चङ्गे भले रात को सोते हैं और प्रातः काल उन्हें यह लकवे का रोग हुआ होता है। इस रोग के होने के पहिले निम्न चिह्न हुआ करते हैं–हाथों पांवों में दर्द दौड़ने लगती हैं, अङ्ग झुक जाते हैं, मान्स-पेशियों में मरोड़ आरम्भ होते हैं, शरीर के कई भाग ठण्डे पड़ जाते हैं, भुजाओं में बल न रहने से भार नहीं उठाया जा सकता, पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से में ठण्ड और कंपकंपी आरम्भ हो जाती है, चक्कर आते हैं इत्यादि। शुरू २ में इन लक्षणों की कुछ परवाह नहीं की जाती है जब ये तीव्र हो जाते हैं तो कह दिया जाता है कि आमवात का रोग होगया है।

जब ये लक्षण शरीर में उपस्थित हों तब मनुष्य को स्वास्थ्य के साधारण नियमों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। लकवे का रोग आने से बहुत पूर्व जिह्वा लाल हो जाती है, सूज जाती है, फट जाती है, अथवा जिह्वा पार्श्वों पर तो लाल होती है और पृष्ठ पर सफेद होती है। यदि इन लक्षणों पर ध्यान न दिया जाय तो शरीर के लिये बड़ा दुष्परिणाम उपस्थित होता है।

इसके लिये चाहिये कि आमाशय और आंतों के कार्यों को कभी न बिगड़ने दें और वात नाड़ियों के कार्य में कभी हानि न आने दें। वात नाड़ियों को उत्तेजित करने वाले पदार्थों के सेवन से नाड़ियां अधिक बलहीन बनती हैं। इसलिये साधारण भोजन, नियमपूर्वक उचित स्नान जारी रखना चाहिये। पृष्ठवंश को खूब रगड़ना चाहिये, पीठ पर ठण्डा पानी डाला जाय, ठण्डे पानी में भीगा कपड़ा रक्खा जाय, सीवन स्नान

ठण्डे जल से कराया जाय, फिर गर्म पानी से पीठ को और आगे के भाग को सेका जाय। फिर गीला कपड़ा लपेटो। फिर पीठ को सूखा रगड़ो, धड़ को गीले कपड़े से लपेट दो, साधारण भोजन खाने को दो, शुद्ध हवा में रक्खो यही इस रोग की चिकित्सा है।

हृद्रोग

यदि मनुष्य के शरीर में जिगर ठीक काम करता रहे और हम शरीर के प्रत्येक हिस्से में रक्त सञ्चार की क्रिया को ठीक रक्खें तो हृद्रोग का कोई चिह्न नहीं मिलता। बहुत से मनुष्य नाड़ी की गति की विषमता हो जाने से और हृदय में कुछ धड़कन मालूम होने से घबरा जाते हैं। जितने मनुष्य अजीर्ण रोग से ग्रस्त होते हैं और जल्दी क्षुब्ध होने वाले होते हैं उनको इस प्रकार से हृदय के कार्य में व्यतिक्रम अनुभव हुआ ही करता है। परन्तु जहां यह रोग अपने वास्तविक रूप में

पाया जाता है, वहां इस के प्रभाव को शान्त करने के सिवाय कुछ नहीं किया जा सकता है। यह कार्य अन्य किसी उपाय की अपेक्षा जलचिकित्सा के हलके उपायों से सुगमता से किया जा सकता है। रोगी की आयु और बल तथा रोग के कारणों के अनुसार चिकित्सा में भेद पड़ जाता है।

रोगी को दुष्पाच्य और उत्तेजक भोजन छोड़ देने चाहियें, मान्स न खाना चाहिये। हरे शाक, शलगम, गोभी, कच्चे या तले हुए शाक न खावे। बहुत निशास्ते वाले भोजन चावल, सागूदाना, गेहूँ आदि न खावे। गोभी का केवल फूल का हिस्सा खाया जा सकता है।

हृद्रोग से आक्रान्त व्यक्ति केवल स्वाद की दृष्टि से यदि भोजन खाना न छोड़ेंगे और अपनी इच्छा पूर्तिकी दृष्टि से यदि भोजन खाना न छोड़ेंगे और केवल शरीर के पोषण के निमित्त भोजन लेने का कठोर व्रत न धारण करेंगे तो वे हमेशा अचानक

मृत्यु होने के भय में रहेंगे। बहुत सारे तो आत्म संयम और व्रत धारण किये बिना मृत्यु का ग्रास बनते ही हैं।

इस रोग में चिकित्सा का उद्देश्य यह है कि हृदय की शोथ दूर की जाय, कमज़ोर नाड़ियों पर जो दबाव है उसे दूर किया जाय, और पेशियों में नवजीवन का सञ्चार किया जाय। रक्त को ग्रहण करने और सारे शरीर में फेंकने के लिये हृदय को निरन्तर जीवन भर कार्य करना पड़ता है। हृदय के दक्षिण और वाम प्रकोष्ठ बीमार हो गये तो भी वे एक मिनिट के लिये भी कार्य छोड़ कर विश्राम नहीं ले सकते। हमारी टांग, घुटने, बाहु और कलाई की मान्स पेशियां कमज़ोर पड़ जावें, सख्त हो जावें और सुकड़ जावें तो उन्हें उसी प्रकार गति देने से हमें पीड़ा का अनुभव होता है और कार्य नहीं होता। इसी प्रकार यदि हृदय की मान्स पेशियां सख्त हो जावें सुकड़जावें और सूजजावें तो एक विशेष हद्द पर

जाकर अपना काम बन्द कर देती हैं। हृदय ठहर जाता है। और मनुष्य मर जाता है।

यद्यपि हृद्रोगियों की चिकित्सा उन के बल और आयु के भेद के अनुसार एक जैसी नहीं है, भिन्न २ है, तथापि कुछ सामान्य निर्देश किया जा सकता है।

प्रातःकाल जगने पर जब रोगी बिस्तर पर बैठा हो तब उस के धड़ के ऊपर के हिस्से को ८० अंश फा० के जल में भीगे हुए और निचोड़े हुए तौलिये से रगड़ो। फिर इसे सुखा कर ऊन का वस्त्र पहनादो। फिर धड़ के नीचे के हिस्से को उसी प्रकार रगड़ो। फिर इसे भी गर्म कपड़ा पहिनादो। धड़ से नीचे के भाग को गर्म रखना बहुत आव-श्यक है। दुपहर से कुछ पहिले पिण्डलियों तक टांगें ६० अंश के राई के जल में डुबो कर रक्खो। धीरे २ जल का ताप मान १००, १०५ अंशों तक बढ़ाओ, जहां तक रोगी सहार सके। इसी समय

सिर पर ठण्डे पानी का कपड़ा रख कर सिर को ठण्डा रक्खो। १०, १५ मिनिट तक यह प्रक्रिया करो। फिर टांगों और पांव को ८० अंश के जल में भीगे तौलिये से रगड़ो। फिर सुखाओ और सूखे हाथ से मल डालो। तीसरे पहर ६० अंश राई के जल में ३ मिनिट तक पांव रक्खो। फिर ६० अंश के जल में तौलिया भिगो कर निचोड़ कर उस से उदर को लपेटो और पांव को गरम रक्खो। इस प्रकार पौण घण्टे तक करते रहो। यदि बेचैनी हो तो केवल २० मिनिट तक ही रक्खो। फिर उदर पर स्पञ्ज करो। सोने के समय हृदय से ठीक नीचे राई की पुल्टिस बांधो। जब तक स्थान लाल न हो जावे तब तक बांधे रक्खो। फिर इसे उतार डालो और स्थान को सुखादो।

इन रोगों में ८० अंश के जल से सीवन स्नान करना बहुत अच्छा है। अथवा इतना ठण्डा हो कि ठिठरन न मालूम हो। २० मिनिट से ४० मिनिट तक लेना चाहिये। यह स्नान लेते हुए पांव किसी

बर्तन में गर्म पानी डाल कर उसमें डुबो कर रखने चाहियें। टांगों और जांघों पर साधारण जल में भीगी पट्टी लपेट दो। ऊपर से गर्म कपड़ा लपेट दो। २, ३ घण्टों के अन्तर से बदलते रहो। कभी २ हृदय पर स्पञ्ज रख कर उस पर गर्म पानी डालते हुए गीला रखते हैं। यदि यह प्रक्रिया क्षोभ न उत्पन्न करे तो बड़ी लाभदायक है। ऐसी कोई भी प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये जिस से एक दम धक्का लगे। बार २ ठण्डा पानी सिप करते रहना बहुत ही उपयोगी है।

मूर्छा में या तबियत के गिरने में (syncope or faintness) रोगी के कपड़े एक दम उतरवा देने चाहिये। हृदय पर राई की पुल्टिस लगानी चाहिये। साथ ही हाथ पांव १०० अंश के जल में डुबो कर रखने चाहियें। फिर सब सुखादो। फिर शरीर को कम्बल से ढककर शरीर के अन्य भागों को रगड़ो, सिर और चेहरे को ठण्डे पानी से स्पञ्ज करो। सिप करने के लियें पानी दो।

जब वेग शान्त हो जावे, मनुष्य को लिटादो और पांव की एड़ियों पर राई की पुल्टस बांधो, और आंतों के नीचे के भाग पर हल्के गर्म पानी से सेक करो। सिर को गीला रक्खो और शरीर के शेष भाग को खूब गर्म रक्खो।

कभी २ आमवात का आक्रमण हृदय पर हो जाता है, हृदय की मांस पेशियां कठोर हो जाती हैं, उन में चाक (चूना) निक्षिप्त हो जाता है। इस प्रकार हृदय की जीवन शक्ति कम हो जाती है। हृदय की कपाटियों के अस्थिकरण में कपाटियों में चूने की रचना हो जाती है।

हृदय पर आमवात का यह आक्रमण बड़ा भयानक है, क्योंकि हृदय की मान्स पेशियों को आराम बिलकुल नहीं मिलता। शरीर की अन्य पेशियों की तरह ये लचक और जीवन शक्ति को खो बैठती हैं। इस पर कठिनता यह है कि सेक दे कर या अन्य उत्तेजक या शामक जल के प्रयोगों से हृदय पर असर डालकर सीधे ही लचक और

जीवनीय शक्ति को हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस के लिये उपाय यह है कि उत्तेजक पदार्थों का ग्रहण छोड़ दिया जाय और तरल सुपच्य भोजन का सेवन किया जाय। यह रोग चाहे किसी प्रकार हुआ हो चिकित्सा का उद्देश्य शोथ को दूर करना है। शोथ किसी प्रकार भी हो उस से रक्त सञ्चार में बाधा पड़ती है और यह शोथ हृदय को अधिक बल से रक्त फेंकने का काम करने के लिये बाधित करती है। इस प्रकार शोथ और अधिक बढ़ जाती है।

जो लोग स्नेह बहुत खाते हैं उन के हृदय पर स्नेह का सञ्चय हो जाने से हृदय की गति में बाधा पड़ जाती है। अफ़ीम, मार्फ़िया आदि पदार्थ मस्तिष्क का कार्य बन्द कर के रक्त का सञ्चार अतिमन्द कर देते हैं। हृदय मन्द पड़ जाता है इस लिये जिन को ऐसी बुरी आदत हो उन्हें चाहिये कि हृदय की रक्षा के लिये यह आदत एक दम छोड़ दें।

योषापस्मार (Hysteria)

रोगी के कपड़े उतार दो। शरीर को हाथ से रगड़ना आरम्भ करो। सिर को गीला करो। ८० अंश के जल में रोगी को रख दो। जब तक अन्दर रहे खब रगड़ो। विशेषतया हृदय के स्थान को रगड़ो और साथ ही पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से को रगड़ो। यदि रोगी बहुत नाज़ुक न हो तो ठण्डा पानी पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से पर डालना बहुत अनुकूल पड़ेगा। जब रोग का वेग शान्त हो जावे तब रोगी को बिस्तर पर कम्बलों के बीच में रक्खो, और पांव के पञ्जों पर राई की पुल्टिस बांधो। फिर अच्छी प्रकार लपेट दो। कुछ गर्म बोझ आंतों पर भी रक्ख दो। रखने के लिये गर्म जल से भरा हुआ रबड़ वा मोमजामे का थैला अच्छा रहेगा। यदि खुले पानी में नहाने का मौका न हो सके तो सावन स्नान करा दो। स्नान के लिये जल ८० अंश हो और पांव १०५ अंश के

राई के जल में डूबे रहें। शरीर का मलना, ठण्डे पानी का प्रयोग पूर्ववत् जारी रहे।

विसर्प (Erysipelas)

यह स्पर्श से फैलने वाला रोग है। त्वचा में streptococcus erysipelatis नाम के जीवाणु के बैठ जाने से यह रोग होजाता है। ठण्ड, ज्वर त्वचा और श्लैष्मिक कला की स्थानिक अत्यधिक रक्तिमा इस के लक्षण हैं। पहिले या दूसरे दिन त्वचा पर लाल २ चौड़े २ उभार पैदा हो जाते हैं; त्वचा के नीचे छोटी २ रक्त वाहिनियों के फट जाने से रक्त इकट्ठा हो जाता है और ये उभार गाढ़ेलाल रङ्ग के होते हैं। आक्रान्त हिस्से फूल जाते हैं। इन में दर्द भी होता है। खुजली और दाह भी इन में पाई जाती है। वात प्रधान रोग हो तो दर्द अधिक होती है; पित्त प्रधान हो तो दाह; और श्लेष्म प्रधान हो तो खुजली विशेष होती है; चौथे दिन उभार लुप्त हो जाते हैं। दिन के बाद रोगी स्वस्थ होना आरम्भ कर देता है। यदि मूत्र

शोथ हो जावे, मूत्र में albumin आवे, त्वचा में पूय युक्त लाल फुन्सियां निकलें, स्वरयन्त्र के संयोजक तन्तुओं में पानी भर जावे अर्थात् स्वरयन्त्र में शोथ हो जावे तो यह रोग लगातार विषम होता जाता है। यदि रोग स्वयं उत्पन्न हुआ हो तो स्वास्थ्य प्राप्त करते २ स्वयं दूर हो जाता है। यदि यह रोग चोट के कारण हुवा हो वा संयोजकतन्तु में शोथ के कारण हुआ हो, जिस शोथ से फोड़ा बनसकता होतो यह भयानक होता है शरीर के किसी भाग में रक्त सञ्चार बन्द हो जाने और उस पर पूय जनक क्रिमियों के आक्रमण से मृत हुए अङ्ग में उत्पन्न यह रोग बहुत भयानक होता है।

यदि रोग हलका हो तो चिकित्सा के लिये ७० अंश के जल में स्पञ्ज भिगोकर त्वचा को धोना चाहिये। फिर ठण्डे पानी में स्पञ्ज भिगो कर निचोड़ कर आक्रान्तस्थानों पर बांध दें। स्पञ्ज न मिले तो नर्म कपड़े का प्रयोग करना चाहिये। इस के ऊपर ऊनी गर्म कपड़े की पट्टी लपेट दें।

यदि आक्रमण भयानक हो तो गर्म पानी से १५ मिनिट तक सेक करो। फिर ऊपर निर्देश की हुई प्रक्रिया करो। जब तक बुखार दूर न हो जाय यह सब प्रक्रिया दोहराते रहनी चाहिये।

सारे शरीर की चिकित्सा के लिये प्रातः जागने पर शरीर को गर्म पानी में भीगी चादर से लपेट दो। ८६ अंश जल से दिन में दो बार सीवन स्नान कराओ। रात को १५ मिनिट आंतों की जगह को गर्म पानी से सेकदो। फिर पूर्ववत् धड़ पर पट्टी लपेटो। सीवन स्नान करते हुए पांवों को १०५ अंश के राई के जल में रखो।

इस रोग की चिकित्सा में अनशन से बहुत सहायता मिलती है। केवल ठण्डा जल पीना चाहिये। स्वस्थ होने तक कभी २ रोटी का टुकड़ा भी ले लेना चाहिये।

श्वास प्रणाली शोथ

यह बीमारी प्रायः बच्चों में होती है। बच्चे के पांव गर्म पानी में रक्खो। कपड़े उतार कर छाती

पर सेक करो। फिर गर्म पानी से स्नान कराओ परन्तु सिर को सम्भालो और ठण्डे पानी से गीला रक्खो। अथवा सिर पर ठण्डे पानी का कपड़ा लपेट दो। गर्म पानी में बच्चे को रख कर खब मलो, विशेषतः छाती मलो। जब श्वास अच्छी तरह आने जाने लगे तो पानी से बाहिर निकाल कर ८० अंश के जल से स्पञ्ज करो। फिर गर्म कपड़े में लपेट दो और छाती पर सेक करो। पांव के पञ्जों पर राई की पुल्टिस बांधो। रोग का आक्रमण शीघ्र न शान्त हो तो सम्पूर्ण प्रक्रिया फिर दोहराओ। एक दो मास तक नियम पूर्वक बच्चे की छाती पर गर्म पानी से भीजी हुई स्पञ्ज की पट्टी बांधो।

स्वरभङ्ग

प्रातः जागने पर छाती और गले को ७० अंश के जल से इतना रगड़ो कि लाल हो जावें। गले पर गीला कपड़ा लपेटो। छाती पर सूखा स्पञ्ज बांध दो। आंतों पर गर्म कपड़ा लपेटो। तीन मिनिट

तक १०० अंश के राई के जल में पांव रक्खो, फिर ८० अंश के जल में तौलिया भिगो कर उस से पूंछ डालो। फिर सुखा कर हाथ से मलो।

दोपहर से पहिले पांव और पिंडलियों तक टांगें १०० अंश के राई के जल में १० मिनिट तक रक्खो। गले और छाती को प्रातः काल की तरह रगड़ो। एक बाल्टी ठण्डा पानी टांगों पर डालो। फिर सुखा कर टांगें हाथ से मलो।

तीसरे पहर १० मिनिट तक ८० अंश के जल से सीवन स्नान करो धीरे २ जल का तापम न कम करते जाओ कि कुछ दिनों के बाद वह ठण्डा मालूम होने लगे। छाती और गले को पूर्ववत् मलो।

सोते समय छाती और गले को रगड़ो। गर्म पानी में दो मिनिट तक पांव रक्खो। फिर जुराब पहिनो। जुराब के पञ्जे का हिस्सा गीला रखो। रात भर पहिने रखो। यदि इस उपचार से कुछ लाभ हो तो प्रातः और रात को रगड़ने से पूर्व १५ मिनिट तक छाती पर सेक करो। फिर

छाती पर राई की पुल्टिस बांधो जब तक छाती लाल न होजावे।

खसरा (measles)

जब बालक को यह रोग होने वाला हो या त्वचा पर अन्य किसी प्रकार के उभार निकलते हों तो बच्चे को तुरन्त गीली चद्दर में लपेट दो। दिन में दो बार प्रातः सायम् लपेटा करो, जब तक सम्पूर्ण शरीर पर रोग प्रकट न हो जावे। फिर शरीर का लपेटना बन्द करदो और प्रातः तथा रात को दो बार ८० अंश के जल से शरीर को धो डाला करो। बच्चे को गर्म रक्खो, परन्तु तेज़ गर्मी से बचाओ। बच्चे को शान्त रक्खो, अधिक भोजन मत दो। जितना ठण्डा पानी पीने में अच्छा लगे उतना ठण्डा पानी पिलाओ। बच्चे को तौलिये से लपेट रक्खो। युवकों के लिये भी यही चिकित्सा है परन्तु जब शरीर लपेटना हो तो चद्दर से लपेटो।

कुत्ता खांसी

प्रातः १५ मिनिट तक छाती को गर्म पानी से सेक करो। पांव और टांगों को गोड़े से ऊपर तक फ़लालैन आदि गर्म कपड़े में लपेटो। गले से लेकर फ़लालैन के किनारे तक लम्बा एक तौलिया लेकर गर्म पानी में उसे निचोड़ो और इसे शरीर पर लपेटो। स्पांजिङ् कर चुकने पर छाती पर स्पञ्ज बांध दो। स्पञ्ज पर जो पट्टी लपेटो उसे गर्म पानी में निचोड़ कर लपेटो। रात दिन नियम पूर्वक इन्हें धारण करो। तीसरे पहर ८० अंश की राई के पानी में १५ मिनिट तक पांव रखो फिर पूंछ कर ऊनी जुराब पहिनो। सोते समय उष्ण जल और साधारण जल से स्नान करो जैसे ज्वर में करते हैं। छाती और धड़ का वेष्टन गर्म पानी में करके बदलदो। पांव के पञ्जों पर राई की पुल्टिस रक्खो, हो सके तो रात भर बांधे रक्खो।

दमा

दमा कई प्रकार का होता है। प्रायः असाध्य होता है। इस की चिकित्सा इस प्रकार की जाती है। छाती पर गर्म पानी से सेक करो। जब श्वास काठिन्य हो तब छाती पर गीला स्पञ्ज या गीला कपड़ा लपेट दो। कभी २ धड़ पर गीला कपड़ा लपेट दो इस से आमाशय और आंतें ठीक कार्य करेंगे। ८० अंश के जल से सीवनस्नान करो। यदि रोगी ठण्डे कमरे में सोया हो तो Maw के Respirator से सहायता लेनी चाहिये। उत्तेजक पदार्थ, तम्बाखू, मान्स ये दमे को अधिक बढ़ाते हैं अतः बिलकुल छोड़ देने चाहियें। यदि आक्षेप हो रहे हों तो १० मिनिट तक गर्म जल में स्नान कराओ और पश्चात् साधारण जल में स्नान कराओ। गले का लपेटना बड़ा लाभदायक है।

अधिक उत्तेजना, निद्रा कम लेना, अनियमित जीवन रोग की चिरस्थाई अवस्था को बढ़ा देते

हैं। शिशिर ऋतु में और ठण्ड के समय गर्म कपड़ा पहिनना आवश्यक है।

श्वयथु—वरम (Dropsy)

शरीर के किसी भाग में पानी भर जाने को श्वयथु कहते हैं। यदि हृदय रोग के कारण श्वयथु न हुआ हो तो इसकी चिकित्सा कठिन नहीं है। आमाशय और आँतों को गर्म पानी से सेक करो। फिर साधारण जल में कपड़ा भिगा कर आमाशय और आँतों पर रखो, गर्म और ठण्डी चद्दरें भी ऊपर रक्खो। ५ मिनिट तक हलकी वाष्प दो। ७० अंश के जल में फिर स्नान कराओ। दो आदमी सारे शरीर को मल कर खुश्क कर दें। कभी २ पानी में थोड़ी सी राई भी डाल देनी चाहिये। फिर शरीर को कपड़े से लपेट दो। कभी २ टांगों को वाष्प स्नान कराओ १५ मिनिट तक ८० अंश के जल से सीवन स्नान कराओ। रोगी के बल के अनुसार एकबार सीवन स्नान ठण्डे पानी से भी

कराओ। प्रति दिन ३, ४ गिलास पानी पिला कराओ। रात दिन शरीर पर गीला कपड़ा लपेटो।

कभी २ कमज़ोरी के कारण टांगें फूल जाती हैं। हम आमाशय को स्वस्थ करते हैं और यकृत् के कार्य को ठीक करते हैं। टांगों को रात दिन पूर्ववत् लपेटे रखते हैं। दिन में एक दो बार टांगों को वाष्प स्नान कराओ। फिर साधारण जल से टांगों को स्नान कराओ। तौलिये से पूंछ दो। फिर ५, १० मिनिट तक हाथ से शरीर को रगड़ो फिर वेष्टन क्रिया आरम्भ करो। प्रति दूसरे दिन घुटनों तक टांगों को १०५ अंश के राई के जल में डुबोयाकरो। फिर ठण्डे पानी में निचोड़े तौलिये से पूंछ डालो। फिर सूखे तौलिये और हाथ से ऊपर से नीचे को मल डालो। उत्तेजक पदार्थ भोजन के लिये मत खिलाओ।

बवासीर

गुदा में शिराओं की ग्रन्थियां पड़ जाने को बवसीर कहते हैं। बहुत छोटों को यह बीमारी

बहुत कम देखने में आती है। युवकों में अकसर यह बीमारी पाई जाती है। स्त्री पुरुष दोनों में यह बीमारी देखी जाती है। इसका इलाज न किया जाय तो बढ़ती ही जाती है।

जिगर के बढ़ जाने और कठोर हो जाने से बवासीर का रोग हो जाता है। इस लिये उदरस्थ अर्बुद और स्त्रियों में गर्भ धारण भी इस रोग के कारण हो जाते हैं।

परिमित भोजन, स्वच्छ वायु, अङ्गों की व्यायाम जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं उनकी तुलना में कोई भी औषध इस रोग का मुकाबला नहीं कर सकती। जिन मनुष्यों का जीवन क्रिया शील नहीं है प्रत्युत सुस्त है उन को विरेचक द्रव्य सामयिक आराम अवश्य पहुंचाते हैं। विरेचक द्रव्यों से आंते तो खाली हो ही जाती हैं परन्तु साथ ही रक्त में से बहुत सा पानी खिंच जाने के कारण रक्तवाहिनियां हल्की पड़ जाती हैं। विरेचक द्रव्य लेने की आदत नहीं बना लेनी

चाहिये, बहुत आवश्यकता होने पर कभी कभी विरेचक द्रव्य लिया भी जा सकता है। विरेचक द्रव्यों में एरण्ड तैल सब से उत्तम है। बड़ी मात्रा में यह भी नहीं देना चाहिये, क्योंकि गुदा को क्षुब्ध करता है।

गुदप्ररोहों की रचना जानने के लिये गुदा में शिराओं की स्थिति किस प्रकार है यह भी जानना चाहिये। यहां इतना कथन करना पर्याप्त है कि गुदा में रक्तवाहिनियां बहुत अधिक हैं। वहां रक्त बहुत आता है। गुदा के बाह्य पृष्ठ पर शिरायें बहुत दीखती हैं। मांस की तह में बीच २ में उनकी शाखायें फैली होती हैं। इन शाखाओं से इस तरह और श्लैष्मिक कला के बीच में प्रशाखायें फैली हुई होती हैं। आंत के नीचे के ५ इञ्च के हिस्से में रक्त वाहिनियों का विन्यास ऊपर की अपेक्षा बहुत भिन्न है। नीचे के हिस्से में रक्त वाहिनियां लम्बाई के रुख़ में हैं, और ऊपर के हिस्से में चौड़ाई के रुख़ में हैं।

नीचे के हिस्से में रक्तवाहिनियां लम्बाई के रुख में समानान्तर हैं और संयोजकतन्तु के बीच में एक दूसरे के समीप होकर मिल भी जाती हैं। गुदद्वार के समीप अधिक मिली हुई हैं। इस स्थान में सब धमनियां दिगन्तसम शाखाओं से सम्बद्ध रहती हैं। शिरायें एक दूसरे के साथ शाखाओं के द्वारा मिलकर झोल बनाती हैं।

शिराओं में वह परिवर्तन जिस से अर्बुद बनता है वह इन झोलों में ही होता है। शुरु शुरु में गोल बटुए के रूप वाले झोल के अन्त से बाहिर की ओर प्रसार एक दम होता है और दूसरे स्थान में यह धीरे २ होता है। इन परिवर्तनों के साथ साथ झोल वाले भाग की लम्बाई में कुछ वृद्धि हो जाती है। इस कारण शिरा अपनी जगह से कुछ नीचे खिसक आती हैं। इन परिवर्तनों के होते हुए भी शिरा में रक्त सञ्चार अब भी होता ही है। आगे जाकर शिरा में सञ्चार अधिक हो जाता है। और उन

में जमा हुआ खून या सौत्रिक पदार्थ भर जाता है। इस प्रकार शिरार्बुद की रचना हो जाती है। यह अर्बुद दबाव डाल कर गुद मार्ग को रोक देता है या उस में बाधा डालता है।

बवासीर रोग की जलचिकित्सा इस प्रकार की जाती है। रोगी के साधारण स्वास्थ्य को उन्नत करो विशेषतया आंतों के स्वाभाविक कार्य को प्राप्त करने के लिये उन्नत करो। इस के लिए साधारण इलाज किया जाता है। पानी से भरी चद्दर, गीले वेष्टन, आन्तों को गर्म पानी से सेक, सीवन स्नान का प्रयोग रोगी के बल और अन्दर तथा बाहिर की स्थिति के अनुसार किया जाता है। सीवन स्नान स्वतन्त्रता से करना चाहिये, परन्तु कुछ एक रोगियों को छोड़ कर बहुत देर तक ठण्डे पानी से नहीं। ७० अंश के जल से १५ मिनिट तक ठीक है। फिर एक मिनिट ठण्डे पानी से। इस प्रकार दिन में तीन

बार स्नान करना चाहिये । यदि कठोर मलबन्ध हो तो धड़ पर गर्मपानी में भीगा कपड़ा सेक करने के लिए बार बार लपेटो । यदि यह न हो सके तो आन्तों पर गर्मपानी से साधारण सेक कर दो ।

फिर गर्म और ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर क्रमशः रक्खो । दिन रात गीला कपड़ा शरीर पर लपेटो । रातको इस पर ऊपर से फ़लालैन आदि गर्म कपड़ा लपेटो । इस प्रकार शरीर के अन्दर के अङ्गों को बल मिलेगा । सोने से पहिले ७० अंश के जल से सीवन स्नान करो । ८, १० मिनिट तक पर्याप्त है । यदि ठण्ड लगती हो तो ऊपर से कम्बल ओढ़ कर यह स्नान करो । प्रातःकाल भी इसी प्रकार ठण्डे पानी से स्नान करो पश्चात् भीगी चद्दर ओढ़ो ।

सब उत्तेजक पदार्थ, चटनी, मसाले, चासनी आदि के बने पदार्थ बिलकुल छोड़ दो । मांस त्याग दो । काफ़ी और तमाखू भी बिलकुल

ग्रहण मत करो। दिन में कम से कम ५, ६, गिलास पानी सिप करो।

यदि बवासीर के मस्से बहुत बढ़गये हों, और काले थैलों के रूप में लटकते हों तो किसी अच्छे शल्य चिकित्सक से उन्हें कटवा डालना चाहिये। एक बार बवासीर दूर होजाने पर भी ठण्डे पानी से तब तक सीवन स्नान करते रहना चाहिये जब तक आन्तों में बल न आजावे। ऐसा न करने से बवासीर फिर होजाती है।

त्वक्‌रोग

त्वक् रोगों को दूर करने के लिये भी वही प्रसिद्ध इलाज है। आमाशय, यकृत् और आन्त्र की क्षुब्ध शोथयुक्त श्लैष्मिककला में उत्पन्न विकृति पर आक्रमण करो। साधारण पुष्टि कारक भोजन से ही आमाशय को कष्ट दो अन्य किसी प्रकार के उत्तेजक पदार्थ की आमाशय पर कृपा मत करो। पोषक नाड़ियों की जीवन शक्ति को बढ़ाओ। उष्ण जल से सेक करके और वेष्टनों के द्वारा बड़ी नर्मी

से उनकी शक्ति को बढ़ाओ, घबराओ नहीं। जिगर और आंतों को भी उसी प्रकार आराम पहुँचाओ। निश्चय जानो कि अङ्ग में रक्तवाहिनियां तङ्ग और भरी हुई हैं। त्वचा के ७०,८० लाख छैदों को खोलदो कि रद्दी गन्दा स्राव बाहिर निकलजावे।

यदि किसी रोगी के सिर, चेहरा, ठोडी, गला आदि की त्वचा रोगी होजावे, छिलके उतरने लगं तो डाक्टर लोग ठोडी आदि पर मरहम पट्टी मात्र करके चिकित्सा करते हैं, रोग का कारण जहां है उसको जांचकर आमाशय, जिगर, आंत की ओर ध्यान नहीं देते हैं। त्वचा और आमाशय जिगर और आंतें ठोडी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, जब तक चिकित्सा का हिस्सेदार इन्हें न बनाया जाय तब तक ये ठोडी आदि को आराम नहीं होने देते। इस प्रकार त्वचा आमाशय, जिगर, आंतों की चिकित्सा करने से सारा शरीर शुद्ध हो जाता है और अन्य अङ्गों में भी वर्तमान रोग दूर हो जाता है।

श्वेत प्रदर

प्रति दो दो घंटों के पश्चात् केवल पांच २ मिनिट तक सीवन स्नान करने से यह रोग दूर होजाता है। इससे स्त्रियों को अतिमात्रा में होने वाला मासिक स्राव रुककर साधारण अवस्था में होने लगता है।

गर्भ धारण

गर्भ धारण में जो शिकायतें पैदा होती हैं उन को हटाने के लिए प्रातः काल जागने पर ८६ अंश से कम तापमान वाले जल से स्नान करना चाहिये। रोगी के बल का विचार करके जल ग्रहण करना चाहिये। दिन में २, ३ बार ३ से १० मिनिट तक सीवन स्नान करना चाहिये। सोने से पहिले सारे शरीर को स्पञ्ज से रगड़ देना चाहिये। आराम से जितना हो सके उतना शरीर को वेष्ठित करना चाहिये। कभी भी पिछला बरता हुआ खराब पानी न बरतना चाहिये।

यदि शरीर के नाज़ुक होने के कारण उपर्युक्त सम्पूर्ण चिकित्सा न ली जा सके तो टुकड़ा २ कर के करनी चाहिये। गीले ठण्डे हाथों से रगड़ना चाहिये, इस से बड़ा लाभ होता है शरीर में ताज़गी मालूम होती है। जांघों पर ठण्डा कपड़ा एक समय लगातार ५ मिनिट लपेटें। इसके ऊपर गर्म कपड़ा फ़लालैन आदि का लपेटें। गर्भाशय में गर्मी अधिक होती है तो इस से बड़ा लाभ होता है। पीने के लिए सर्वदा शुद्ध जल ही पीवें। रोटी, शाक, खीर, दूध मुख्य भोजन रखना चाहिये।

हाथ पांव ठण्डे पड़ जाना

यदि हाथ पांव ठण्डे पड़ गये हों तो जितना अधिक ठण्डा पानी मिल सके उतना ठण्डा पानी लो। ठण्डा पानी लगा २ कर हाथ से अपने हाथ की हथेली और पांव के पञ्जे को पृथक् २ तीन मिनिट तक रगड़वाओ। फिर सूखे हाथ से रगड़वाओ जब तक गर्म न होजावें।

दौर्बल्यजन्य बाधिर्य

१५ मिनिट तक सिर की पीठ को ठण्डे या साधारण पानी में रक्खो। फिर सिर के प्रत्येक पार्श्व को १५ मिनिट तक जल में रक्खो। दिन में दो बार करो। दिन में तीन वार ठण्डे गीले कपड़े से सारे शरीर को रगड़ो। दिन और रात के प्रारम्भ में करना भी पर्याप्त होगा। सोने जाने के समय कानों पर गीली पट्टी बांध दो, इस पर फ़लालैन आदि का गर्म कपड़ा लपेट दो। दिन में ४, ५ गिलास ठण्डे पानी के पीडालो।

दन्त पीड़ा

यदि दांत की दर्द केवल आमवात के कारण हो, दांत झड़ने न हों तो मुख में साधारण जल तब तक भरो जब तक वह गर्म न होने लगे। फिर इसे बदल दो। इसी के साथ चेहरा, गालें, गर्दन और कानों के पिछले भाग ठण्डे पानी में हाथ भिगो २ कर उन हाथों से मलो। मसूढ़ों

को भी मलो जब तक ख़ून न निकलने लगे। हाथों पावों को ठण्डे पानी से स्नान कराना बहुत लाभ दायक है। चेहरे को गीले और सूखे कपड़े से लपेटो ऊपर से फ़लालैन आदि गर्म कपड़ा लपेटो। यदि दांतों में कीड़ा लगा हो, दांत झड़ते हों तो अन्य उपायों में समय गुज़ारने के स्थान में जो दांत ख़राब हो उस को निकलवा देना ही अच्छा है।

दृष्टि मान्द्य

नेत्रों के दुरुपयोग से या पठन पाठन में नेत्रों से अत्यधिक काम लेने से शरीर की जीवन शक्ति का प्रवाह दिमाग़ की ओर अधिक हो जाता है। इसके कारण आमाशय, आंतें और जिगर में जीवन शक्ति कम हो जाती है और इसी लिये इनका कार्य मन्द पड़ जाता है। इनकी श्लैष्मिक कला में शोथ हो जाती है और उस से अम्लता या अम्लपित्त हो जाता है। इसी अम्लता के प्रभाव से आंखों की शक्ति मन्द पड़

जाती है और प्रायः आंखें दुःखने भी आती रहती हैं। इस प्रकार दृष्टि मान्द्य के कारणको लक्ष्य में रख कर मन्दता दूर करने के लिये स्थानिक उपचार की ओर साधारण लक्ष्य करते हुए आमाशय आंत और जिगर की श्लैष्मिक कला की शोथ को दूर करने के लिये इन में जीवन शक्ति बढ़ाने के लिये विशेष ध्यान देना चाहिये। इस के लिये अन्य औषधोपचार को छोड़ कर जल चिकित्सा के साधारण उपायों को काम में लाने से अत्यधिक उपकार होता है।

व्रण, चीर, और आघात

यदि ये शरीर के किसी ऐसे हिस्से में हों जो गर्म पानी में डूब सकता हो तो उस भाग को २० मिनिट तक गर्म पानी में डुबो रक्खो। पानी इतना गर्म हो जितना सहारा जा सके। यदि चक्कू आदि से चीर लग गया हो तो चीर के दोनों किनारों को साथ मिला कर उस पर गर्म पानी से गीली पट्टी बांध दो। उस पर किसी गर्म कपड़े

की पट्टी बांध दो जिससे गर्मी बनी रहे। यदि दर्द अधिक होती हो तो उस भाग को पट्टी बिना खोले ही गर्म पानी में डाल दो। जब तक स्राव न निकले तब तक पट्टी खोलने की आवश्यकता नहीं है। दुर्गन्ध युक्त स्राव निकले तो फिर नई पट्टी बांधो। दो बार से अधिक पट्टी बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि दिन में दो तीन बार गर्म पानी में वह भाग डुबोदिया जाया करे तो पट्टी व्रण के साथ चिपक नहीं सकती। यदि घाव भयानक हो और सूजन सम्पूर्ण हाथ आदि अङ्ग पर आगई हो तो सम्पूर्ण अङ्ग पर पट्टी लपेट दो, और दिन में तीन बार पट्टी गीली करो इस से शोथ नहीं होगी।

यदि घाव शरीर के ऐसे स्थान पर हो जो स्थान पानी में डुबाया न जा सके तो उस स्थान पर गर्म पानी में भीगी पट्टी लपेटो।

यदि चीर भयानक हो और सूजन आरम्भ हो गई हो, तो आवश्यक है कि रोगी मांस भोजन,

सब प्रकार की शराब, चाय, काफी, तथा अन्य उत्तेजक पदार्थ छोड़ दे। यदि उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करना है तो ये पदार्थ कभी भी न खावे। शरीर को बल देने के लिये और छेदों को खोलने के लिये शरीर पर पानी से भीगी चद्दरें लपेटनी चाहिये।

जलना, झुलसना, Burn

एक मज़दूर कारखाने में काम करता था। वह मूर्खता से आग पर टीन के बर्तन में तारपीन में मोम पिघलाने लगा। गर्म होते ही इसे आग लगगई बर्तन हटाते हुए वह अग्निमय द्रव उसके हाथ पर जा पड़ा। हाथ का चमड़ा झुलस गया। इसी समय सर्जन डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर को पहिले ही सब हाल सुना दिया गया था, अतः वह अपने साथ शामक द्रव्य लेता आया था वह औषध एक दम दीगई कि रोगी को इससे आराम आवेगा और वह सोजावेगा। हाथ पर उसने एक मरहम पंख के द्वारा लगादी। फिर कपड़ा रखकर पुल्टिस बांधदी। रात को कई बार शामक द्रव्य

दिया गया। प्रातः काल रोगी को क्रमशः सर्दी और गर्मी का दौरा आने लगा। डाक्टर को रोगी की बड़ी फ़िक्र रहती थी, दिन में कई बार मरहम पट्टी करने आता था। दूसरे दिन उसे मृत्यु का भय लगा और हाथ कटवाने की सलाह दी। बृहस्पति वार को घटना हुई थी, रविवार की सायंकाल तक रोगी डाक्टर के हाथ में रहा। जलचिकित्सक स्मैड्ले ने सोमवार के दिन प्रातः काल रोगी का समाचार सुना, और तुरन्त बन्द गाड़ी भेज कर रोगी को अपने चिकित्सालय में बुला लिया।

चिकित्सालय में रोगी के पहुंचते ही उसकी पट्टी खोल डाली, पुल्टिस उतार फेंकी और स्पञ्ज से गर्म पानी डाल २ कर स्पञ्ज बिना छुए ही उसकी मरहम बिलकुल धो डाली। इस धोने में चाय पकाने का बर्तन पानी से भरा हुआ पूरा लग गया था। हाथ में कुछ कष्ट अनुभव नहीं होता था चमड़ा झुलसा हुआ काला काला, सख्त और फटा हुआ था। अंगुलियां सब आपस में जुड़ी हुई थीं। जैसे

२ गर्म पानी डाला गया अंगुलियां खुलने लगीं और रोगी को उन्हें देख २ कर आनन्द आने लगा। फिर हाथ और भुजा को २० मिनिट तक वाष्प स्नान कराया। वाष्प स्नान से कुछ तारपीन का तेल निकला जो डाक्टर की मरहम के अन्दर था और बहुत अधिक क्षोभ कर रहा था। वाष्प दे चुकने के बाद हाथ और दोनों भुजाओं को गीला नर्म पट्टी से लपेट दिया और ऊपर से सूखी फ़लालैन लपेटदी। अब हाथ में चिरमिराहट बिलकुल नहीं थी, शान्ति मालूम होती थी। रोगी ने तीन घण्टे तक विश्राम किया। अब रोगी के शरीर की जीवन शक्ति को बढ़ाने के लिये यत्न किया गया। वात संस्थान को तीव्र आघात पहुंचा था। पाचन संस्थान के अङ्ग कमज़ोर पड़ गये थे, रोगी बहुत क्षीण और दुर्बल हो गया था। पट्टी कर चुकने पर रोगी के कपड़े उतार दिये गये परन्तु उस बाहु पर का कपड़ा नहीं उतारा बाहु को भाफ़ के सन्दूक में रक्खा गया और धीमी २ भाफ़ दी गई। इससे

सारे शरीर में स्वस्थता आने लगी और मरी हुई नसों को बहुत लाभ पहुँचा। भाफ़ दे चुकने पर साधारण पानी में भीगी गीली चद्दर लपेटी गई फिर एक चद्दर के द्वारा अच्छी प्रकार सुला दिया, हवा नहीं लगने दी। फिर शरीर पर गीला कपड़ा लपेट दिया और कपड़े पहिना दिये। उसी रात से रोगी गहरी नींद में सोने लगा, किसी प्रकार की औषध सोने के लिये नहीं दी गई।

अगले दिन हाथ को तीन वार भाफ़ दी गई और पट्टी बदली गई। रोगी जब आया था तो बिना मदद के खड़ा भी न हो सकता था, परन्तु इस दिन अकेला चलने में समर्थ हुआ। सारे शरीर पर गीला कपड़ा लपेटे हुए था। इसी में वह सोने को गया। तीसरे दिन चमड़ा हटाये जाने के योग्य हो गया था। चमड़े का रङ्ग सफ़ेद था, यह पका हुआ था और नर्म था। प्रति दिन काट दिया जाता था अन्त को यह सब उतर गया। नीचे से नया चमड़ा आ रहा था। चमड़े के साथ दुर्गन्धित गला हुआ

पदार्थ भी निकल गया, साथ ही कुछ बचा हुआ मोम और तार पीन के तेल का भाग भी दूर हो गया। अंगुलियां अच्छी प्रकार सब अलग २ हो गई थीं।

इस के पश्चात् शरीर के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिये साधारण चिकित्सा जारी रही। शरीर ठण्डा रक्खा जाता था। शरीर पर गीला कपड़ा लिपटा रहता था कि जिससे आंतें ठीक रहें। ७० अंश के जल से दिन में दो बार सोवन स्नान कराया जाता था। अंगुलियों को पृथक् रखने के लिये और उन्हें आपस की रगड़ से बचाने के लिये स्पञ्ज और ऊन का बना हुआ वस्त्र पहना दिया जाता था। दिन में तीन बार भाफ़ देने के समय को छोड़ कर शेष समय यह स्पञ्ज का वस्त्र रात दिन अंगुलियों पर रहता ही था। बाहु पर गीला और सूखा वस्त्र क्रमशः हर समय लिपटा रहता था। प्रातराश से पहिले प्रातः काल सारे शरीर को वाष्प स्नान और गीली चद्दर का वेष्टन

दिया जाता था। रोग का फिर आक्रमण नहीं हुआ। १५ दिन के बाद रोगी स्वस्थ हो कर घर चला गया। परन्तु चमड़े के नर्म होने के कारण दो मास के पश्चात् वह अपने काम पर गया।

एक और दाह का रोगी

स्मैड्ले की नौकरानी जो गैस लैम्प पर काम कर रही थी अचानक पतीली उतारते हुए लैम्प पर झुकी। लैम्प पर झुकने से गैस का फव्वारा उस के चेहरे पर लगा। इस से उस का चेहरा झुलस गया। चेहरे को तत्काल भूरे साबुन (Brown-soap) वाले सहन कर सकने योग्य गर्म जल से धोया गया। फिर आध घण्टे तक चेहरे को भाफ़ दी। फिर साबुन से धो दिया और फिर भाफ़ दी। पीछे से गर्म जल में डूबे हुए स्पञ्ज के पर्दे से चेहरा ढक दिया, केवल नाक और मुख खुले रक्खे। ठण्डा और गीला कपड़ा सिर पर रक्खा। बिस्तर पर एक घंटा विश्राम करने के बाद फिर भाफ़ देना आरम्भ किया। प्रातः काल तक रोगी लग

भग अच्छा था। उस ने स्पञ्ज का पर्दा हटा दिया था। और किसी प्रकार की बेचैनी मालूम नहीं होती थी। यदि किसी ठण्ड, किसी तेल या किसी चिकनाई का प्रयोग किया जाता, जैसा कि प्रायः डाक्टर लोग किया करते हैं तो रोगी की हालत भयानक हो जाती। यदि स्पञ्ज पास न हो तो गर्म जल में निचोड़े हुए एक कपड़े का प्रयोग किया जा सकता है जिस से कि गर्मी अन्दर बनी रहे।

पुरातन अङ्ग भ्रंश और चिरस्थाई त्वक् रोग

पुरातन अङ्ग भ्रंशों और त्वक् रोगों को ठीक करने में जल चिकित्सा के द्वारा अद्भुत प्रभाव देखा गया है जिस से स्पष्ट होता है कि जलचिकित्सा का आधार बड़ा दृढ़ है। चिकित्सक संसार में यह माना जाता है कि शरीर के तन्तु जितनी जल्दी स्थान पर आजावेंगे उतना ही वे अधिक शक्ति शाली और स्वस्थ होंगे। इस प्रकार नये बने हुए स्वस्थ तन्तु शीघ्र ही क्षीण तथा गन्दे द्रव्य को बाहिर निकाल देंगे।

इस प्रकार के कई रोगी स्मैड्ले को मिले हैं, जिन में से एक स्त्री का वर्णन दिया जाता है। आठ वर्ष पहिले उस की भुजा की हड्डी टूट गई थी। तब से उस की भुजा निर्बल थी, यद्यपि देखने में ठीक लगती थी। टूटे हुए स्थान को सप्ताह तक निरन्तर स्नान कराने के बाद एक दम परिवर्तन हुआ। पहिले छिलके दार फुन्सियां निकलीं और और फिर नष्ट होगईं। भुजा अच्छी होगई और उस में प्राचीन शक्ति आगई, साथ ही भुजा के ठीक होने से स्वभाविक रूप से सारे शरीर में शक्ति आगई।

फोड़े

प्रथम साधारण प्रयोग में आने वाले पीले साबुन (Yellow soap) से धोओ। यदि फोड़े का स्थान ऐसा हो जहां आसानी से भाफ़ का प्रयोग किया जा सके तो २० मिनिट तक उस स्थान को भाफ़ दो, और यदि नहीं तो २० मिनिट तक गर्म जल से सेक करो भाफ़ तथा गर्म जल

असह्य न हो। यदि असह्य होंगे तो शान्ति देने के स्थान पर क्षोभ पैदा करेंगे। पश्चात् लिन्ट (lint) या लिनन (linen) को दोहरा या तीहरा कर के गर्म जल में डुबो कर इतना निचोड़ो कि पानी बहना बन्द हो जावे। इसे फोड़े पर रक्खो। उस को मोमजामे या तेलिये रेशम (oiled-silk) से ढकदो। ऊपर से ढीली फ़लालैन की पट्टी बांधो। जब दर्द हो या पूय बाहिर निकले तब गीला लिनन बदलते जाओ। हवा से बचाओ। दिन में तीन बार भाफ़ दो। क्योंकि फोड़ा किसी शारीरिक विकार का परिणाम होता है अतः स्वास्थ्य सुधार के लिये भी उसी समय चिकित्सा करनी चाहिये। सादा भोजन दो, कोई उत्तेजक द्रव्य न दो। स्मैड्लेने कई ग्रीवा ग्रन्थियां तथा अन्य स्थान के फोड़े गीली स्पञ्ज की पट्टी और सेक द्वारा, जो बहुत गर्म न थे, और भोजन तथा स्नान द्वारा अच्छे किये हैं।

अंगुलियों का बंधना (Whitlows)

अंगुलियां ठण्डे जल के गिलास में दिन में तीन बार १५ मिनिट प्रतिवार रखो। फिर अंगुलि और

हाथ पर पट्टी लपेटो या अंगुलि पर गीला स्पञ्जी कपड़ा रक्खो। फिर दिन में दो बार कोहनी को ठण्डे जल में रक्खो। बाहु पर पट्टी बांधने से अधिक शीघ्र आराम होगा।

सिर का भारीपन

एक व्यक्ति जिस की आयु ५० वर्ष के लग भग थी, ४० वर्ष तक पूर्ण स्वस्थ रहने के बाद अनियमित जीवन, देर तक जागरण, तमाखू और शराब के प्रभाव को अनुभव करने लगा। अपने व्यवसाय में समृद्ध होने से, शक्ति शाली मनुष्य होने से, उस को स्वभाविक जीवन शक्ति के कारण अधिक कष्ट अनुभव नहीं हुआ।

यह रोगी स्मैड्ले के यहां आया। उसकी गर्दन पर डाक्टरों ने मटर के दाने गाड़े हुए थे। उसका विश्वास था कि इन दानों के होते हुए मैं पागल नहीं हूँगा, क्योंकि ये शोथ को हटारहे हैं। स्मैड्ले ने उसे मटर के साथ बकरी तथा मुर्गी के बच्चे

दिये। उसने कहा कि इन्हें खाजाओ। खाने से गर्दन में लगाने की अपेक्षा शरीर का पोषण अधिक होगा। गर्दन के पीछे लगे हुए दाने दुर्गन्धित स्राव पैदा कर रहे थे। दाने निकाल डाले गये। छिद्र साफ़ कर दिये गये और जल की पट्टियां बांध २ कर उनकी चिकित्सा की गई। कई मासतक वहां रहने के बाद रोगी की आंतें तथा गुर्दे ठीक काम करने लगे। जिह्वा साफ़ होगई। भूख अच्छी लगती थी। ठण्डे पानी से यथेच्छ स्नान करता था। एक बार में १० मील लगातार मज़े से जासकता था। वह बिलकुल ठीक होगया, कभी २ गर्दन में दानों के स्थान पर ऐंठन अनुभव होती थी। इससे सिर भारी और सुस्त प्रतीत होता था। यह वस्तुतः स्थानिक वातनाड़ी पर आघात पहुंचने से उत्पन्न कमजोरी के कारण थे। जिह्वा की उत्तम अवस्था तथा अच्छा स्वास्थ्य प्रकट करता था कि मटर लगाने के वहशी तरीके के बिना आराम जल्दी होसकता है।

पुल्टिस

बहुत से शल्यचिकित्सक अब पुल्टिस के स्थान में जल में भीगी पट्टियों का प्रयोग करने के लिये कहते हैं। दोनों ही अपने प्रभावों में बहुत भिन्न हैं। पुल्टिस जिन द्रव्यों से बनाई जाती है वे द्रव्य कुछ ही घण्टों के बाद अम्ल होजाते हैं और क्षोभ पैदा करते हैं। चिकने पदार्थ, जो पुल्टिस को चमड़े के साथ चिपकने से रोकने के लिये पुल्टिस में मिलाये जाते हैं वे अपना कार्य सर्वदा नहीं करते हैं और शीघ्र ही दुर्गन्धित होजाते हैं। पुल्टिस ख़राब होजाती है और उभरती दर्द होने लगती है, स्थान नर्म पड़जाता है, ये सब चिह्न बतलाते हैं कि पूय पड़ने लगी है। पुल्टिस पूय को चूसती है पैदा करती है, इस प्रकार और अधिक क्षोभक होजाती है। बहुत से घण्टे बीतने से पहिले ही पुल्टिस एक ऐसा मिश्रण बनजाता है जिसमें खट्टा सफेद २ आटा सा होता है, चिपचिपातेल होता है और पूय होती है। ये सब अपने भार से

उस स्थान को दबा रहे होते हैं, पुल्टिस के किनारों के साथ त्वचा से चिपट रहे होते हैं, इससे बड़ा खिचाव उत्पन्न होजाता है।

हौस्पिटल में चिकित्सक के आने से पूर्व पुल्टिस के कारण रोगी कैसा कष्ट अनुभव कर रहे होते हैं यह देखने से ही मालूम होता है। जब पुल्टिस खोल दी जाती है और पानी से भीगा कपड़ा ऊपर रक्खा जाता है तब पानी के शामक प्रभाव से रोगी को जो आनन्द आता है वह अवर्णनीय है।

जल से पट्टी करना न केवल पुल्टिस की अपेक्षा अधिक अच्छे प्रभाव रखता है प्रत्युत बहुत भिन्न प्रभाव उत्पन्न करता है। यह या तो पूय के स्राव को रोक देता है या कम कर देता है। किसी भी फोड़े में पहिले पहिले पूय युक्त द्रव निकला ही करता है, परन्तु थोड़ी ही देर पीछे वह इतना थोड़ा रह जाता है कि लिन्ट पर भी मुश्किल से

ही दाग देता है। जलीय पट्टी के द्वारा अल्सर से भी पूय बहुत शीघ्र कम पड़ जाती है

स्मैड्ले के पास एक रोगी आया उस की टांग में बहुत बड़ा अल्सर था। उसकी जलीय पट्टी की गई। रोगी ने रात को पट्टी उतार फेंकी क्यों कि वह कहता था कि स्राव बन्द हो रहा था। बहुत से शल्य चिकित्सकों की तरह वह भी समझता था कि कोई खुला पृष्ठ बिना पूय स्राव के ठीक नहीं हो सकता। पुल्टिस के कारण व्रण के ऊपर बहुत अधिक दाने उत्पन्न हो जाते हैं, वे जल की पट्टी से या तो बनते ही नहीं या बहुत ही थोड़ी मात्रा में निकलते हैं।

पुल्टिस के कारण जो दर्द हुआ करती है वह इस चिकित्सा से बिल्कुल हट जाती है। एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के साथ लड़ रहा था। लड़ाई में उसके अंगूठे का नखून जड़ के पास से कट गया था। जल से पट्टी की गई। एक दो दिन

के बाद रोगी स्मैड्ले से मिला और देखा कि रोगी ने अंगूठे पर पुल्टिस बांधी हुई है। पूछने पर रोगी ने उत्तर दिया कि अब आगे जल की पट्टी बांधना व्यर्थ है क्योंकि उसने उसकी सम्पूर्ण तीव्र वेदना मिटा दी है। इससे स्पष्ट है कि ज़ख्मों को, जल की पट्टी के द्वारा बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के, आराम होता है।

व्रणों और शोथ के लिए जल का औषधरूप से प्रयोग बहुत प्राचीन है। जे. शू, एम. डी. (J. Shew, M.D.) कहता है कि हिपोक्रेटस ने इसका आविष्कार किया है यह बात इस्क्यूलेपिअस के मन्दिर में वर्तमान शिलालेखों से स्पष्ट है कि पुरोहित लोग कुछ गुप्त पदार्थों का मिश्रण करके जल का प्रयोग किया करते थे। सम्भव है उन पदार्थों को मिलाने का अभिप्राय लोगों की नज़रों में उस इलाज का महत्व अधिक बढ़ाना मात्र हो।

‡ व्रण चिकित्सा

वेदना दूर करने के लिये अवस्थाओं के अनुकूल गर्म या ठण्डे जल में ज़ख्मी या सूजे हुए भाग को डबोने से अधिक प्रभाव शाली कोई अन्य प्रयोग जल का नहीं है। मैने इसका बहुत बड़ा असर देखा है। दर्द दूर करने के लिए गर्म पानी से सेक करने के स्थान में गर्म पानी में डबोने से अधिक लाभ देखा और रक्त-स्राव बन्द करने के लिये ठण्डे पानी में डबोने से अधिक लाभ देखा। यह चिकित्सा और भी अधिक महत्व पूर्ण होती यदि कोई ऐसा उपाय निकल आता कि सूजे हुए स्थान को नीचे न करना पड़ता। किल्कैनी में रहने वाले सैनिक शल्य चिकित्सक डा० कार्डिफ ने स्मैड्ले को एक बहुत ही विचित्र रोगी सुपुर्द किया।

एक सिपाही को एक बर्छी ऐसा लगा कि हाथ के अंगूठे में से होता हुआ हथेली को पार कर

‡ J. Shew, M. D.

गया। रक्त स्राव बन्द हो चुकने के पश्चात् हाथ साधारण जल में रख दिया गया। दर्द बड़ी शीघ्रता से दूर हो गई। हाथ १२ घण्टे तक पानी में डूबा रहा। इस के पश्चात् एक चिपटने वाला प्लस्तर हाथ पर लगाया गया। इस के पश्चात् वेदना बड़े तीव्र वेग से उमड़ आई। तब आवश्यक हुआ कि पट्टी बदल दी जावे और हाथ को फिर पानी में रक्खा जावे। पानी में हाथ रखने से पीड़ा फिर दूर हो गई। इस समय हाथ लगातार २० घंटे तक पानी में रक्खा गया। फिर निकाल कर साधारण जल की पट्टी बांध दी गई। फिर दर्द नहीं हुई। इस भयानक व्रण की चिकित्सा पूर्ण हुई। शोथ का कोई चिन्ह सूजन, गर्मी, पूय आदि कुछ प्रकट न हुआ। खुरण्ड जो अन्त में आया वह नरम था। ज़ख्म लगने के आठ दिन के पश्चात् वह सिपाही फिर अपनी नौकरी पर चला गया।

बैरन पर्सी (Baron Percy) ने बहुत ठीक कहा है—कि बन्दूक की गोली लगने के बाद या

कोहनी, घुटना, टांग आदि अङ्गों पर गहरी चोट लगने के बाद यदि उस स्थान को लगातार १०,१५ घण्टे तक पानी में डुबोया जा सके तो हमें कम अङ्गछेद करने पड़ेंगे और हम बहुसंख्यक घायलों के जीवन बचा सकेंगे।

एक स्त्री की जंघास्थि गिट्टे के पास टूट गई थी। इस के कारण तुरन्त बहुत सूजन, खिचाव और दर्द शुरू हुई। उसी के कहने से उस अङ्ग को गर्म पानी की बाल्टी में रक्खा गया, जिससे न तो दर्द ही रही और न सूजन ही हुई।

मिर्गी और परिणामभूत लकवा

६३ वर्ष का एक मज़बूत, सुन्दर रङ्ग वाला व्यक्ति था। यह प्रतिदिन पक्वान्न तथा शराब का खब सेवन करता था। स्मैड्ले के पास जाने से एक मास पूर्व वह मिर्गी तथा लकवे से आक्रान्त हो गया। उस के शरीर का आधा भाग बिलकुल बेकार था। मुख पिचक गया था, स्मृति शक्ति मन्द पड़ गई थी, एक भुजा बिलकुल निकम्मी हो गई

थी। एक गिट्टा और पैर भी लग भग निकम्मा था। आंतों में पूर्ण मलबन्ध था, जिस से कष्टप्रद शिरो गुरुत्व और शिरः पूर्णता का अनुभव होता था। इस की चिकित्सा निम्न लिखित की गई।

प्रथम दिन प्रातः उठने पर साबुन वाले साधारण गर्म पानी से शरीर को धोया गया। मध्याह्न से पूर्व ३० मिनिट तक पीछे और सामने साधारण सेक किया गया। फिर गर्म बिछौने पर स्थित रोगी को कोसे जल में निचोड़े हुए तौलिये से पंछा। मध्याह्न के बाद १० मिनिट तक ८५ अंश के जल से सीवन स्नान कराया, तथा पैरों को १०५ अंश के राई के पानी से स्नान कराया गया। सिर पर ठण्डा गीला कपड़ा रक्खा गया। उस के बाद प्रति दिन ३ बार लंगड़ी टांग और भुजा को वाष्पस्नान करा कर पट्टी बांधी गई। उस समय शरीर पर गीली पट्टी लपेटी गई तथा मेरु दण्ड पर भी दबाव डालने वाली पट्टी लपेटी गई। रात्रि को सोने के समय पट्टियों को फिर गीला कर दिया गया,

तथा गीली जुराबें पहिना कर और मेमने की ऊन का वस्त्र उढ़ा कर सुला दिया गया। अब उठने के समय की तथा मध्यान्ह से पूर्व की चिकित्सा को गर्म और कोसी चद्दर से क्रमशः बदलते जाओ। इसी प्रकार बारी २ से वाष्प स्नान तथा गीली पट्टी बदलते जाओ। अवसर आने पर स्नान छोड़ दो। रोगी की निगरानी रक्खो। शिर की पीड़ा के अनुसार जल चिकित्सा करते रहो। यदि बेचैनी मालूम हो तो पिण्डलियों तक टांगों को राई के गरम पानी में रक्खो, साथ ही अन्य चिकित्सा बन्द कर दो। प्रारम्भ में मांस या आटे का भोजन मत दो। प्रति दिन ५,६ गिलास पानी पिलाओ। यदि सिर के भारी पन को दूर करने के लिये मेरु दण्ड के ऊपर के सिरे पर कभी बत्ती का प्रयोग ऐसी अवस्थाओं में किया गया हो तो निश्चय जानो कि बत्ती से कभी भी हानिकारक प्रभाव हट नहीं जाते।

एक वृद्धा स्त्री स्मैड्ले के चिकित्सालय में गई। स्त्री की चिकित्सा बत्ती द्वारा की गई थी। उसे

बीमारी केवल विकृत आमाशय की वात संस्थानिक प्रतिक्रिया के कारण थी। इस का असर सिर पर था। बत्ती लगाने के बादसे सर्वदा उसे सिर में बेचैनी मालूम पड़ती थी। उस की यह बेचैनी आजीवन रही। एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति का कोई भी प्रकार निर्बल शरीर में प्राकृतिक बल न ला सकता था। क्यों कि इस के सब उपाय पोषण के विरोधी हैं, या तो विनाशक हैं, या शामक हैं या उत्तेजक हैं।

गृध्रसी (Sciatica) और आमवातिक ज्वर

२६ वर्ष के एक मज़दूर ने, जिसका शरीर मज़बूत था, गीले कपड़े पहिने रहने से तथा अधिक मेहनत करने से दक्षिण नितम्ब में गृध्रसी की दर्द का अनुभव किया। डाक्टरों से पूरी तरह इलाज करा कर निराश होने के बाद वह स्मैड्ले के पास गया। वह अस्थि मात्र अवशिष्ट था और अत्यधिक दर्द का अनुभव करता था, अतः बड़े कष्ट से स्मैड्ले के पास पहुँचा। स्मैड्ले

ने आमाशय तथा आँतों पर गर्म प्रसेक करना प्रारम्भ किया। पश्चात् शरीर को साबुन के गर्म पानी से धोया। पश्चात् साधारण जल से स्नान कराया। शरीर को सूखे कपड़े से पूंछ डाला। फिर धढ़ पर गीली पट्टियां बांधीं, और मेरुदण्ड को दबाने वाली पट्टी बांधी। पश्चात् अंगों पर गीली पट्टियां बांधीं। फिर मोमजामा तथा फ़लालैन से ढक दिया। २४ घण्टों में रोगी को बहुत आराम पड़ा। वह आराम से सोया। कोई मादक द्रव्य नहीं दिया गया। तीन सप्ताह के अन्दर उसकी दर्द बिलकुल जाती रही। आंखों की सूजन बिलकुल जाती रही। तीन सप्ताह बाद वह तेज़ी से घूम फिर सकता था। भूख अच्छी लगती थी। आंतें अपनी स्वाभाविक अवस्था में काम करती थीं। उसका भार तथा ताक़त प्रति दिन बढ़ती जाती थी। उसे सिवाय साधारण भोजन, पानी, दूध और हलकी काली चाय के एक रत्ती भर भी औषध नहीं दी गई।

ऋतुरोध से उत्पन्न स्त्रियों में मस्तिष्क विकार

स्मैड्ले के पास एक रुग्णा आई जो पूर्णतया पागल थी। उसकी दशा अपने तथा अपने नौकरों के लिये भयप्रद थी। डाक्टरों से पूर्ण निराश होकर उसे पागलखाने में भेजा जा रहा था। उस के पिता ने उसे स्मैड्ले के पास आराम होने की सम्भावना से भेजा। रुग्णा के मज़बूत होने से उसे काबू करने में बड़ी कठिनता हुई। परिणाम यह हुआ कि उसकी टांगों और आंतों में सहसा परिवर्तन हुआ और वह अपने दिमाग़ और स्वास्थ्य को पूर्णतया प्राप्त कर सकी। स्मैड्ले की चिकित्सा तथा पट्टियों के प्रयोग करने के दो मास पश्चात् यह स्थिति आई।

आन्त्र वृद्धि का विशेष रोगी

४६ वर्ष की एक विदेशी स्त्री, जिसकी आंतें १५ वर्ष पूर्व पुत्रोत्पत्ति के बाद से बहुत बढ़ रही थीं। सम्पूर्ण उदर बहुत बढ़ गया था, यहाँ तक

कि आधी जङ्घाओं तक जा लटका था। वृद्धि नरम, हलकी, तथा स्पञ्जके समान थी। स्मैड्लेने स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी उपायोंसे सम्पूर्ण विकृत पदार्थ त्वचा द्वारा निकालने का प्रयत्न किया। रोगी को निश्चय दिलाया कि उसके तरीके से विविध प्रकार के, आराम न देने वाले, मिश्रण (compounds) बाहर निकल जावेंगे। स्मैड्ले ने उसकी जिह्वा तथा अन्य चिह्नों से जान लिया कि विकृत पदार्थ को निकाल देने से बहुत उन्नति की सम्भावना है। सावधानी से जल चिकित्सा का प्रयोग करने से स्वास्थ्य में अवश्य उन्नति होगी तथा कोई भी हानि न होगी। की गई चिकित्सा साधारण स्वास्थ्य को उत्पन्न करने वाली थी। बढ़े हुए स्थान पर सेक तथा स्पञ्जी पट्टी बांधी गई, रात दिन वह स्थान गीला रक्खा गया। कुछ ही सप्ताहों में आंतों में आकस्मिक परिवर्तन हुआ, मल बहुत निकलने लगा, गुर्दे ज़ोर शोर से काम करने लगे। अन्त को ६ महीनों में स्त्री पूर्ण स्वस्थ होकर घर को लौट गई।

यात्राके पश्चात् थकावट तथा सर्दी

एक दिन सांयकाल जब कि बहुत कोहरा पड़ रहा था और सर्दी थी तथा प्रथम रात्रि को बहुत थोड़ी नींद आई थी, तथा प्रथम दो दिवस आराम से भोजन करना भी न मिला था यात्रा से स्मैड्ले घर लौटा। लौट कर उसने छः बजे चाय पी। ८ बजे गर्म पानी से २० मिनिट तक स्नान किया। स्नान के समय साधारण पीले साबुन (Yellow soap) का प्रयोग किया और फलालैन की पट्टी शरीर पर लपेटी परन्तु छाती और आंतों पर गर्म पट्टी लपेटी। गर्म स्नान के बाद लगभग ठण्डे जल से स्नान किया। थोड़े कपड़े पहिन कर ठण्डा सीवन स्नान ६ मिनिट तक किया। फिर सब कपड़े पहिन लिए। इस प्रकार थकावट बिलकुल उतर गई थी।

प्रतिदिन के सोने के समय ९ बजे सोया। नींद अच्छी आई। प्रातः उठने पर आनन्द तथा स्फूर्ति प्रतीत होती थी।

श्वास प्रणाली की आकस्मिक शोथ.

छाती पर १ घण्टे तक गर्म पानी से भरी रबड़ की बोतल रख कर सेक करो। सेक के बाद छाती और उदर को सूखे तौलिये से रगड़ो। पश्चात् सम्पूर्ण छाती पर राई की पुल्टिस बांधो। १५, २० वा ३० मिनट तक जब तक रक्खा जासके रक्खो। फिर नर्म कागज़ से राई को झाड़ दो और सूखे तौलिये से रगड़ो। फिर छाती पर सूखे स्पञ्ज की या फलालैन की पट्टी बांध दो, इसे ६ घण्टे ८ घंटे या सारी रात रक्खो। प्रातः गर्म पट्टी से गर्म सीवन स्नान करो। छाती और पैरों को गर्मपानी में १५ मिनिट तक रक्खो पश्चात् चद्दर या स्पञ्ज से ढकदो। छाती की पट्टी या कौलर पर कोसा पानी छिड़को और उसे लगातार पहिने रहो। जब तक आराम न हो जावे दिन में एक बार पानी छिड़को। यदि गर्म सीवन स्नान कष्ट प्रद हो तो छाती पर गर्म पानी से सेक करो। चद्दर या स्पञ्ज को ओढ़ लो।

मान्स तथा अन्य उत्तेजक पदार्थों का सेवन त्याग दो। सम्भव हो तो अधिक स्वास्थ्य प्रद स्थान में जाओ।

आमवातिक ज्वर

प्रातः काल उठने पर सेक करने वाली गर्म पट्टी बांधो। पानी बहाती हुई चद्दर ओढ़ो, या स्नान करो। पानी बहुत ठण्डा न हो लग भग ६५ अंश का हो। मध्य ह्न से पूर्व १० मिनिट तक वाष्प स्नान करो। ठण्डे होने के बाद पानी बहाती हुई चद्दर ओढ़ो। तीन बजे १ घण्टे तक गीली पट्टी बांधो। फिर पानी बहाती हुई चद्दर ओढ़ो। साधारण तया रात को ज्वर लौटता है। यदि ऐसा हो तो ७ से ८ बजे के बीच में गीली पट्टी लपेटो। एक तौलिया ठण्डे पानी में गीला कर के निचोड़ो। उसे दिन रात सिर पर लपेटे रहो। बार २ इसे ठण्डे पानी में बदलो। पानी बहाती चद्दर से साधारण स्नान करना अधिक अच्छा है। स्नान के समय

शरीर को ख़ूब रगड़ो। दिन रात शरीर पर गीली पट्टी बांधे रहो। यदि ज्वर अधिक हो तो मान्स खाना छोड़दो। किसी प्रकार का उत्तेजक द्रव्य या दवाई न लो। फ़लालैन आदि गर्म कपड़े पहिन कर मत सोओ। अधिक रोगीअंग या सन्धि स्थान पर गीली पट्टी या स्पञ्ज पट्टी का निरन्तर प्रयोग करो। यदि हाथ और पैरों में शिकायत हो तो १५ मिनिट तक १०० अंश फा० के जल में रक्खो फिर १ मिनिट ठण्डे जल में। इस प्रकार दिन में ३,४ बार प्रयोग करो। सोते हुए आंतों पर पुनः सेक करो। शरीर की गीली पट्टी को बदल दो। ठण्डा जल थोड़ा २ कर के दिन में कम से कम ३ पाइन्ट दो अथवा जितना रोगी चाहे उतना दो।

मूर्छा

प्रातः उठने पर १५ मिनिट तक ७० अंश के जल से बैठ कर स्नान करो जब तक जल ठण्डा मालूम न होने लगे। फिर पानी बहाती चद्दर ओढ़ो। पानी का ताप मान ६५ अंश हो। १० बजे

लग भग ६५ अंश के ठण्डे पानी में शिरः स्नान करो, साथ ही २० मिनिट तक स्पञ्ज से शंख प्रदेश पर पानी डालो। यदि स्त्री हो तो पीछे के बाल कटवाने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि बालों में रहने वाला पानी शिर को ठण्डा रखता है। शिरः स्नान के बाद ६५ अंश के जल से १० मिनिट तक पैरों का स्नान करो। ११ से १२ बजे तक १ घण्टा गीली पट्टी बांधो। उस के पश्चात् पानी बहाती चद्दर ओढ़ो या साधारण स्नान करो। पानी ६५ अंश से ७० अंश तक का हो। पट्टी बांधने से पूर्व गर्म जल से आंतों को २० मिनिट तक सेक करना उपयोगी होगा। २½ बजे १० बजे के समान शिर तथा पैरों का स्नान करो। ३½ बजे वाष्प स्नान करो। ६ बजे २० मिनिट तक बैठ कर स्नान करो। १० से १५ मिनिट तक मेरु दण्ड को रगड़ो। यह याद रक्खो कि शरीर कम्बल से ढका रहे। एक या दो सप्ताह तक धड़ पर पट्टी बांधे रक्खो। उस के बाद कुछ दिनों के लिये पट्टी बांधना छोड़ दो। यदि ठण्ड प्रतीत

हो तो पट्टी को उतार कर गर्म जल में डबो कर निचोड़ दो। स्त्रियां अच्छी प्रकार समझ सकेंगी कि कब कुछ दिनों के लिये चिकित्सा छोड़ दी जावे। भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। भोजन के प्रकरणों में पूर्व दिये गये निर्देशों का अनुसरण करना चाहिये। जिस मनुष्य को मिर्गी का दौरा आया करता हो उसे भोजन के विषय में अत्यधिक सावधान रहना चाहिये। सायंकाल ७ बजे के बाद कुछ नहीं खाना चाहिये। प्रतिदिन थोड़ा २ कर के ४ गिलास पानी पी जावे। चटपटे भोजन और चाय का सर्वथा त्याग करे। थोड़ी मात्रा में कोको का लेना अच्छा है। काफ़ी तथा अन्य सब उत्तेजक पदार्थ ख़राब हैं, पानी सब से उत्तम है। इन नियमों का ध्यान रखने से आराम की आशा रक्खी जा सकती है। एक या दो सप्ताहों के बाद प्रति सप्ताह दो बार पट्टी बांधो और ११ बजे पट्टी बांधने के स्थान पर पानी बहाती चद्दर ओढ़ो या साधारण स्नान करो।

क्षयीरोगी

इनके लिये जलचिकित्सा बहुत उपयोगी है। सावधानी की बहुत आवश्यकता है। जल ७० से ७५ अंश तक का होना चाहिये।

गर्मियों में प्रातः ६½ बजे और सर्दियों में प्रातः ७½ बजे ४ मिनिट तक ७० अंश के जल से बैठकर स्नान करो। स्नान के समय मेरुदण्ड को रगड़ो। फिर शरीर को धीरे २ स्नान के जल से स्पञ्ज करो। सारी प्रक्रिया के समय शरीर को जहां तक होसके कम्बल से ढके रक्खो कि ठण्ड न लगने पावे। स्पञ्जके बाद शीघ्र पूरे कपड़े पहिन लो। थोडा ठण्डा पानी सिप करो। नंगे शरीर को खुली ठण्डी हवा में मत रक्खो, क्योंकि कमज़ोर व्यक्तियों को इससे नुकसान पहुंचता है। यदि रोगी गर्म न रहता हो तो बैठ के स्नान करना छोड़दो। शरीर के कुछ भाग को नङ्गा रखकर और कुछ भाग पर कपड़े पहिना कर स्पञ्ज करना हानि कर है। पानी

बहाती हुई चद्दर शरीर को धोने के साथ २ शरीर की गर्मी को सुरक्षित रखती है और हलके वाष्प स्नान का काम करती है। क्रिया के समय छाती पर गर्म जल की पट्टि का या फलालैन का उपयोग लाभकर है। मध्यान्ह में ६५ अंश के जल से शिरः स्नान १० मिनिट तक करो। पश्चात् ५ मिनिट तक पैरों का स्नान उसी जल से करो। सायं काल भी वैसे ही करो। छाती को दबाने वाली पट्टी का प्रयोग रात दिन करो। बार २ थोड़ा साधारण जल छिड़को, इतना न डालो कि जिस से पानी बहने लगे। प्रतिदिन दो चाय के चम्मच के परिमाण में कौडलिवर औयल उपयोगी है। गर्मियों में हलकी जुराबें पहिनो। सर्दियों में मेमने की ऊन की जुराबें पहिनो। सर्दी के समय चाहे ग्रीष्म ऋतु भी हो तो भी बकरी की ऊन के दस्ताने पहिनो। फल तथा कोई उत्तेजक द्रव्य न खाओ। गले तक शरीर को ढक के रक्खो। कक्षा की रक्षा के लिये वास्केट को

बाहुएं छोटी हों। यदि आंते ठीक न हों तो कुछ दिन तक या लगातार सप्ताह तक धड़ पर पट्टी बांधो। बहुत बार क्षयी रोगी ऊपर की आधी चिकित्सा भी नहीं सहसकता। उसके चिह्नों और भावों को नज़र में रक्खो। सब उत्तेजक द्रव्य तथा मांस छोड़दो। बाहर जाते हुए श्वास लेने का यन्त्र साथ रक्खो। सर्दी में कफ यदि तङ्ग करे तो रात्रि को भी यह यन्त्र साथ रक्खो।

वातव्याधि (Nervous ness)

किसी भी कारण से उत्पन्न वात व्याधि में जलचिकित्सा विशेष रूप से उपयोगी है। स्मैडूले के पास कई रोगी आये। जिन्हें स्वतन्त्र केवल उन्हीं पर नहीं छोड़ा जा सकता था। वे स्नान तथा भोजन के पश्चात् थोड़ी देर तक नियम पूर्वक लगातार प्रयोग द्वारा आराम को प्राप्त करसके। एक ५५ वर्ष का रोगी, जो डाक्टरों के हाथों से आराम प्राप्त न कर सकने के कारण दिन प्रतिदिन

ख़राब होता जारहा था, स्मैडले के यहां लाया गया। उस समय उसमें वात संस्थानिक विकृति के सब चिन्ह थे उस पर पूरा ध्यान रक्खा गया। जलचिकित्सा शुरू की गई। स्मैड्ले को बड़ी खुशी हुई, जब उसने उसे एक रविवार को प्रसन्न चित्त होकर धन्यवाद सूचक रूमाल हिलाते हुए देखा।

इसी प्रकार एक और रोगी स्मैड्ले के पास आया। एक दो दिन पहिले वह थोड़ा सा स्नान कर चुका था। चिकित्सालय में प्रथम प्रातः काल स्नान कराया गया। रात्रि को उसके सिर पर गीला कपड़ा रक्खा गया। अगले दिन प्रातः बैठ कर स्नान, मेरुदण्ड का घर्षण, पानी बहाती चद्दर का ओढ़ना, इस प्रकार बहुत उन्नति हुई। अच्छी नींद आई जो उसे बहुत दिनों से न मिली थी।

जलचिकित्सा सम्बन्धी सूक्ष्म प्रक्रियाएं

कई रोगों में सूक्ष्म चिकित्सा बहुत आवश्यक है। विशेषतया जिगर, आमाशय, आंतें, गुर्दे,

और फेफड़े आदि जीवन सम्बन्धी अंगों के प्राचीन चिरस्थाई रोगों में बहुत आवश्यक है । एक पुरुष जिसकी आयु २८ वर्ष की थी, जो बहुत वर्षों से अजीर्ण रोग से ग्रस्त था, जिसका जिगर ख़राबथा, जिसके सिर में बेचैनी रहती थी उसकी जीवन शक्ति बहुत थोड़ी थी। ऐसे रोगी के लिये तीव्र चिकित्सा हानिकर होती। कई सप्ताहों तक जल का प्रयोग निम्न प्रकार से किया गया। इस चिकित्सा विधि से ३ मास में उसका भार एक स्टोन (लगभग ७ सेर) बढ़गया। धीरे २ उसको फिर भूख लगने लगी और उसमें बल आगया। पेट में काटने की सी पीड़ा होती थी वह बिलकुल जाती रही और जी मचलाना भी छूटगया।

प्रातः काल उठने के पश्चात् ८६ अंश के पानी से २० मिनट तक सीवन स्नान लो। १५ मिनट तक अत्यन्त शान्त बैठ चुकने के बाद आंतों पर नर्मी से साबुन मलो। उसी पानी से सारे शरीर पर स्पञ्ज करो। मध्याह्न से पूर्व गर्म पानी में स्पञ्ज

भिगोकर आंतों पर रक्खो। इसे बदलने से पहिले ५० अंश के जल से तीन मिनिट तक हाथों से ही मलो। मध्याह्न से पूर्व एक बार गिट्टों तक पांवों को ७० अंश से ८० अंश तक के ताप वाले राई के जल में २० मिनिट तक रक्खो। एक दूसरे के प्रति उन्हें खूब ज़ोर से हिलाते रहो। फिर उन्हें पूंछ डालो और फिर सूखे गर्म हाथों से इतना रगड़ो कि गर्म हो जावें। अपराह्न में उसी प्रकार सीवन स्नान करो जैसे प्रातः काल किया था। रात को सोने के समय गर्म पानी में कपड़ा भिगो भिगो कर आध घण्टे तक सेक करो। इसी समय ठण्डा पानी सिप करो। पांवों के पञ्जों पर राई की पुल्टिस बांधो और उन पर गर्म पानी का प्रयोग करो। शरीर दिन भर झुका हुआ रहना चाहिये और पाँव के साथ दिन भर गर्म पानी की बोतल लगी रहे। यदि आक्षेप अधिक उठते हों तो उसी प्रकार सेक करो जैसे सोने के समय किया था। यह चिकित्सा आगे लिखी चिकित्सा के साथ एक एक दिन के क्रम से करनी चाहिये।

उदर पर बांधी जाने वाली पेटी प्रति घण्टा गीली करते रहो, और आंतों को हाथों से ही प्रति चार गीली पेटी रखने से पहिले १ मिनिट तक साधारण जल से मला करो। दिन भर जब पानी पिओ तब वह ५० अंश का लो। जब कभी रात को बेचैनी मालूम दे तब सोने के कमरे में ही आध घण्टे तक सेक करो। फिर बिस्तर में घुस जाओ और मध्याह्न भोजन के समय तक शान्त पड़े रहो अपराह्न में पांव को स्नान कराओ। जहां दर्द हो वहां सहसा परिवर्तन होने पर राई की पुल्टिस बांधो। इसे इतनी बार बदलते रहो कि जितनी बार त्वचा को नुकसान न पहुंचे। फिर वह चिकित्सा करो जिससे सहसा परिवर्तन हो। प्रातःकाल उठने पर ७० अंश के जल से पानी बहाती चद्दर ओढ़ो। मध्याह्न से पूर्व ८० अंश के जल से सीवन स्नान करो जब तक पानी ठण्डा न होजावे। नितम्ब को भी साथ ही मलते रहो। पानी बहाती चद्दर भी क्रम २ से ओढ़ते रहो। चद्दर में जल

६० से ७० अंश तक का हो । अहराह्न में सारे शरीर को सूखा रगड़ो । इस रगड़ने के समय ही पांव राई के गर्म पानी में रक्खो। सोने के समय शान्त होकर सीवन स्नान लो । ६० अंश के जल से १५ मिनट तक पर्याप्त है । साथ ही साबुन मलो। फिर गर्म पानी में उदर को पट्टी बांधो । मांस छोड़ दो। एक चायके चम्मच की मात्रा में प्रति रात्रि को कौड लिवर औयल पियो । प्रातः जगने पर ठण्डे पानी में भीगी चद्दर ओढ़ो और साथ ही गर्म गद्दे पर खड़े रहो। मध्याह्न से पूर्व ६० अंश के जल से सीवन स्नान करो । स्नान से पूर्व साबुन मललो। पानी ठण्डा हो जाने तक स्नान करो । अपराह्न में उसी प्रकार पानी बहाती चद्दर ओढ़ो जिस प्रकार प्रातः काल ओढ़ी थी। सोने के समय १० मिनट तक गर्म जल से सेक करो।

दूसरा रोगी

२७ वर्ष का एक मनुष्य अजीर्ण और जिगर की शिकायतों से ६ वर्ष से आक्रान्त था। कार्य में

अत्यधिक लगे रहने से उसे यह शिकायत हुई। शरीर स्वभाव से ही कमज़ोर था। असफलता को दूर करने के लिए और भूख बढ़ाने के लिए तथा आंतों का कार्य ठीक करने के लिए औषध लेते २ उसे बहुत वर्ष बीत गये थे। अन्त में वह कार्य करने में बिलकुल अशक्त होगया। निम्न लिखित चिकित्सा से उसे शीघ्र ही अच्छी भूख लगने लगी, आमाशय को आराम हुआ और आंतों का कार्य नियमित होगया।

प्रातः काल उठने पर पहिले ठण्डे तौलिये से शरीर के ऊपर के आधे हिस्से को सूखा मलो फिर कपड़े पहिन कर नीचे के आधे हिस्से को उसी प्रकार मलो। मध्याह्न से पूर्व हाथों औरपावों को १०० अंश के राई के पानी में रक्खो। फिर कन्धों के बीच के भाग पर राई की पुल्टिस इतनी देर तक बांधो कि जगह लाल हो जावे। फिर हाथों और पांवोंको ठण्डे पानी से रगड़ो। हाथ रगड़ने २ गर्म होजाने चाहियें। फिर उन्हें सूखा हो रक्खो। जब

रोगी राई की पुल्टिस को न सहार सके तब सब कमज़ोर अङ्गों पर सूखा तपा हुआ कपड़ा पहिनाओ जब तक दूसरा कपड़ा न धारण कर ले। तीसरे पहर उसी प्रकार ठण्डे कपड़े से रगड़ो जिस प्रकार प्रातः काल रगड़ा था। प्रत्येक दूसरे दिन इसे तो हटा दो केवल मेरुदण्ड पर राई का कपड़ा ५ मिनिट तक चिपकाओ। गर्म बिछौने पर पांव रक्खो। आंतों पर गर्म किया हुआ कपड़ा रक्खो। यदि पांव ठण्डे हों तो उन्हें १०० अंश के राई के पानी में रक्खो। सोने के समय आंतों पर गर्म पानी के साथ साबुन मलो। फिर पूंछ डालो और कौड्लिवर औयल की मालिश हाथों से २, ३ मिनिट तक करो। दिन में बहुत समय तक झुक कर बैठे रहो। उसी स्थिति में पेट को आगे पीछे करने की क्रिया करो। दिन भर ठण्डा पानी सिप करो। झुकी हुई स्थिति में आमाशय पर बाहिर की ओर गर्म पानी से भरी रबड़ की बोतल रक्खो जिससे सेक होता रहे। नई फ़लालेन दोहरी करके आंतों पर रक्खो।

तीसरा रोगी

दिन भर पढ़ते लिखते रहने से और बन्द हो कर बैठे रहने से अजीर्ण रोग उत्पन्न हो जाता है और स्वास्थ्य नहीं रहता। ऐसी अवस्थाओं में पांव पर ऐसी चोट लगाओ जिससे दर्द होने लगे पांव फूल जावे। प्रातः काल उठ कर गर्म पानी बहाती हुई चद्दर शरीर पर लपेटो। फिर शरीर पर साबुन लगा कपड़े से मलो। फिर गर्म पानी की चद्दर लपेटो और अच्छी प्रकार मलो। फिर ठण्डे पानी का एक बड़ा बर्तन लेकर पानी मेरुदण्ड पर से धीरे २ बहाओ, रोगी को गर्म गद्दे पर खड़ा रक्खो। मध्याह्न से पूर्व छाती और गले को ठण्डे पानी और हाथ से अच्छी प्रकार रगड़ो। ध्यान रक्खो कि टांगों में सहसा परिवर्तन कब आता है। फिर ५ मिनिट तक ठण्डे पानी से सीवन स्नान करो। तीसरे पहर छाती और पेटपर गर्म पानी का कपड़ा रक्खो। फिर दो मिनिट तक मेरुदण्ड पर पानी बहाओ,

कुछ गर्म पानी एक चौड़े बर्तन में हमेशा रक्खो। टांग पर से फ़लालैन उतार डालो और सूखे चिथड़े बांध दो। यदि टांग में बहुत गर्मी मालूम होती हो तो १ घन्टे तक इसे लपेट रक्खो।

खांसी और स्वास्थ्य क्षीणता

एक सौदागर, जिस की उमर ५० वर्ष की थी, था तो मज़बूत परन्तु बहुत देर से छाती कुछ कम-ज़ोर पड़ गई थी, और जब कभी उस के पाचक अङ्ग ठीक काम न करते थे तो उसे श्वास काठिन्य हो जाता था तथा थकावट मालूम होती थी। बहुत देर तक दवाई खाते २ थक गया पर उसे कुछ भी स्थिर आराम न आया। वह स्मैड्ले के पास आया। वहां आकर अपने जीवन में पहली बार ही खाने, पीने, रहने सहने, पहिनने आदि की शिक्षा प्राप्त की। उस की चिकित्सा के लिये निम्न लिखित व्यवस्थापत्र लिखा गया। प्रथम दिन-गर्म पानी से साबुन मल कर शरीर को धोना,

सीत्रन स्नान, छाती पर ४ मिनिट तक गद्दी, फिर ठण्डे पानी से स्पञ्ज करना।

दूसरे दिन

प्रातः उठते ही साधारण पानी में भीगी चद्दर ओढ़ना।

तीसरे दिन

दूसरे दिन की तरह।

प्रथम दिन मध्याह्न से पूर्व

२० मिनिट तक धड़ के सन्मुख भाग को गर्म पानी से सेक करना। एक घण्टे तक गीला कपड़ा लपेटना। फिर लगभग ठण्डे पानी की चद्दर ओढ़ना।

दूसरे दिन मध्याह्न से पूर्व

गर्म पानी से सेक १ घण्टे तक गीली पट्टी लपेटना। लगभग ठंडे पानी से स्पञ्ज करना और गर्म गद्देले पर खड़े रहना।

तीसरे दिन मध्याह्न से पूर्व

पहले दिन की तरह।

प्रथम दिन अपराह्न

९० अंश के जल से सीवनस्नान। छाती पर गर्म पानी की पट्टी। १०० के राई के जल में पांव रखना। निचोड़े हुए तौलिये से शरीर पूंछना। सीवन स्नान।

दूसरे दिन अपराह्न

८० अंश के जल से ६ मिनिट तक सीवन स्नान। १ मिनिट तक ठंड में दौड़ना। प्रतिदिन १०० अंश के जल में पांव रखना। रातदिन आधी छाती पर पट्टी कसना। दिन में शरीर पर पट्टी बांधना। गर्म पानी में निचोड़ी फ़लालैन रात को रखना।

दूसरे सप्ताह प्रथम दिन मध्याह्न से पूर्व

२० मिनिट तक गर्म पानी से छाती को सेकना। गले के नीचे और छाती के ऊपर राई का प्लस्तर जब तक सहारा जाय। फिर उतार कर सुखाना

और गीली न की हुई पट्टी बांधना। फिर कपड़े पहिन कर १५ मिनिट तक राई के गर्म पानी में पिण्डलियों तक खड़ा होना। फिर सूखे कपड़े से रगड़ना।

दूसरे सप्ताह प्रथम दिन मध्याह्न से पूर्व

गर्म और ठंडे पानी से क्रमशः पीठ को धोना। पांव गर्म पानी में रखना। ४ मिनिटतक छाती पर गर्म किया हुआ कपड़ा रखना।

तीसरे दिन मध्याह्न से पूर्व

प्रथम मध्याह्न से पूर्व कीगई प्रक्रिया से यदि जगह लाल न हुई हो तो फिर वैसे ही करना। यदि लाल हो गई हो तो दूसरे दिन की उसी समय की क्रिया करना।

चौथे दिन मध्याह्न से पूर्व

साधारण पानी से स्पञ्ज करना। कपड़े पहिन कर ८० अंश के जल से सीवन स्नान ५ मिनिट तक करना। तीसरे पहर ८० अंश के जल से ५ मिनिट

तक फिर सीवन स्नान। फिर ८ मिनिट तक राई के गर्म पानी से हाथ पांव धोना।

सब उत्तेजक पदार्थ, पिट्ठी के बने हुए और दुष्पच्य जो हों छोड़दो। क्योंकि आमाशय की श्लैष्मिक कला में शोथ हो जाने से श्वास प्रणाली का काम ठीक नहीं रहता है। गले और छाती को ठण्ड से बचाओ जिससे त्वचा में रक्तसंचार अच्छी प्रकार होता रहे।

हृत् क्षोभ

एक मनुष्य, ४५ वर्ष का, देखने में मज़बूत, विवाहित, कार्य के पीछे लगा था। कुछ वर्षों तक प्रकृति पैत्तिक रही। जब छोटा था तो तमाखू पीता था और उत्तेजक पदार्थों का सेवन भी करता था। वकालत के कार्य का दबाव और परिवार की चिन्तायें, उसके विवाह के कुछ ही वर्ष बाद उसके शरीर पर चढ़ कर बोलने लगीं, चाहे वह देखने में मज़बूत लगता था। अनेक

लायक २ डाक्टरों का इलाज कराया परन्तु कुछ फायदा न हुआ। होंठों पर का जीवन का चिह्न रूप रङ्ग उड़ चुका था। परन्तु निम्न लिखित चिकित्सा से फिर सब कुछ बन गया।

फ़रवरी का महीना है। तीक्ष्ण सर्दी पड़रही है काटती हुई पूर्वीय वायु बहरही है। ऐसे समय में प्रथमसप्ताह के प्रथमदिन प्रातःकाल उठकर प्रातः काल ही ६० अंश के साबुन के पानी से सीवन स्नान। फिर ७० अंश के पानी से स्पञ्ज से सीवन प्रदेश को रगड़ना। फिर गर्म गद्देले पर खड़ा होना सिर पर गीली टोपी पहिनना।

दूसरे दिन प्रातः काल

७० अंश के जल से स्पञ्ज करना, तथा गर्म गद्देले पर खड़े रहना।

तीसरे दिन प्रातः काल भी वैसे ही करना। प्रति दिन मध्याह्न से पूर्व हृदय से नीचे राई का प्लास्टर लगाओ। हृदय पर न लगे। प्लास्टर लगाने

से पूर्व गर्म पानी से १५ मिनिट तक हलका सेक दो। हृदय को छोड़ कर नीचे फ़लालैन रक्खो। कुर्सी पर बैठकर १०० अंश के राई के पानी में पांव रक्खो। पश्चात् ठंडे सूखे कपड़े से धीरे से पूंछ डालो। फिर हृदय पर स्पञ्ज रक्खो। गर्म पानी से स्पञ्ज को गीला करो। गर्म पानी से निचोड़ी हुई फ़लालैन से शरीर को लपेटो।

तीसरे पहर ८० अंश के जल से ८ मिनिट तक सीवन स्नान करो। १०० अंश के जल में पांव रक्खो। ऐसी कोई चीज़ मत खाओ जो पेट में बोझल मालूम दे। सिर पर गीली पट्टी देर तक लपेटो।

दूसरे सप्ताह प्रथम दिन प्रातः

एक कुर्सी पर बैठो, चारों ओर से कम्बल से कुर्सी को भी ढकलो, पांव १०० अंश के राई के जल में पड़े रहें। आंतों के नीचे के हिस्से पर गर्म की हुई गद्दी रक्खो। स्नान से पूर्व सारे शरीर को राई से खूब मलो। हृदय पर गर्म पानी से भरा स्पञ्ज का टुकड़ा रक्खो। यदि इस से आराम न

मालूम पड़े तो छोड़ दो। यह पट्टी रात दिन धारण किये रक्खो।

मध्यान्ह से पूर्व

गर्म राई के पानी में केवल ३ मिनिट तक पांव रक्खो। पांव के पञ्जे पर राई का प्लास्टर लगाओ, सूखे कपड़े से बांधदो कि प्लास्टर उतरे नहीं। फिर लेट जाओ और गर्म पानी में भीगा निचोड़ा तौलिया आंतों पर रक्खो। आमाशय के गढ़े से नीचे रहे, हृदय को न छुए। गीले कपड़े पर दोहरा कम्बल डाललो जिस पर पहिले तुम लेटे हुए थे। इसी कम्बल से टांगों को भी ढक रक्खो। कम्बल के नीचे शरीर पर गर्म पानी से भरा बर्तन रक्खो। बर्तन भारी हो तो थोड़ा भरो। २० मिनिट इस में लेटे रहो। सिर पर गीली टोपी ओढ़े रहो। ठण्डा पानी सिप करते रहो।

तीसरे पहर

सिर को हाथ और ठण्डे पानी से रगड़ो। उसी समय हाथों और पांवों को ५ मिनिट तक राई

के गर्म पानी में रक्खो। सोने के समय प्रातः काल की तरह क्रिया करो तथा पांवों के पञ्जों पर रात को राई का प्लास्टर लगाओ।

गृध्रसी (Sciatica)का एक भयानक रोगी

इस के कारण नितम्ब से एड़ियों तक दर्द और लंगड़ा पन उत्पन्न होगया। ऐसे रोगियों के लिये एक साधारण नियम है कि आक्रान्त स्थानों पर गीला गर्म २ कपड़ा रक्खें। जितना अधिक काल तक गर्मी का प्रयोग किया जायगा उतना ही जल्दी प्रकृति उस स्थान को जीवन शक्ति देगी। शाखाओं पर पट्टी बांधने की रीति अनुसार पट्टी बांधने से बहुत अधिक लाभ होता है। इसी के साथ राई के ६५ अंश के गर्म पानी में पिण्डलियों तक टांगों को आध घण्टे तक लगातार रखने से अत्यधिक फ़ायदा होता है, परन्तु चमड़े के नर्म पड़जाने की वजह से यह प्रयोग बार २ नहीं किया जासकता अतः नितम्ब पर और टांगों पर गीली पट्टी बांधी जाती है। जब कन्धे और भुजाओं में दर्द हो तब उन पर भी

पट्टी लपेटो, परन्तु सारे अङ्ग पर न लपेटो। जिन अवस्थाओं में आमवात के कारण कन्धे दृढ़ हो-गये हों उन अवस्थाओं में गीला गर्म२ कपड़ा अव-श्य ही लपेटना चाहिये। आराम होने के पश्चात् भी कुछ कालतक फ़लालैन की विशेष राशि या लेले की ऊन का बना हुआ पाजामा आदि अधोवस्त्र अवश्य धारण करने चाहियें। लगभग आध घण्टे तक गर्म पानी से सेक कर के पश्चात् बहुत सारी पट्टी बिना लपेटे ही अङ्ग को खुला छोड़ देने से कोई लाभ नहीं है। खुला छोड़ दिया जाय तो छोटी २ रक्तवाहिनियों में वर्तमान रक्त संचार में शीघ्र ही फिर स्थिरता आरम्भ होजाती है। गर्मी तब तक अवश्य रखनी चाहिये जब तक बीमारी फूट नहीं निकलती या आराम नहीं आजाता। परन्तु ऐसा कोई रोगी मुश्किल से ही मिलेगा जिसके रोग फूट न निकले। रोग के सहसा फूटने से आमवात के कारण नष्ट हुए पुराने तन्तु बाहिर निकल पड़ते हैं। टांगों और नितम्ब पर

गीली पट्टी निम्न लिखित विधि से लपेटनी चाहिये। एक मोमजामे का कपड़ा बिछाओ, उस पर एक कम्बल डालो, उसपर रुई की बनी हुई गीली चद्दर। नितम्ब से आरम्भ करके नीचे लपेटो। पहिले चादर को एक टांग पर रक्खो और इसे टांग पर लपेटो चादर का दूसरा सिरा दूसरी टांग के चारों ओर लपेटो। फिर कम्बल और उसपर मोमजामा लपेटो। ये सब खूब कस कर मज़बूती से लपेटो। यदि अङ्गों को ठण्ड प्रतीत न हो तो रोगी को २, ३ घंटे इसी प्रकार पड़े रहने दो। अङ्गों को गर्मी बेशक न लगे परन्तु ठण्ड न लगना इतना ही पर्याप्त है। इसके पश्चात् ७० अंश के जल से उन को स्नान करो। फिर पट्टियां लपेटो। पट्टी लपेटने से अङ्ग कमज़ोर नहीं पड़ते हैं, चाहे कितनी वार पट्टी बांधी जावे। जब तक रोग सहसा प्रकट न हो तब तक ऐसा करना अच्छा ही है। जब कभी अङ्ग गर्म और क्षुब्ध हों तब ऐसा ही करना चाहिये जब तक कि बिलकुल आराम न हो जावे।

हृदय की धड़कन

यह रोग, चाहे रक्त संचार के अनियमित होने से हो और चाहे हृदय की रचना के बिगड़ जाने से हो, आमाशय के गढ़े में वर्तमान घातनाडिपुञ्ज के क्षोभ से होता है। अतएव इसकी चिकित्सा निम्न लिखित प्रकार से की जाती है। उदर पर गीला तौलिया बांधो। आमाशय के गढ़े पर गर्म पानी से सेक करो। ठंडे पानी से सीवन और पांव को स्नान कराओ। यह चिकित्सा प्रायः प्रयोग में लाई जाती है। हृदय जैसे अङ्ग की चिकित्सा के लिये छोटी से छोटी क्रिया करते हुए भी बहुत सावधान रहना चाहिये। अतः गीला तौलिया उसी समय लपेटना चाहिये जिस समय श्लैष्मिक कला और त्वचा ज्वर से अधिक आक्रान्त हों। यदि रोगी बहुत दिनों तक लम्बा खिंच जावे तो ऐसा न किया जावे। कभी कभी बीच में कुछ दिन का अवकाश दे देना चाहिये। ठण्डे खुले पानी में तो स्नान न कराया जाय, परन्तु जो जल ६० अंश

से अधिक ठंडा न हो उससे स्नान कराया जाय। जिस गर्म पानी से सेक किया जाय वह अत्यधिक गर्म न हो उपर्युक्त कुछ भी करते हुए पसलियों को स्पर्श न हो। स्पर्श होने से हृत्स्पन्द को उत्तेजना मिलती है। दबाने का काम भी बदलते रहना चाहिये। दबाने का काम लगातार जारी रखने से हृदय क्षुब्ध हो जाता है। सीवन स्नान ९० अंश के जल से लगातार आधघंटे तक लेने चाहियें। इससे हृदय की धड़कन कम पड़जाती है। पांवों को स्नान कराने से आशय में से द्रव्य के निकलने पर प्रभाव उत्पन्न होता है, और प्रायः आन्तर अङ्गों को आराम मिलता है। सारांश यह है कि चिकित्सा शामक की जाती है।

मलबन्ध

आजकल यह कहना शायद असत्य नहीं है कि पाख़ाना फिरने के लिये लोग जीते हैं, जीने के लिये पाख़ाना नहीं फिरते हैं। आंतों को खाली करने की समस्या के आगे तर्कना शक्ति की तमाम

लम्बी २ दौड़े और कल्पना शक्ति की ऊंची २ उड़ानें सब पीछे पिछड़ जाती हैं।

यह बड़े ही शोक बात है कि आंतों के विषय में इतनी चिन्ता। इस दोष में उन चिकित्सकों का भी बड़ा भारी भाग है जो न तो कर्म कुशल ही हैं और नाहि कर्म से अभिज्ञ हैं। ये लोग पनसारी और अत्तार हैं जो चिकित्सा करते फिरते हैं, रोगी की शारीरिक अवस्था को तो पहिचानते ही नहीं, बल्कि अनेक स्थानों में मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठते हैं। अनेक परिवारों के साधारण नौकर जो केवल बूढ़े होने के कारण बड़े अनुभवी समझे जाते हैं इस दुष्ट आदत को छुड़ाने का बहुत यत्न करते हैं और दस्त लगा २ कर रोगी को मार डालते हैं। विरेचन द्रव्यों का अति सेवन आयु को क्षीण करता है। विरेचन द्रव्यों का सेवन करते हुए रोगी बचा भी तो उसका मरना जीना बराबर सा रहता है। उसको अपना जीवन बोझ मालूम पड़ता है। इस पुस्तक को पढ़ने वाले जो लोग आयुर्वेद शास्त्र से

अनभिज्ञ हैं और चिकित्सा का कार्य नहीं करते हैं, उनको संक्षेप से यह समझाने का प्रयत्न करता हूं कि आंतें किस प्रकार कार्य करती हैं, जिससे उनको पता लगेगा कि उस कार्य में हस्ताक्षेप करना कितना निरुपयोगी और हानि कारक है, और साथ ही आंतों का स्वाभाविक कार्य एक ऐसा कार्य है जो शरीर के लिये हानि कारक नहीं है।

आमाशय और फेफड़ों के कार्यों के द्वारा जब भोजन का रक्त बन चुकता है, तब वह रक्त शरीर के सब धातुओं की सूक्ष्मतम रक्तवाहिनियों में गुज-रजाती है। इन रक्तवाहिनियों में पोषण और निस्सरण के बड़े कार्य होने लगते हैं। पोषण कार्य से अङ्गों में स्थूल पदार्थ धरा जाता है और निस्स-रण कार्य से द्रव और वायवीय भाग रक्खे जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण ठोस पदार्थ और बहुत सारे द्रव पदार्थ भी रक्त में थोड़ी ही देर के लिये ठहर ते हैं—उनका स्थिति काल बहुत ही थोड़ा है। ठोस पदार्थ टूटजाते हैं और शिराओं की चूसने की

क्रिया से फिर रक्त के प्रवाह में चले जाते हैं। यही हाल वायवीय और द्रव पदार्थों के साथ भी होता है। मस्तिष्क, अस्थि, मान्स, बन्धनी आदि का प्रत्येक भाग फिर २ द्रवी भूत होता रहता है, और श्लेष्मा, लाला, पित्त, halitus आदि का लगभग प्रत्येक बिन्दु बार २ चूसा जाता है और बार २ चक्कर लगाता रहता है। सम्पूर्ण सञ्चित हुए ठोस पदार्थ का प्रत्येक रासायनिक तत्व और इसी प्रकार सम्पूर्ण स्रावों का प्रत्येक रासायनिक तत्व रक्त में विद्यमान रहता है।

इन स्रावों में से कुछ स्रावों का यह काम है कि शरीर से टूटे हुए और द्रवी भूत हुए ठोस पदार्थ के रासायनिक समासों को उठा ले जाते हैं। ये नत्रजन के समास कहलाते हैं, क्योंकि इन में प्रधान तत्व नाईट्रोजन होता है। मूत्र के अन्दर मूत्र मार्ग से ये शरीर के बाहिर निकलते रहते हैं, और शौच के अन्दर भी मलाशय में इनका स्राव होता रहता है।

इसलिये जो पदार्थ शरीर के पोषण के लिये उपयुक्त नहीं है और यदि शरीर में रक्त के अन्दर रहे तो हानि पहुँचावे उस पदार्थ को मनुष्य की प्रकृति लगातार शौच के रूप में बाहर निकालती रहती है।

इस में कुछ भी सन्देह नहीं है, यह इतना ठीक है कि जिस समय मलाशय रक्त में से मल को खैंचने में असमर्थ हो जाता है, उस समय उस मल को निकालने का अत्यधिक कार्य त्वचा पर आ पड़ता है। स्मैड्ले ने ऐसे अनेक रोगी देखे हैं जिन की त्वचा में से मल निकलने के कारण उनकी त्वचा से शौच की तीव्र बदबू उठती रहती थी। कोई भी आदमी अपने साधारण स्वास्थ्य की अवस्था में यह बात देख सकता है कि जब पूर्व की अपेक्षा शौच की मात्रा कम आती है तब उस के मूत्र की राशि बढ़ जाती है, और इस के विपरीत जब शौच की मात्रा बढ़जाती है तो मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। इस प्रकार जब एक मार्ग से रक्त

की शुद्धि बन्द हो जाती है तब प्रकृति दूसरे मार्ग से अधिक कार्य लेने लगती है।

इस प्रकार मालूम होता है कि मलाशय की श्लैष्मिक कला से होने वाले स्राव का नाम उसी प्रकार मल या शौच है, जिसप्रकार आमाशय की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव आमाशयिक रस या पाचक रस है; अश्रु ग्रन्थियों की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव अश्रु है, और बाह्य कर्ण की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव कर्ण किट्ट है, इत्यादि। संक्षेप में, जिस प्रकार शरीर के अन्य स्राव हैं उसी प्रकार मल भी स्राव है। परन्तु चूंकि मल शरीर से बाहिर निकलने के लिये रक्त में से स्रुत होता है अतः इस को स्राव या अन्तः स्राव न कहकर बहिः स्राव कहा करते हैं। लोग नामों के पीछे मरते हैं प्रक्रिया की ओर ध्यान नहीं देते। चूंकि शौच बहिः स्राव के नाम से कहा जाता है अतः लोग अपने दिमाग़ में यह बात घुसेड़ लेते हैं कि वह हमेशा वहां होता है और उसे अवश्य

निकाल फेंकना चाहिये। इस बात का कुछ ख़याल नहीं करते कि निकाल फेंकने के उपायों के अवलम्बन का क्या प्रभाव पड़ेगा? ज़रा नहीं सोचते कि 'शौच आता कहां से है?' यदि इस प्रश्न का उचित उत्तर सोच लिया जाता तो संसार में शारीरिक और मानसिक कष्ट पाने वाले अनेक मनुष्यों के कष्ट दूर हो जाते और विरेचन के अभ्यासियों (colocynth eaters) की अनेक जानें बच जातीं।

'शौच आता कहां से है?' इस प्रश्न का उत्तर सीधा है कि जहां से अन्य स्राव आते हैं, अर्थात् रक्त में से। शौच उस रक्त में से आता है जो मलाशय को आवृत करने वाली श्लैष्मिक कला में वर्तमान रक्त वाहिनियों में घूमता है। कभी २ इस शौच में जीर्ण न हुए या जीर्ण न हो सकने वाले भोजन का भाग रहता है। जीर्ण न हो सकने वाले पदार्थों में उदाहरण के तौर पर फलों के छिलके, चणों की चुन्नी और गेहूं भूसा आदि पदार्थ हैं, जिन पर

पाचक रस का कोई प्रभाव हुआ प्रतीत नहीं होता। शौच में ये पदार्थ गौण हैं शौच के मुख्य भाग नहीं हैं। चूंकि शौच रक्त में से बाहिर आता है अतः उस को राशि और गुण धर्म रक्त की राशि और गुण धर्म पर अवलम्बित रहते हैं जब कि वह रक्त मलाशय के आवरण में विभक्त हुआ २ है।

परन्तु चूंकि यह रक्त उन रक्त वाहिनियों में चक्कर लगाता है जिन्हें वातग्रान्थियों (ganglions) की वात नाड़ियों से शक्ति प्राप्त होती है अतः शौच सम्बन्धी स्राव भी अन्ततः उसी वातिक पदार्थ पर ही अवलम्बित रहता है ऐसा जानना चाहिये। शरीर के अन्य स्रावों के समान वात ग्रन्थियों के वातिक पदार्थ पर कारणों का प्रथम प्रभाव पड़ता है। इस प्रभावके कारण मलाशय की रक्त वाहिनियों की संकोचक क्रिया में फ़र्क पड़ जाता है। फ़र्क पड़ जाने से उस स्थान में रक्त की राशि कम हो जाती है। रक्त की राशि कम हो जाने से अन्त को रक्त में से मल का स्राव भी कम होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मलाशय का स्रावण कार्य इस में वर्तमान रक्तवाहिनियों की रक्त की मात्रा पर और रक्तवाहिनियों पर लगने वाली वातिक शक्ति के प्रकार पर निर्भर है।

अब कल्पना करो कि एक मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त की बहुत बड़ी राशि मौजूद है, इतनी अधिक कि उस शरीर के सब भागों में स्राव के प्रयोजन भली भांति सिद्ध हो सकते हैं, और मलों का कार्य भी भली भांति चल सकता है। ऐसे मनुष्यों को २४ या २६ घण्टों में एक वार शौच आवेगा और वह भी ५, ६ आउन्स या दो तीन छटांक के बीच में तोल का होगा, ऐसा तब होगा जब वह पर्याप्त व्यायाम करे, बहुत देर तक न सोवे भोजन में क्षोभक पदार्थ न खावे, मानसिक चिन्ताओं और अत्यधिक परिश्रम से बचा रहे, संक्षेप में अगर वह वात ग्रन्थियों की वात नाड़ियों के प्रवाह को नियमित रक्खे। जब वह शारीरिक

परिश्रम में अपनी इच्छा को नहीं लगाता है, जब उस का दिमाग़ बहुत देर तक सोता रहता है, अथवा जब वह दिमाग़ से अधिक काम लेता है तब इस में रक्त की मात्रा अधिक बढ़ जाने से रक्त सञ्चित हो जाता है, और वातग्रन्थिसम्बन्धि वात संस्थान में रक्त का विभाग विषम हो जाता है, दिमाग़ भी इस संस्थान का एक बहुत आवश्यक भाग है। इस सब का परिणाम यह है कि दिमाग़ और सुषुम्नाकाण्ड में रक्त बढ़ जाता है और मलाशय के श्लैष्मिक तथा वातिक तन्तुओं में रक्त कम हो जाता है अतएव मलाशय का स्रावण बल विषम हो जाता है और रोगी कहता है कि कब्ज़ हो गई है।

यदि स्वच्छ रक्त से पूर्ण मनुष्य अनाप शनाप वस्तुएं खाने पीने लगे तो उस के पेट की श्लैष्मिक कला और वात नाड़ियों में रक्त जमा हो जाता है जैसा कि पिछले एक रोगी के दिमाग़ में रक्त सञ्चय हो गया था।

कभी २ दिमाग़ और आमाशय दोनों स्थानों में ही रक्त का जमाव हो जाया करता है। इस सब का परिणाम यह होता है कि शरीर में रक्त का प्रसार विषम पड़ जाता है, और मलाशय को कुछ नुकसान पहुँचता है। रोगी कहता है कि कब्ज़ हो गई है।

दिमाग़ में या आमाशय में उत्पन्न हुए पूर्वोक्त कारण अजीर्ण के साधारण कारण हैं। जिन मनुष्यों में रक्त की मात्रा अच्छी है उन में भी इस रोग का परिणाम, इन कारणों के द्वारा, अन्त को मल बन्ध अवश्य हो ही जाता है।

परन्तु जिन व्यक्तियों में रक्त की मात्रा पर्याप्त नहीं है, उन में मलबन्ध का कारण रक्त की पर्याप्त मात्रा का न होना है, क्योंकि पर्याप्त मात्रा न होने से मल का स्राव भी, उस बहुमूल्य द्रवधातु से, पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। इतना थोड़ा रक्त कई अवस्थाओं में शरीर में होता है कि जीवन के दो बड़े कारखानों दिमाग़ और आमाशय

में ही खपजाता है । इन से पोषण और ज्ञान ग्रहण का कार्य चल रहा है । इस कारण शरीर की बाह्यत्वचा को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता और पसीना अच्छी प्रकार नहीं आता, इसी प्रकार मलाशय की अन्तस्त्वक् को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता और पाखाना अच्छी प्रकार नहीं आता । बहुत से पतले दुबले, पीले, शुष्क चमड़ी वाले ऐसे व्यक्ति हैं जिन को मलबन्ध रहता है । ऐसे मनुष्यों की आंतों को दो तीन दिन में एक बार खोल देना काफ़ी है । इस से अधिक उस का रक्त सहायता नहीं कर सकता, यदि उस के रक्त से अधिक काम लिया जाय या मल खैंचा जाय तो उस रोगी को हानि होगी । उस के मल की रक्षा करना ही उचित होगा । यदि शरीर में रक्त थोड़ा हो और साथ ही रोगी के चिन्ता शोक आदि के कारण, दिमाग़ में रक्त सञ्चय हो जाने से दिमाग़ भारी हो जावे अथवा अनुचित भोजन के कारण, आमाशय में रक्त अधिक जमा हो जावे तथा इन रक्त सञ्चयों के कारण मलाशय में रक्त की कमी पड़ जावे तो अति कष्ट

प्रद् मल बन्ध का रोग प्रकट होता है। इस विचार से निम्न लिखित स्थापनायें स्थापित होती हैं

१. शौच रक्त में से बाहिर स्रुत होता है।

यह वह रक्त होता है जो मलाशय की श्लैष्मिक कला में चक्कर लगाता है और जिस का सञ्चार उन पोषक वात नाड़ियों के अधिकार में रहता है जो मलाशय तक कार्य करती हैं।

२ दिमाग़ या आमाशय में रक्त सञ्चय हो जाने से रक्त खिंच जाता है पोषक नाड़ियां शिथिल पड़ जाती हैं और मलाशय में रक्त की कमी से शौच नहीं बनता है।

३. इस लिये मलबन्ध का एक मात्र आधार शरीर में रक्त का विषम विभाग है।

४. शरीर में रक्त के पर्याप्त होते हुए भी अंगों में रक्त के विषम विभाग का कारण मस्तिष्क या आमाशयका क्षोभ है। शरीर में रक्त की कमी से भी रक्त का विषम विभाग हो जाता है, क्योंकि ऐसे मौके

पर प्रकृति रक्त को मस्तिष्क और आमाशय में अधिक पहुंचा देती है जो जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यक हैं।

अब आपके सामने मलबन्ध के ऐसे रोगी का उदाहरण रखता हूं जिसके शरीर में रक्त की बहुत अच्छी मात्रा है। इस उदाहरण में आप देखें कि औषध चिकित्सा कहां तक सफल होती है। विरेचक द्रव्य का असर सबसे पहिले उन वात नाड़ियों पर होता है जो वातिक केन्द्रों से निकल कर सम्पूर्ण भोजन प्रणाली पर अधिकार रखती हैं। विरेचक द्रव्य वात नाड़ियों को क्षुब्ध करता है और श्लैष्मिक कला की रक्तवाहिनियों में रक्त की एक बड़ी राशि को जमा कर देता है। प्रथम उत्तेजना के पश्चात् जिन रक्त वाहिनियों ने अपनी कार्य करने की सामर्थ्य खो दी है या जो ढीली पड़ गई हैं। उनमें रक्त सञ्चय होने से सम्पूर्ण प्रणाली में स्राव की मात्रा बढ़ जाती है। इन्हीं स्रावों में शौच भी एक स्राव है। भोजन

प्रणाली की उत्तेजना के साथ मलाशय भी उत्तेजित होता है, हां इसमें सन्देह हो सकता है कि वास्तविक शौच में साधारण श्लेष्मा का भाग अधिक न हो; क्यों कि जिन अङ्गों को ज़ोर दिया जाता है वे साधारण स्राव नहीं निकालते हैं। तो भी आंतों के साफ़ होने के पश्चात् मनुष्य अपने को स्वस्थ अनुभव करता है। परन्तु सब समाप्त हो जाने के पश्चात् वात नाड़ियों और रक्त नाड़ियों की क्या दशा होती है? दोनों तीव्र उत्तेजित होने के पश्चात् अत्यधिक दुर्बल हो जाती हैं। मलाशय से आमाशय और पचन के अन्य ऊपर के अंगों में रक्त खिंच जाने के कारण हुआ २ अस्वाभाविक रक्त सञ्चय मलबन्ध का आधार पहिले बना ही होता है, जिस पर विरेचक द्रव्य मलाशय में शौच के स्राव को अधिक बढ़ाने के लिए, अधिक रक्त को खेंचने के समय आमाशय में और भी अधिक रक्त के सञ्चय का कारण बन जाता है। इस प्रकार विरेचक द्रव्य ऊपर के अङ्गों में अत्यधिक रक्त सञ्चय

करके आंतों में मलबन्ध को अत्यधिक बढ़ा देता है। इस प्रकार विरेचन हो चुकने के पश्चात् आंतों की सफाई के लिये पहिले से अधिक तीव्र विरेचक द्रव्य की आवश्यकता पड़ा करती है। इस प्रकार अधिक २ तीव्र विरेचक द्रव्य का प्रयोग करने से मलबन्ध का कारण और अधिक २ बढ़ता जाता है। ऐसे उपायों से मल-बन्ध का इलाज करना ऐसा ही है जैसा तेल डाल कर आग बुझाना। इस प्रकार न कभी इलाज हुआ और न कभी होगा।

मलबन्ध के विषय में आमाशय को लेकर जो कुछ कहा गया है वह सब दिमाग़ को लेकर कहा जा सकता है, क्योंकि दिमाग़ आमा-शय की उन्हीं हालतों को उत्पन्न कर देता है जो मलबन्ध के सम्बन्ध में पहिले कही गई हैं। जब आमाशय और दिमाग़ दोनों ही रक्त से पूर्ण हो जाते हैं तब तो आंतें बिलकुल बेक़ाबू होजाती हैं।

चिन्ता से मलबन्ध ही नहीं हुआ करता, कुछ चिह्न अजीर्ण के भी वहां सर्वदा उपस्थित होते हैं।

रक्त से परिपूर्ण मनुष्यों की ऊपर बात कही, परन्तु जिन मनुष्यों के शरीरों में रक्त की कमी है, जो पाण्डु हैं, उनको मलबन्ध दूर करने के लिये विरेचक द्रव्य देना इलाज करने में अत्यधिक व्यर्थ पड़ता है, और उनके शरीर के साधारण स्वास्थ्य का घातक होता है। क्योंकि ध्यान देने की बात है कि जब प्रकृति के पास इतना थोड़ा रक्त है जिसे वह शरीर के अत्यधिक जीवनोपयोगी अङ्गों के लिये ही ख़र्च कर सकती है तब उसे आंतों की ओर बलात्कार खींचना जीवन का नाश करना नहीं तो और क्या है।

जो चिकित्सक मलबन्ध का इलाज करता हुआ अपनी मानसिक दृष्टि में केवल मात्र आंतों का ही ध्यान रखता है वह इलाज में बिलकुल सफल नहीं हो सकता है। चिकित्सक समझते हैं कि ज़बरदस्ति किसी न किसी तरह आंतों से

मल को बाहर फेंका जाय। वह कभी नहीं सोचते कि अन्य अङ्गों का क्या हाल होगा। न तो उन अङ्गों की भविष्यत् अवस्था का उन्हें विचार होता है और नाहीं आंतों की होने वाली हालत पर उनका ख्याल जाता है। परिणाम यह होता है कि मलाशय दुर्बल पड़ जाता है और अन्य अङ्ग बहुत अधिक निकम्मे हो जाते हैं। औषध द्रव्यों द्वारा इलाज किये गये रोगियों का यह इतिहास है। जैसे २ पचन के ऊपर के अङ्गों में विकार की वृद्धि के साथ मलबन्ध की शिकायत बढ़ जाती है वैसे २ ये अपनी नष्ट सहानुभूति में अन्य अङ्गों को भी खराब कर डालते हैं। इतना खराब कर डालते हैं कि रोगी रुग्ण और पीड़ा दायक अनुभवों का एकमात्र बन्डल बन जाता है। वात ग्रन्थियों से निकली वात नाडियां शरीर के अङ्ग २ में क्षोभ फैला देती हैं, जो मस्तिष्क में या आमाशय में या दोनों में प्रकट होता है।

विरेचक द्रव्यों का त्याग ही सर्वथा श्रेष्ठ है।

किसी शराबी को कहा करते हैं कि जो हो गया सो होगया इसे तो भुगतले, आगे को ध्यान रख, तेरा भला ही होगा। इसी प्रकार मलबन्ध के रोगी को कहना चाहिये कि आंतों में से मल को बाहिर निकालने की कल्पित आवश्यकता की परवाह मत कर, इसके साथ युद्ध कर। रोगी को चाहिये कि मलाशय में वर्तमान अवरुद्ध मल के परिज्ञान की उपेक्षा करे, क्योंकि बिना उपेक्षा किये उसकी आंतों को स्वयं नियम पूर्वक काम करने की आदत नहीं पड़ेगी। विरेचक द्रव्य की प्रत्येक क्रमिक मात्रा के प्रभाव से अङ्गों की रक्त बनाने की शक्ति घटती चली जाती है और इसप्रकार चिकित्सा की आशा का सुन्दर दृश्य दूर २ होता जाता है। रोगी को समझना चाहिये कि आंतें काम नहीं करतीं तो कोई हानि नहीं क्योंकि आंतों में कुछ है तो है ही नहीं जिसे वे निकालें। यदि कहो हरारत हो जावेगी, तो इसे कम करने के लिये जल चिकित्सा के साधन बहुत ही उपयोगी

हैं, जब कि शरीर में घूमते हुए रक्त की मात्रा बहुत अधिक हो उस समय भी उपयोगी हैं। यदि रोगी नीरोग होना चाहे तो उसे अवश्य ही विरेचक द्रव्यों से परहेज़ रखना चाहिये। जल्दी से जल्दी इन द्रव्यों का त्याग उसके अपने और चिकित्सक दोनों के लिये बहुत लाभ दायक रहेगा इसलिये रक्त की कमी के कारण उत्पन्न मलबन्ध के इलाज में पहिला कदम विरेचक द्रव्यों का पूर्ण रूप से त्याग है। दूसरे प्रकार के मलबन्ध में मनो कामना को शान्त करने के लिये कभी कभी विरेचक द्रव्य का ले लेना भी बुद्धिमता को प्रकट नहीं करता। इस प्रकार से मलबन्ध को दूर करना चिकित्सा के उद्देश्य को ही सर्वथा मार डालता है। आप १५ दिन तक जल चिकित्सा का इलाज आरम्भ रखिये, फिर एक दिन विरेचन लेने से १५ दिन की सब कमाई जाती रहेगी। फिर आपको नये सिरे से चिकित्सा करनी होगी। कई बार यह भूल की जाती हुई देखी गई है।

शौच की राशि के जमा होने का यह गुण है कि वह मलाशय और उदर की मांस पेशियों को क्षुब्ध करती है कि वे संकुचित हों और शौच को बाहिर फेंकदें, इसीप्रकार मूत्र की विशेष राशि मूत्राशय में अवश्य इकट्ठा होनी चाहिये इससे पहिले कि मूत्राशय संकुचित हो और मूत्र को बाहिर फेंकदे परन्तु भला शौच की बड़ी राशि प्रति दिन दूसरे दिन वा तीसरे दिन कहां से आजावे, जब कि शरीर में बहुत थोड़ा रक्त हो। शरीर की ऐसी ऐसी नाजुक हालतों में मलबन्ध के रोगी को तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिये जब तक फेंक सकने के लिये आतों में पर्याप्त मल इकट्ठा न हो जावे।

व्यापी रोग और व्यापी निर्बलता

घात संस्थान से साधारणतया मस्तिष्क, मेरु दण्ड, इनसे निकलने वाली घात नाडियां लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक और भी घात संस्थान है जो न तो इच्छा के अधीन है और नाहीं पीड़ा के ज्ञान को ग्रहण करता है। रोग की व्याख्या

में इसका विचार प्रायः नहीं किया जाता, जबकि यह रोग में मुख्य वा एक मात्र भाग लेता है। इस वात संस्थान को वातग्रन्थिक संस्थान कहते हैं, क्योंकि वात नाड़ियों के मार्ग में वर्तमान वात-ग्रन्थियों से इसका सम्बन्ध है। इस को अङ्ग सम्बन्धी (Organic) वातसंस्थान भी कहते हैं, क्योंकि अङ्गों की नियमितता को बनाये रखता है। इसे पोषक वात संस्थान (Nutritive) भी कहते हैं, क्योंकि शरीर का पोषण करने वाले अङ्गों पर शासन करता है। इसे अन्तरङ्ग वात संस्थान (Visceral) इसलिये कहते हैं क्योंकि इसका केन्द्र अन्तरङ्गों में ही विद्यमान है और अन्तरङ्गों (छाती और उदर के अंगों) में ही यह फैला हुआ है। इन नामों में से अधिकतर प्रयोग में आने वाले नाम पोषक वात संस्थान (Nutritive) और अङ्ग सम्बन्धी वात संस्थान (organic) हैं, क्योंकि शरीर में जहां अंग हैं या शरीर में जहां कहीं पोषण की क्रिया हो रही है वहां पोषण

सम्बन्धी वातनाडियां (Nerves of nutrition) पाई जाती हैं। जहां पोषण है वहां रक्तवाहिनियां हैं और जहां रक्त वाहिनियां हैं वहां इनके कार्य को नियम में रखने के लिये इन के साथ पोषक वात नाडियां हैं। रक्त वाहिनियां और पोषक वात नाडियां इतना सूक्ष्म विस्तृत और भरा हुआ जाल शरीर में बनाये हुए हैं कि बारीक से बारीक सूई की नोक यदि शरीर के किसी तन्तु (Tissue) में प्रवेश की जाय तो बिना एक या अनेक नाडियों को छेड़े वह अन्दर नहीं घुसेगी। शरीर के रक्त का एक बहुत बड़ा हिस्सा दिमाग़ में रहता है और पोषक नाडियां भी वहां बहुत बड़ी मात्रा में हैं।

अङ्गों को पोषक रक्त वाहिनियों और पोषक वात नाड़ियों में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। शरीर के अन्दर और बाहिर साधनों से उत्पन्न प्रभावों को ग्रहण करने और उनपर क्रिया करने के लिए रक्त वाहिनियों को शक्ति वात नाड़ियों से ही मिलती है

—इसी शक्ति का नाम क्षोभ्यता (Irritability) है। क्षोभ्यता और ज्ञान ग्राहकता (Sensibility) में बहुत भेद है। शरीर में फैली हुई रक्त वाहिनियों और पोषक वातनाड़ियों में irritability होती है। छाती और पेट में इसके केन्द्रिक अङ्ग हैं। यह ज्ञान और इच्छा को उत्पन्न नहीं करती है। सदा कार्य में रहती है। दिमाग़ और मेरु दण्ड से निकलने वाली वात नाड़ियों में Sensibilitiy विद्यमान है। इसके केन्द्रीय अङ्ग दिमाग़ और मेरु दण्ड में रहते हैं। ज्ञान और इच्छा को उत्पन्न करती है। निद्रा में यह काम नहीं करती है। परन्तु irritability और irritatoin से भी sensibility और sensation उत्पन्न होते हैं। जैसे कि दिमाग़ का द्रव्य रक्त वाहिनियों में से इकट्ठा होता है। Irritability की राशि और रूप के द्वारा रक्त वाहिनियां, अपने जमा किये हुए पदार्थ के प्रकार और गुण के अनुसार नियमित होती हैं। इसलिये यदि Irritability उत्तेजक

पदार्थों के देने से बहुत तीव्रता से हो तो रक्त वाहिनियों का कार्य, और दूसरे शब्दों में उनका क्षोभ भी तीव्र हो जाता है। तब वे मस्तिष्क में साधारण मात्रा से अधिक पदार्थ का सञ्चय करती हैं। इस पदार्थ में ज्ञान ग्राहकता (Sensibility) का गुण होता है और इस प्रकार यह गुण बढ़ जाता है। चिरस्थाई रोग के सिद्धान्त को भविष्यत् में प्रयोग करने के लिये मन में यह धारण करना आवश्यक है कि ज्ञान के पहिले क्षोभ हुआ करता है और क्षोभ से ज्ञान हुआ करता है (Irritation precedes sensation, sensation is built upon irritation) ।

इस लिये रोग के कारणस्वरूप अति सर्दी, अति गर्मी या रोगी पदार्थ का सब से पहिले प्रभाव वात संस्थानिक ग्रन्थियों (ganglionic system) पर पड़ता है। यह वात संस्थान वही है जो पोषक रक्त वाहिनियों को अधिकार में रखता है और जिस के केन्द्रीय भाग छाती और पेटके अन्तरङ्गों में रहते हैं।

भिन्न २ प्रकार के अनेक परीक्षणों से यह निश्चित हुआ है कि सब प्रकार के साधनों के प्रभाव से सूक्ष्म रक्तवाहिनियों के छिद्र संकुचित होजाते हैं। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि सब के सब साधन उन्हें उत्तेजना देते हैं। उत्तेजना से उनमें क्रिया उत्पन्न होती है। वह क्रिया संकोच (Contiaction) रूप में होती है। परन्तु चूंकि सम्पूर्ण क्रिया यत्नरूपा है, अतः इस यत्न के परिणाम जीवित शरीर में शरीर और मन की दुर्बलता, थकावट और खाली पन मालूम पड़ते हैं। इसके पश्चात् छोटी रक्त वाहिनियों में प्रसार उत्पन्न होता है और संकुचित हुए छिद्र खुल जाते हैं। पश्चात् जितना ही उनमें संकोच हुआ होता है उतना ही ढीलापन उनमें हो जाता है। निःसन्देह रक्त को राशि रक्त वाहिनियों की इन दो विरुद्ध हालतों से सम्बद्ध है। जब किसी भारी उत्तेजक पदार्थ के प्रयोग से रक्त वाहिनियां संकुचित होती हैं तब उन में

से रक्त बाहिर निकल जाता है। जब वे फैलती हैं तब रक्त उन के चौड़े छिद्र में भर जाता है। रक्त का यह निकलना और भरना ठीक समानुपात में होता है।

परन्तु अब प्रश्न यह है कि रक्तवाहिनियों में इन अवस्थाओं के होते हुए रक्त में क्या परिवर्तन आते हैं ?

सब से प्रथम रुग्ण स्थान की रक्तवाहिनियों की संकोचन शक्ति के मन्द पड़जाने से रक्त की गति मन्द पड़ जाती है। स्वस्थ भागों से रक्त आकर रुग्ण भागों में कुछ न कुछ जमा हो ही जाता है। रक्त सञ्चय के कारण वह स्थान सूज जाता है, लाल हो जाता है, उस स्थान का ताप मान बढ़ जाता है और सञ्चित रक्त के द्वारा पास की वात नाड़ियों पर दबाव पड़ने से क्षोभ होने के कारण दर्द पैदा हो जाती है।

इस के पश्चात् सञ्चित रक्त में गति के मन्द पड़ जाने से रासायनिक परिवर्तन आरम्भ होते हैं। ये रासायनिक परिवर्तन ताप की मात्रा के अधिक घट जाने से कहे जाते हैं। अब यदि शोथ का इलाज न किया जाय तो रक्त में से पस निकलने लगती है, और सूजा हुआ स्थान फोड़े की शकल में मालूम होने लगता है। रुग्ण स्थान के भेद की वजह से रासायनिक परिवर्तन भी भिन्न २ प्रकार के हुआ करते हैं। आमाशय में अम्लीय परिवर्तन होते हैं, निर्जीव भारी श्लेष्मा और पाचक रस के परिवर्तन नहीं होते। यकृत में तेज़ कड़वे, गर्म और काले परिवर्तन होते हैं, पित्त के हलके कड़वे और पीले परिवर्तन नहीं होते। वृक्क से क्षारीय स्राव के स्थान में अम्लीय स्राव निकलने लगते हैं। इसी प्रकार अन्य अङ्गों में भी भिन्न २ प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सब से प्रसिद्ध परिवर्तन आमाशय की अन्तः श्लैष्मिक कला की विकृति के कारण जिह्वा की अवस्था में

होता है। यह परिवर्तन रोग का सूचक है। स्रावों के भेद अनन्त हैं। प्रत्येक भेद, जिह्वा को ढकने वाली झिल्ली में सञ्चित रक्त की विशेष मात्रा के अनुसार होता है। तो फिर निर्णय करो कि शरीर की उस अकेली धातु (Tissue) में वर्तमान विकृत क्रिया की कितनी विभिन्न बारीकियां होती हैं।

रोग जब तीव्र अवस्था में हो तब अङ्ग की ऐसी अवस्था होती है। संक्षेप में प्रक्रिया निम्न-प्रकार से कही जा सकती है—

१. वात नाड़ियों से सम्बद्ध, अङ्ग की रक्त वाहिनियों पर तीव्र उत्तेजक पदार्थ का प्रयोग।
२. रक्त वाहिनियों का अत्यन्त संकोच और उनमें से रक्त का बाहिर निकलना।
३. उन्हीं रक्तवाहिनियों का थकना और ढीला पड़ना, साथ ही रक्त का उन में विशेष प्रवेश और स्थिरता।

४. अस्वस्थता का अनुभव, स्राव और अङ्ग का पोषण, थकी और ढीली रक्त वाहिनियों में रक्त की स्थिरता, कुछ समय के लिये पदार्थों के रासायनिक परिवर्तन में विकार।

जो कोई भी भाग रोग से तीव्र आक्रान्त हो उस में ये प्रक्रियाएं होती ही हैं। शरीर की त्वचा पर उत्पन्न हुई छोटी सी फुन्सी से लेकर फेफड़े या दिमाग़ की बड़ी भारी सूजन तक सर्वत्र ये प्रक्रिया होती हैं। उत्तेजक कारण कोई भी हो, सब में एक ही क्रम से परिवर्तन होते हैं। चाहे धूली का एक कण त्वचा के एक छेद में क्षोभ पैदा करे और चाहे ठण्डी हवा का झोंका फेफड़ों की श्लैष्मिक कला में क्षोभ पैदा करता हुआ इस के अन्दर रक्त की अत्यधिक राशि को खैंचे सब का परिणाम एक ही होता है।

इस का परिणाम यह होता है कि तीव्र रोगों में स्थानिक जीवन शक्ति दुर्बल पड़ जाती है। रक्तवाहिनियों में संकुचित होने की शक्ति नष्ट हो जाती है,

रक्त उन में भर जाता है जिस को वे बाहिर फेंक नहीं सकती हैं। परन्तु इसी बीच में हमें असली बात को अपनी दृष्टि से हटा नहीं देना चाहिये, कि पोषक वात नाड़ियां, उत्तेजक कारण के द्वारा हुई जिन की प्रतिक्रिया से यह सब ख़राबी पैदा हुई थी वे भी रक्त वाहिनियों से ही पुष्ट होती हैं और इसी कारण उन में भी अस्वस्थता का अनुभव और अस्वस्थ पोषण पाया जाता है। दूसरे शब्दों में वे अत्यधिक रुग्ण और क्षुब्ध हो जाती हैं तथा रक्त से उन का ख़राब पोषण होने के कारण वे कार्य करने में समर्थ नहीं होती हैं। इस का परिणाम उस की अपेक्षा अधिक होता है जो पहिले रोग को बढ़ाने की अवस्था में हुआ था, अथवा जो कोई भी उत्तेजक पदार्थ प्रयुक्त हुआ था उस से थोड़ा सा संकोच होता है, परन्तु फिर अधिक थकावट भी होती है। फिर संकोच होता है थकावट और अधिक बढ़ती है। इसी प्रकार चक्कर चलता रहता है जब तक सम्पूर्ण शक्ति नष्ट नहीं हो जाती। इस प्रकार एक मनुष्य

अधिक ठण्डी वायु की सांस भर कर श्वास प्रणाली की श्लैष्मिक कला में थोड़ी सी सूजन प्रप्त करता है, श्लैष्मिक कला की रक्तवाहिनियों और कमज़ोर वात नाड़ियों को और अधिक २ क्षुब्ध करने के लिये प्रति दिन ठण्डी वायु की घूंट भरता ही रहता है। इस प्रकार उस के फेफड़ों में अति तीव्र शोथ आरम्भ हो जाती है। इसी कारण ऐसी २ बहुत घटनायें देखने में आती हैं कि थोड़ी सी ठण्ड लग जाने से बड़े घातक परिणाम उपस्थित हुए हैं।

चिरस्थाई रोग

मानो कि रोग तीव्र है, न उस से मृत्यु होती है और नाही ख़ास कमज़ोर अङ्ग के सिवाय उस का कोई घातक कार्य प्रकट होता है ऐसी हालत में एक तीसरा रूप कहा जाता है। जिसे चिरस्थाई रोग (Chronic disease) कहते हैं। तीव्र रोगों में जिस प्रकार औषध प्रयोग होता है उस प्रकार चिरस्थाई रोगों में बहुत बलपूर्वक लगता है। यह किस

प्रकार होताहै सो देखना है। आमाशय में साधारण शोथ हो गई तो कहा जाता है 'तीव्र अजीर्ण' हो गया है। उस का इलाज भी बस नाम का ही इलाज होता है। शुरू २ में इतनी शोथ तो कभी प्रकट नहीं होती जो एक दम मालूम हो सके। इस लिये ऐसा मान लेना अच्छा है। अब देखिये क्रिया क्या जाता है? ३'४ ग्रेन कैलोमल, जो पारे का एक अत्यन्त क्षोभक समास है, ठूंस दिया जाता है, जिस का उद्देश्य जिगर को पित्त निकालने के लिये बाधित करना होता है। कुछ घण्टों तक यह अमाशय में पड़ा रहता है और इसे अत्यन्त क्षुब्ध करता रहता है आमाशय की श्लैष्मिक कला पहिले ही रक्त से पूर्ण होती है अब इस में और भी अधिक रक्त प्रविष्ट होता है। अब एक और प्रकार का क्षोभक पदार्थ अन्दर डाला जाता है। यह पदार्थ क्षारीय होता है इस का काम यह होता है कि सम्पूर्ण अन्न प्रणाली से और विशेष कर अमाशय से श्लेष्मा की बड़ी राशि को निकाले।

इस प्रक्रिया में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पहली यह कि कैलोमल जिगर को कार्य करने के लिये क्षुब्ध नहीं करता है, वह तो आमाशय को क्षुब्ध करता है। आमाशय से क्षोभ जिगर में भी पहुँच जाता है। कैलोमल तो लिवर को छूता तक नहीं है। यह तो शरीर की रचना से ही असम्भव है कि वह इसको छुए। दूसरी बात यह है कि जब तक जिगर में और श्लैष्मिक कला में साधारण मात्रा से अधिक रक्त न हो तबतक न तो जिगर अधिक पित्त निकाल सकता है और नाहीं श्लैष्मिक कला अधिक श्लेष्मा को निकाल सकती है। चूंकि कैलोमल और उस क्षार से आमाशय की श्लैष्मिक कला दुगनी क्षुब्ध हो जाती है अतः इसमें रक्त की मात्रा बढ़ जाने की कल्पना करने में कुछ भी कठिनता नहीं है। व्यतिक्रम को दूर करने के लिये उसी आवरण में और भी अधिक रक्त का बढ़ा देना, और फिर भी कहते ही जाना कि कैलोमल और क्षार के प्रयोग तीव्

अजीर्ण को आराम पहुंचाते ही हैं। यह किस प्रकार है?

यह इस प्रकार है। बहुत देर तक के अनुभव से यह पता लगा है कि अन्न प्रणाली और जिगर से श्लेष्मा तथा पित्त का लगातार स्राव नाज़ुक हालत को बतलाता है, जिस हालत को पचन के ऊपर के अङ्गों के आराम के लिये प्रकृति स्वयमेव चुना करती है। शरद् ऋतु में दस्तों का लगना इसका अचूक उदाहरण है। तीव्र अजीर्ण रोग में ऊपर के अङ्गों में व्यतिक्रम होजाता है, इस व्यतिक्रम के सम्बन्ध में चाहे कैसे भी अशुद्ध विचार क्यों न किये गये हों, परन्तु इसको तीव्र करके प्राकृतिक चिकित्सा की नकल अवश्य की जाती है। रक्त की बहुत बड़ी राशि आमाशय में तो सीधे ही आ जाती है और जिगर में परम्परया पहुँच जाती है। वे रक्तवाहिनियां जिनमें रक्त भरता है पित्त और श्लेष्मा की बड़ी राशि को बलपूर्वक निकालकर छुटकारा पाती हैं। इस प्रकार बलवान

झूंठी और अपूर्ण नाजुक हालत उत्पन्न होजाती है और फिर सब शान्त प्रतीत होने लगता है।

शान्त प्रतीत होने लगता है, यह इसलिये कहा, क्योंकि यह असम्भव है कि श्लैष्मिक कला की वातनाड़ियों की शक्ति को बिना नुकसान पहुँचाये अस्वाभाविक और तीव्र उत्तेजक पदार्थ अपना कार्य कर सकें। यह सब जीवित शरीरों पर एक समान लगने वाला नियम है। इसलिये यद्यपि भरी हुई रक्तवाहिनियों ने विशेष स्राव करके अपने को आराम दे लिया परन्तु जिन वातनाड़ियों की शक्ति से उन्होंने यह विशेष काम किया उनके कमज़ोर पड़ जाने से अब वे अपने छिद्र को स्वस्थ अवस्था के अनुकूल नहीं कर सकती हैं। ऐसी हालतों में कोई भी चीज़ उनमें फिर रक्त भरजाने को नहीं रोक सकती है। औषध ले चुकने के पश्चात् प्रथम किये हुए ही भोजन से यह हालत हो सकती है, या कुछ दिन तक भोजन करने से हो सकती है, या कुछ दिन तक शारीरिक वा

मानसिक श्रम करने से हो सकती है, क्योंकि ये भी तीव्र अजीर्ण के कारण हैं। उत्तेजक कारण चाहे कुछ भी हों, यह दूसरी वार का संचय पहिली वार की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से होता है, क्योंकि अङ्ग का शारीरिक बल कम हुआ हुआ होता है। और देखो! अजीर्ण का दूसरा वेग, और उसी कैलोमल तथा क्षार का पहिले जैसे फिर प्रयोग!

परन्तु अब यह इतना तीव्र नहीं होता है जितना पहिले हुआ था। रक्तवाहिनियों में स्फूर्ति घट जाती है, क्योंकि उन की घातनाड़ियां थक गई होती हैं। उसी कारण से रक्तवाहिनियों और रक्त के बीच में पारस्परिक मेल टूट जाता है। साथ ही दोनों आक्रमणों के बीच के अन्तर में आमाशय की झिल्ली इस हालत में नहीं रहती है कि शक्ति शाली पाचक रस को दे सके। हाज़मा इस किस्म का हो जाता है जिससे उत्तम रक्त नहीं बन सकता। इस शिथिलता का प्रभाव आमाशय की रुग्ण झिल्ली पर फिर लौट कर पड़ता है। इस प्रकार रक्तवा-

झिल्लियों को देखकर, उन वातनाड़ियों को देखकर जो उन्हें शक्ति देती हैं, और उस रक्त को देख कर जो उनमें घूमता है ख़राब हुआ सम्पूर्ण अङ्ग या उसका एक हिस्सा पहिले की अपेक्षा भी बहुत कम जीवन शक्ति सम्पन्न रह जाता है।

इसके अतिरिक्त रुग्ण आमाशय के हिस्से में घटी हुई जीवन शक्ति अन्यत्र भी बृहत् क्षोभ का कारण बनती है। सिरदर्द, ज्वर इत्यादि पहिले जैसे तीव्र नहीं रहते हैं। परन्तु यद्यपि सिर की दर्द, त्वचा की गर्मी आदि पूर्व के समान आमाशय के व्यतिक्रम के भारी चिह्न नहीं रहते हैं, तो भी आमाशय और मस्तिष्क में, उनकी वातनाड़ियों में और त्वचा में रोग की वृद्धि होजाती है। क्योंकि उनकी जीवन शक्ति ही घट जाती है; पहिले आक्रमण के समय जिस बल और तीव्रता के साथ पचन सम्बन्धी क्षोभ को वे ग्रहण करते थे उसी प्रकार अब नहीं करते हैं। दो प्रबल झूठी और अपूर्ण नाज़ुक हालतें हमेशा की अपेक्षा आमाशय

को अधिक क्षुब्ध और अधिक कमज़ोर हालत में छोड़ देती हैं।

चिकित्सक को पता भी हो तो परवाह नहीं करता है और रोगी को तो मालूम ही नहीं होता है कि चिरकालिक क्षोभ का छोटा चिह्न, जो पीछे छूटा हुआ है, पित्त और श्लेष्मा के तीव्र बहाव से कभी प्रकाशित होजाता है और कभी बुझ जाता है। अन्त को आमाशय का क्षोभ व्रण या फोड़े का रूप धारण करलेता है और इसका असर दिमाग़, सुषुम्ना नाड़ी, त्वचा और नीचे की आंतों पर भी पड़ता है। रोगी मिर्गी, लकवा के कारण मर जाता है या अपने जीवन को जैसे तैसे घसीटता है। रोगी पार्श्ववेदना, बवासीर, गुदरोग या दीर्घकाल तक रहने वाले त्वक् रोगों का शिकार बनता है।

पुरातन रोग समय की विशेष अपेक्षा भी रखते हैं और स्थिर भी होते हैं। समय की विशेष अपेक्षा से प्रकट होने वाले रोग का यदि लगातार

आवर्तन होने लगे तो फिर वह स्थिर हो जाता है। इस प्रकार जिगर और आमाशय की पुरातन क्षोभ समय २ पर चेहरे के लाल होने और सिरदर्द को उत्पन्न करती रहती है। ये दोनों बातें सिर की ओर खून के जाने के चिह्न हैं। जितनी ही जल्दी २ खून सिर में पहुँचता है उतना ही आक्रमणों के बीच का अन्तर कम होता जाता है। दिमाग़ के सामने यह एक किस्म की सूचना है जो पहले किसी अङ्ग में बड़ा कष्टप्रद रूप धारण कर चुकी है।

वह साधन, जिसके द्वारा यह फैलती है, वात संस्थान है। इसके फैलने का ज्ञान मनुष्य को नहीं होता। जब कि पाचक अङ्गों के पुरातन क्षोभ के कारण किसी फोड़े से समय समय पर स्राव की मात्रा बढ़ती रहती है, परन्तु दर्द आदि में कोई वृद्धि नहीं होने पाती। जब आमाशय की क्षोभ हृदय पर आहिस्ता २ लगातार कार्य करती है तो हृदय की रचना को बदल डालती है, जिस

की बिलकुल आशा नहीं होती। आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् परीक्षा करने से दोनों अङ्गों में चिरस्थाई रोग का पता लगता है। प्रायः अजीर्ण रोग के सब से खराब रोगी वे होते हैं जिन्हें दर्द वा अन्य किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होती, क्योंकि ऐसी हालत में शरीर के खराब होने से वृद्धि बन्द हो जाती है। इस बात का अच्छा उदाहरण यह है कि पाचक अङ्गों के चिरस्थाई रोग से फेफड़ों में उभार होने आरम्भ हो जाते हैं। एक रोगीअङ्ग से दूसरे अङ्ग में बीमारी जाती हुई मालूम नहीं होती ऐसी हालत में क्रिया सम्बन्धी परिवर्तन के स्थान में रचनात्मक परिवर्तन हो जाता है।

शरीर में जहां २ रक्त वाहिनियां हैं वहां २ पोषक वात नाड़ियां हैं। इस सहभाव का कारण बड़ा स्पष्ट है। शरीर में वात नाड़ियों और रक्त वाहिनियों के व्यापक होने के कारण एक अङ्ग में उत्पन्न हुआ क्षोभ दूसरे अङ्ग में चला जाता है। जब तक तुम्हें ऐसी औषध न मिले जो अपने स्वभाव और मात्रा में

ऐसी हो कि जब प्रयोग की जावे तब रक्त वाहिनियों को ठीक २ मात्रा में संकुचित होने की ऐसी शक्ति देवे जिस शक्ति से वे उस रक्त से केवल खाली ही हो जावें जो रक्त उनको रोके हुए है, तब तक तुम समझ लो या तो कुछ नहीं कर रहे हो या हानि कर रहे हो।

इस प्रकार नाड़ियों को दिया हुआ उत्तेजन यदि बहुत अल्प हो तो साधारण आराम भी नहीं प्राप्त होता है। यदि यह बहुत अधिक हो जैसा कि प्रायः हुआ करता है तो पहिले से भी अधिक श्रान्तता प्राप्त होती है, और मामला पहिले से भी अधिक खराब होजाता है। परिणाम अपने पूर्ण रूप में घातक और बहुत बुरा होता है।

साधारण औषध चिकित्सा की ऐसी ही विधि है जो जीवन के अन्दरूनी केन्द्रिय अङ्गों में चिरस्थाई रोग को उत्पन्न करती है उसको स्थिर रखती है और बढ़ाती है। इन केन्द्रिय अङ्गों से शरीर के किसी भी अन्य अङ्ग में रोग चला जाता है।

† गैङ्ग्लियौनिक वात नाड़ियों या पोषक वात नाड़ियों की दुर्बलता

गैङ्ग्लियौन्ज़ की शक्ति के कम हो जाने के साथ २ स्राव भी विकृत होने लगते हैं, जैसा कि हमने आमाशय में देखा है। यही अवस्था उस श्लैष्मिक कला में भी देखी जाती है जो खातों (Fauces) को ढकती है, जैसे मुख, जिह्वा, पलकों में। कारण यह कि इनकी श्लैष्मिक कला आमाशय की श्लैष्मिक कला का ही विस्तार है। अतएव अजीर्ण होने पर लाला (थूक) कम और विकृत हो जाता है, प्रायः गाढ़ा और विकृत हो जाता है, कभी २ पतला और स्वाद में काटने वाला हो जाता है। जिस समय गाढ़ा और विकृत हो जावे उस समय श्लैष्मिक अजीर्ण समझना चाहिये और जिस समय पतला और स्वाद में काटने वाला हो तब वातिक अजीर्ण समझना चाहिये। थूक का स्वाद खट्टा, तीखा, कड़वा,

† Dr. Gully.

धातवीय, मीठा, आम्लक्रिमिजन्य स्वाद विशेष इत्यादि भी हो जाता है। जब ऐसा होता है तब समझना चाहिये, कि रसनेन्द्रिय में विकार उत्पन्न हुआ है और साथ ही स्राव भी विकृत हो गया है। इसके पश्चात् गले और जबड़ों की झिल्ली से उठा वाष्प किसीक़दर दुर्गन्धित हो जाता है इसके कारण श्वास में भी दुर्गन्ध आने लगती है। यह लक्षण प्रायः कम होता है। आमाशय की श्लैष्मिक कला में रक्त के भर जाने से अजीर्ण रोगियों के गले में प्रायः दर्द हो जाती है। ऋतु के अनुसार यह दो तरह की होती है एक वह जिसमें शोथ होती है और दूसरी वह जिसमें शोथ नहीं होती। गले से श्लैष्मिक कला के साथ २ यह जिह्वा को व्याप्त कर लेती है। इसी लिये रोग परीक्षा में चिकित्सकों के यहां जिह्वा परीक्षा का बड़ा महत्व है।

पुरातन अजीर्ण में जिह्वा परीक्षा विषयक डा० गुली का अनुभव निम्न लिखित है:—

१. जब जिह्वा लाल बिलकुल नहीं होती या अधिक लाल नहीं होती और नाहीं लालपने का क्षेत्र उस में बढ़ा होता है परन्तु इसपर मैल की एक मोटीसफेद भूरी सी तह आई होती है और जब कि शुष्कता भी कोई बड़ी मात्रा में नहीं होती तब हम अनुमान कर सकते हैं कि आमाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ न तो तीव्र ही है और नाहीं पुराना है।

२. जब जिह्वा पर मैल की तह चिपचिपी हो और जिह्वा की नोक तथा किनारे, जिन पर मैल न हो, अत्यधिक लाल हों तब अजीर्ण रोग श्लैष्मिक होता है, तीव्र होता है और देर से वर्तमान होता है।

३. यदि मैल अपने अन्तिम स्वरूप में अर्थात् सर्वदा पीली सी रहे और साथ ही अधिक शुष्क हो तो समझना चाहिये कि जिगर और ग्रहणी अजीर्ण रोग से आक्रान्त हैं।

४. जब जिह्वा स्वच्छ और अत्यधिक लाल होती है, जिह्वा की नोकपर फुन्सी उठी होती है साथ ही जिह्वा साधारणतया गीली रहती है तब समझना चाहिये कि वातिक अजीर्ण नया ही आरम्भ हुआ है।

५. जब यह ही लाल जिह्वा शुष्क और चिकनी होती है तब समझना चाहिये कि अजीर्ण रोग अत्यधिक तीव्र रूप में वर्तमान है।

६. जब अधिक लाल जिह्वा पर मैल की पतली सफ़ेद तह चढ़ी हो और जिह्वा फैली हुई हो तब समझना चाहिये कि अत्यधिक तीव्र वातिक अजीर्ण विद्यमान है। इस अवस्था में मस्तिष्क आक्रान्त हो जाता है और उस में रक्त भर जाता है। जिह्वा का बढ़ जाना आमाशय के क्षोभ से इतना अधिक सम्बद्ध है कि जिह्वा कभी २ प्रत्येक भोजन के पश्चात् फूल जाती है और पचन क्रिया समाप्त हो चुकने पर कम हो जाती है। पाचन अङ्गों की उत्तेजना

और आराम के साथ इस का सम्बन्ध है। जल चिकित्सा के द्वारा आमाशय की क्षोभ शान्त होने से समय के अनुसार जिह्वा भी संकुचित हो जाती है।

७. अत्यधिक बढ़े हुए वातिक अजीर्ण से जिह्वा बहुत बढ़ जाती है। जिह्वा के पृष्ठ पर दराड़ पड़ जाती हैं, कभी २ इतनी गहरी होती हैं जिन के कारण कई जिह्वायें किनारों से आपस में जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं।

८. जब वातिक और श्लैष्मिक दोनों प्रकार का अजीर्ण उत्कृष्ट रूप में हो और बहुत देर का हो चुका हो तब जिह्वा नोक और पार्श्वों पर लाल होती है और मध्य में बहुत पतली, सफ़ेद, चमकीली श्लेष्मा की तह से ढकी होती है तथा बढ़ी होती है। यह श्वेत जिह्वा बतलाती है कि अजीर्ण बहुत देर से रहा है, पारे का दीर्घकाल तक प्रयोग हो चुका है तथा मस्तिष्क की हालत भी ख़राब है।

जिह्वा की कई अन्य विशेषतायें भी हैं। जिह्वा पार्श्वों पर दन्तुर होती है। जिह्वा की दन्तुरता जिह्वा के बड़े आकार को और दांतों पर इस के दबाव को बतलाती है। जिह्वा बाहर निकालने पर यदि कांपे तो समझना चाहिये कि वातिक अजीर्ण है, जिस ने सौषुम्न काण्ड को आक्रान्त कर लिया है। उपर्युक्त चिन्हों में से एक प्रधान चिन्ह जिह्वा के आकार का बढ़ा होना है। इस चिन्ह की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। ग्रीन ने अत्यधिक कष्टप्रद अजीर्ण के रोगी देखे हैं जहां कि जिह्वा के मोटे होने के सिवाय और कोई चिन्ह नहीं मिला। जिह्वा रङ्ग, नमी और स्वच्छता में पूर्ण होती है उस में कोई कमी नहीं होती। बड़े आश्चर्य की बात है कि इन हालतों में जिह्वा की कमी के साथ अजीर्ण में भी कमी आजाती है। जो जिह्वा मैली और चिपचिपी होती है जिस से प्रतीत होता है कि आमाशय में क्षोभ विद्यमान है।

जिह्वा परीक्षा करते समय 'जिह्वा मैली है वा

नहीं केवल इतना ही प्रायः देखा जाता है। इतने से ही समझ लिया जाता है कि पुरातन अजीर्ण है या नहीं। चूंकि इतना काम बड़ा आसान है अतः अधिक कष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया जाता परन्तु केवल इतना ही कार्य पर्याप्त नहीं है। जिह्वा श्वेत है, स्वच्छ है, लाल है, फूली हुई है इत्यादि को जान कर रोग के स्वरूप का निश्चय करना कुछ आसान नहीं है बहुत कठिन काम है। जिह्वा मैली देख कर अजीर्ण कहदेना यह बहुत आसान है।

मसूढ़ों और दांतों से भी अजीर्ण के चिन्ह मालूम होते हैं। जो श्लैष्मिक कला आमाशय को ढकती है वही जिह्वा को ढकती है, और वही मसूढ़ों पर भी जाती है फिर दांतों के पार्श्वों के साथ २ नीचे जड़ तक उतर जाती है। वहां प्रत्येक दांत की जड़ के साथ लसदार होकर आगे केन्द्र में पहुँचती है। इस प्रक्रिया से बड़ी आसानी से समझ में आजाता है कि मसूढ़ों में लालपना, फूलना, दर्द, पिलपिलापन, रक्त स्राव और दुर्गन्ध किस प्रकार

और क्यों उत्पन्न होते हैं। ये चिन्ह जो उत्पन्न होते हैं वे प्रायः अजीर्ण के रूप हैं, यह अजीर्ण विशेषतः श्लैष्मिक होता है।

वातिक अजीर्ण में मसूढ़ों का पोषण बन्द हो जाता है। मसूढ़े सुकड़ जाते हैं और दांतों की जड़ें नंगी हो जाती हैं। यह समझना कठिन नहीं है कि श्लैष्मिक कला के इतने अधिक फैले होने के कारण अजीर्ण होने से किस प्रकार दन्त पीड़ा, दन्त पात और दन्तभ्रंश हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त दिमाग़ से जो वातनाड़ी आमाशय तक जाती है उस में से गले से नीचे जाते हुए अनेक शाखायें फूटती हैं, जो शाखा जबड़ों को जाती है उस में से प्रत्येक दांत के लिये एक शाखा निकलती है। यह देखना आसान है कि किस प्रकार जल का एक घूंट अम्लीय द्रव को हलका कर के या आमाशय में शोथ के बढ़ते हुए कार्य को शान्त कर के प्रायः तत्क्षण दांत के कोप को भी शान्त कर देता है जिस में शायद दन्त पात का कोई

भी चिन्ह नहीं पाया जा सके जिस से दर्द की सम्भावना हो। बरफ़ डाले हुए जल को निगलने के आनन्ददायक कार्य को करते हुए जब वह दांतों को लगता हुआ जाता है तो उस कारण बहुत से दांत निकाले जा चुके हैं और वर्षों तक के लिये आराम देदिया गया है।

उस हालत में जबकि अन्दर की श्लैष्मिक कला रुक जाती है और बाहिर की श्लैष्मिक कला या त्वचा होंठों पर चढ़ी रहती है तब प्रायः सर्वदा उसको ढाने वाले स्पर्शीय तन्तुजाल में रक्त का संचय होजाता है। यह आग के समान लाल स्पर्शी होट नवीन श्लैष्मिक रोग में या वातिक अजीर्ण में होजाता है, इसके साथ मसूढ़े भी लाल और स्पर्शी होजाते हैं। कभी२ इस को ढकने वाली झिल्ली त्वचा का रूप धारण कर लेती है और श्लेष्मा को परे बाहिर हटा देती है जो हवा में जम जाती है और होठों पर सूखी पपड़ियों का रूप धारण करलेती है। परन्तु जब अजीर्ण रोग

बहुत देर का होचुका हो और ग्रहणी या यकृत की रचना को भी आक्रान्त करचुका हो तब हम देखते हैं कि होठ शुरू २ में लाल और सफेद होजाते हैं और जब रोग बढ़ता है तो होठ विशेषतया नीचे का होठ सफेद होजाता है और सफेद होते हुए मोम जैसा और कठोर हो जाता है। शराब ख़ोरों के होठों की ऐसी ही हालत होती है और बतलादेती है, कि रोग का कोई इलाज नहीं है।

गले के पृष्ठ से आगे बढ़ती हुई श्लैष्मिक कला नथनों को और वहां से अश्रुमार्ग के द्वारा आंखों को, पलकों को ढकती है और अक्षिगोलक को वहां तक आवृत करती है जहां तक आंख की सफ़ेदी विद्यमान है। अतएव बहुत से अजीर्ण रोगियों की आंखें प्रायः दुःखने आजाया करती हैं, इसी लिये पलकें भारी, भरी हुई, मोटी, अन्दर से लाल और बहिर से काली होती हैं, और इसी लिये पलकों के बालों की जड़ों में वर्तमान ग्रन्थियों में शोथ उत्पन्न होजाती है वहां स्राव अल्प गाढ़ा

और चिपकने वाला होजाता है। जब कि पलकों का अन्तः पार्श्व और आंखों की सफेदी ये दोनों पृष्ठ एक दूसरे पर कार्य करते हैं तब उन की रक्तपूर्णता की अवस्था में बहुत दर्द हुआ करती है, अश्रु प्रवाह आरम्भ हो जाता है, इस सब को मिला कर एक नाम दुर्बलचक्षु (weak eyes) दिया जाता है। यह चिरस्थाई अजीर्ण का एक असाधारण चिह्न है।

नथनों में खुजली, शुष्कता, अत्यधिक स्राव, गन्ध का अनियमित अनुभव ये सब अजीर्ण के चिह्न हैं। ये सब चिह्न आमाशय से आरम्भ हुई श्लैष्मिक कला के नथनों तक पहुँचने पर आश्रित हैं। जब नथनों में वर्तमान श्लैष्मिक कला रक्त से भरी होती है और मोटी हो जाती है तब इसमें फैली हुई घात नाड़ियों पर दबाव पड़ने से उनका कार्य रुक जाता है और गन्ध ज्ञान की हीनता यह अजीर्ण का चिह्न उत्पन्न होता है। झिल्ली के इसी सम्बन्ध के कारण अजीर्ण के रोगियों को

सिर में ठण्ड लगजाती है, अर्थात् बाहर की ठण्ड के गौण परिणाम के रूप में नथनों की झिल्ली में रक्त भर आता है और नथने लाल दीखने लगते हैं।

गले के पीछे से श्लैष्मिक कला Eustachian tube में से होती हुई आभ्यन्तरकर्ण में जाती है। यहां जाकर कभी कभी इसका वह रूप नहीं रहता जो आमाशय में रहता है। यहां आकर शुष्क हो सकती है। शुष्क हो जाय तो दाह युक्त दर्द होती है और श्रवणेन्द्रिय तीव्र हो जाती है। झिल्ली में रक्त भर सकता है, झिल्ली फूल सकती है और मार्ग को रोक सकती है, इस प्रकार एक प्रकार का बहिरापन उत्पन्न होजाता। अजीर्ण के रोगी प्रायः अनियम से सुनने की शिकायत किया करते हैं।

अन्त को आमाशय की श्लैष्मिक कला नथनों के पीछे की सछिद्र अस्थियों (Spongy bones) के ऊपर से गुज़रती है और ललाटास्थि की दोनों

हड्डियों को पृथक् करने वाले खोखले स्थान (Frontal sinus) तक पहुँच कर उसे ढकलेती है। यह वह स्थान है जहां श्लैष्मिक शिरो वेदना या पैत्तिक शिरो वेदना हुआ करती है। आमाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ होने से श्लैष्मिक शिरो वेदना होती है और उसी के विस्तार में आई हुई यकृत् की श्लैष्मिक कला में क्षोभ होने से पैत्तिक शिरो वेदना होती है।

आमाशय के अन्तः पृष्ठ के विस्तार के सम्बन्ध में यहां तक अजीर्ण के लक्षण समझे जा सकते हैं। परन्तु श्लैष्मिक कला के विस्तार के साथ साथ उन लक्षणों को निकालने में, एक क्षण भर के लिये भी यह नहीं भूलना चाहिये कि स्वस्थ या रोगी अवस्था में झिल्ली के भिन्न २ भागों में सम्बन्ध गैङ्ग्लियौनिक वात संस्थान के अनुसार होने वाले उन भागों के पोषण पर निर्भर है। वात संस्थान की ये नाड़ियां ही हैं जो हमेशा चिकित्सक की ज्ञान चक्षु के सन्मुख रहनी चाहियें जब वह

उपर्युक्त लक्षणों के द्वारा, पुरातन अजीर्ण के विकार का ख्याल करता हो। चिकित्सक जब ऐसा नहीं कर सकता तब वह परिभाषाओं की बुरी गलतियों में पड़जाता है, कार्यों की भिन्न २ अवस्थाओं पर ध्यान देने की बजाय वह सिर्फ नामों से खेलता रहता है और पाचक अङ्गों की श्लैष्मिक कला की अनुभव शीलता को तो बिलकुल भूल ही जाता है। जहां तक मालूम है ऐसी कोई भी झिल्ली नहीं है जिस में प्राण शक्ति को देने वाली करोड़ों वात नाडियाँ उसकी सूक्ष्म रचना में विद्यमान न हों। न तो आंख से ऐसा एक आंसू झरता है और नाहीं आमाशय की त्वचा से आश्चर्य जनक पाचक रसकी एक बूंद झरती है, जिसमें उन अङ्गों को प्राप्त होने वाली पोषक वातनाड़ियों का बल न लगा हो।

आमाशय के गढ़े में विद्यमान गैङ्ग्लियौनिक या पोषक वातनाड़ियों के चक्र के विषय में डा० गुली की राय।

आमाशय के चारों ओर और विशेषतया नीचे घना बुना हुआ पोषक वात नाडि जाल विद्यमान है। इससे शाखा प्रशाखा रूप में अनन्त नाडियां निकल कर आमाशय या इसकी श्लैष्मिक कला में जाती हैं। इन से आमाशय की अनुभव और स्रावण शक्तियां बढ़ती हैं। इस नाडिजाल के साथ गुथी हुई वे नाडियां भी हैं जो मस्तिष्क और सुषुम्ना काण्ड से आती हैं। इन नाडियों का कार्य अङ्गों के कार्यों का पारस्परिक सम्बन्ध कायम रखना और एक दूसरे के सुख दुःख को परस्पर में पहुँचाना है। सम्बन्ध करने वाली इन नाडियों की संख्या व्यक्ति व्यक्ति में बदलती है। वातिक अजीर्ण से अजीर्ण के उन चिह्नों का अभिप्राय है जो आमाशय के चतुर्दिक् वर्तमान नाडिजाल के क्षोभ को सूचित करते हैं। श्लैष्मिक अजीर्ण से उन चिह्नों का अभिप्राय है जो आमाशय की श्लैष्मिक कला में विद्यमान हैं मानो जो कष्ट का स्थान है। अजीर्ण के चिह्नों में यह भेद निर्दि-

वाद सिद्ध है। इसी के कारण चिकित्सा और परिणाम में भेद पड़जाता है। विकार किसी अवस्था में तो नाड़ियों के मूल में रहता है और किसी अवस्था में अन्तिम सिरों में रहता है, इसी को लेकर यह शीघ्र ही ख़्याल किया जासकता है कि दोनों प्रकार के अजीर्णों में से एक से दूसरा उत्पन्न हो जाता है और इतना तो अवश्य है कि सर्वदा ही एक दूसरे से कुछ न कुछ असर लेता ही है, वातिक क्षोभ समय पाकर श्लेष्मा की पुष्ट को खराब कर डालता है और श्लैष्मिक क्षोभ जब बहुत बढ़जावे तो वात नाड़ियों के सम्पूर्ण चक्र (Plexus of nerves) को ही आक्रान्त कर लेता है और दोनों प्रकार के क्षोभों के मेल से एक प्रकार का घातक अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है।

वातिक अजीर्ण के उदाहरण व्यापारिक लोगों में, विचारकों में और चिन्तित मनुष्यों में बहुत मिलते हैं। अंग्रेज़ समाज के अधिक लोग ऐसे ही

हैं। वातिक अजीर्ण के प्रचलित इलाज में अग्नि में ईंधन डालने के समान आमाशय में बल्य (Tonic) और वृष्य (alterative) औषधियां तथा उत्तेजक भोजन डालना है। तो भी इतना तो बिलकुल सत्य है कि रोगी को अधिक मज़बूत करने के लिये प्रत्यक्ष तौर पर कमज़ोर करना चाहिये। आमाशय की वात नाड़ियों का क्षोभ, जो दिमाग़ को ख़राब करता है और जो अब तीव्र उत्तेजना तथा बनावटी शक्ति दे रहा है और पश्चात् अङ्गों में कम्पन उत्पन्न करता है, अवश्य कम किया जाना चाहिये, इतना जहां हुआ कि दिमाग़ का पुराना क्षोभ दूर होजाता है और वह अपनी वास्तविक हालत में आजाता है जैसा कि वह पहिले कमज़ोर, शक्तिहीन तथा अङ्गों को बहुत थोड़ी शक्ति देने वाला था। उष्ण प्रसेक (Fomentation), आर्द्र वस्त्र वेष्टन, और भोजन से यह क्षोभ दूर किया जाता है। ये ही क्रियाएं दिमाग़ को पहिले कमज़ोर करने वाली प्रतीत होती थीं परन्तु अब अन्तरङ्गों को बाधा से छुड़ा देती हैं

और उन्हें अधिक शक्ति तथा स्वास्थ्य के साथ कार्य करने के योग्य बनाती हैं। इसी लिये कहा था कि रोगी देखने में चाहे कमज़ोर लगे परन्तु पूर्ण मज़बूत होजाता है, क्योंकि वास्तविक बल अङ्गों के स्वास्थ्य में केवल विद्यमान है।

रुग्ण नाड़िजाल से आक्रान्त आमाशय रूपी शत्रु को जीतने के लिये छः मास पर्याप्त छोटा काल है, जो साधारणतया कई वर्षों की अपेक्षा भी अधिक काल लेता है। इस बीमारी के उदाहरणों के ऐसे लेखों से पाठकों को सावधान रहना चाहिये जिन के अच्छा होने का काल ५,६ सप्ताह दिया होता है। ऐसे उदाहरण न कभी हुए और न कभी होंगे। बेहूदा लेखकों के इश्तिहारों और पैम्फलेट्स के सिवाय ये कहीं नहीं मिलते।

आमाशय के गर्त में स्थित उस बड़े गैङ्ग्लियोनिक जाल की वे ही वात नाड़ियां, जो आमाशय को शक्ति देती हैं शाखाओं के द्वारा यकृत् को भी शक्ति देती हैं। और वही श्लैष्मिक कला, जो आमाशय को ढकतीहै, ग्रहणी को ढकने के लिये भी

जाती है और वहां से संयुक्त पित्त प्रणाली के द्वारा जिगर में वर्तमान इस की असंख्य शाखाओं में से प्रत्येक को ढकने के लिये जाती है और अन्त में अनन्त भागों में विभक्त होकर उन सूक्ष्मतम बिन्दुओं में समाप्त होती है जहां पैत्तिक स्राव का बड़ाभारी कारखाना चल रहा है। इसी लिये जिगर में और अमाशय में दो प्रकार के विकार हम देखते हैं, इन में एक विकृत वात नाड़ियों पर आश्रित हैं और दूसरे श्लैष्मिक क्षोभ पर अवलम्बित हैं। ग्रहणी के सम्बन्ध में इस के वातिक विकारों को इस के श्लैष्मिक शोथ से पृथक् निश्चय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है, जो कि पचन संस्थान के घातक और हटाने योग्य बड़े रोगों में से एक है। तो भी चूंकि ग्रहणी शोथ यकृत् के विकार से पृथक् सत्ता नहीं रखती है, अतः इस के उन अतिरिक्त चिन्हों को कहता हुआ जो विकृत यकृत के साथ रहते हैं और यकृत के वे चिन्ह जो ग्रहणी शोथ के बिना भी रहते हैं उन को कहता हुआ दोनों के विषय में एक क्रम कथन करता हूँ।

शरीर में जिगर और दिमाग का गहरा सम्बन्ध है। यह कहा जा चुका है कि क्रोध आदि तीव्र वृत्तियां पैत्तिक आक्रमण का उभयनिष्ठ कारण हैं। जैसे अति व्यायाम करके किसी पुरुष को और जल्दी उत्तेजित हो जाने वाले पुरुष को मस्तिष्क से कार्य नहीं करना चाहिये, वैसे ही पुरातन पैत्तिक विकार में भी मस्तिष्क का कार्य छोड़ देना चाहिये।

जलचिकित्सा सम्बन्धी प्रक्रियायें

रोगों को दूर करने के लिये जल की प्रयोग विधियों को ही जलचिकित्सा सम्बन्धी प्रक्रिया कहते हैं। इसमें जल को पीना तथा स्नान करना लिया जाता है। साधारण जल या किन्हीं द्रव्यों से मिश्रित जल सब तरह का इसमें अभीष्ट है। जल का प्रयोग भिन्न २ ताप मानों पर किया जाता है। जल का पीना जीवन के लिये अत्यावश्यक है। शरीर में ५८ प्र० श० मात्रा जल की है। शरीर में से श्वास और स्रावों के द्वारा निरन्तर जल का क्षय हो रहा है। धात्वन्तर परिणाम और विकृत

पदार्थ का बहिष्कार जल पर ही आश्रित है। कक्षा या गुदा में लेने से ठण्डा पानी, कुछ समय के लिये तापमान को कम कर देता है, नाड़ी की गति मन्द करता है और तनाव को बढ़ा देता है। इसकी जितनी अधिक राशी जितनी शीघ्रता से ली जाये उतना ही शीघ्र फल होता है। ठण्डे जल के द्वारा आमाशय में वर्तमान वागस नर्व की अन्तिम शाखाओं की उत्तेजना से और वासो मोटर केन्द्रों की उत्तेजना से नाड़ी गति में फ़र्क पड़ा करता है। गर्म पानी से तनाव कम हो जाता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है, कारण यह समझा जाता है कि नाड़िकेन्द्रों में शक्ति मन्द पड़ जाति है।

अधिक गर्म पानी (११० अंश से ११५ अंश फा०) वही प्रभाव उत्पन्न करता प्रतीत होता है जो ठण्डा पानी नाड़ीगति और तनाव पर करता है। किन्तु शरीर के सामान्य ताप मान को थोड़ा बढ़ा देता है।

गर्म पानी से आमाशय अधिक काम कर सकता है और सारा शरीर साधारणतया धुल जाता है। गर्म पानी, ठण्डे पानी की अपेक्षा शीघ्र व्याप्त होता है। यह तापमान कम कर के या शरीर को पुनः गर्म करने के लिये जीवन शक्ति का प्रयोग करके हानि नहीं पहुंचाता।

ठण्डे जल के पीने से भोजन प्रणाली का नीचे का भाग कभी २ उत्तेजित होता है। कई अशक्त जिन की पाचन शक्ति कमज़ोर थी भोजन के साथ या भोजन के एक दम बाद गर्म जल के पीने से अनुभव करते हैं कि यह ठण्डे जल की अपेक्षा कम हानि पहुंचाता है।

शरीर को धोने के लिये, जीर्ण तन्तुओं को निकालने के लिये और विभिन्न विषों को बाहिर करने के लिये प्रातः जल पीना चाहिये उस के बाद सब से उत्तम समय मध्याह्न या रात्रि भोजन से १ घण्टा पूर्व है। सन्धि शोथ के रोगियों को १ गिलास गर्म जल सोते हुए पीना चाहिये।

जल की मात्रा नियत नहीं है। स्त्रियों को, जिन को द्रव पदार्थ लेने की कम आदत है, ४ से ६ औन्स तक पानी लेना चाहिये। जिन रोगियों का पाचक रस काम नहीं करता उन्हें भी प्रारम्भ में थोड़ी मात्रा पीनी चाहिये। और रोगियों को विशेषतया सन्धि शोथ वालों को प्रति दिन बहुत सवेरे १ पाइन्ट गर्म जल पीना चाहिये। पानी पीने में १० से १५ मिनिट तक लगाने चाहियें। गर्म जल पीने से कई बार विवमिषा (मतली) हो जाती है। इस का उपाय पानी को अधिक गर्म करना है, या प्रति पाइन्ट जल में ताज़े निम्बू के आध छटांक रस को मिला कर पीना है। इस के मिलाने से सन्धि शोथ और अजीर्ण के रोगियों को विशेष लाभ होता है। नवीन अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि इस से ग्रहणी सम्बन्धी सड़ांद और विषों का बनना रुक जाता है।

यह कहा जाता है कि जल की अधिक मात्रा पीने से रक्त अधिक पतला हो जाता है, परन्तु

विशेषज्ञों का अनुभव ऐसा नहीं है। अनुभव से पता लगता है कि इस का अधिक भाग गुर्दों से निकल जाता है और शेष भाग तन्तुओं के द्रवों को पतला करता है। तथापि यह सम्भव है कि विशेष निर्बल पाचन शक्ति वाले रोगियों में द्रव उतनी शीघ्रता से बाहिर नहीं निकलता जितनी शीघ्रता से निकलना चाहिये, इस से ख़राब हालत अधिक बढ़ सकती है। जल पीने से मूत्र बढ़ जाता है, यूरिया क्लोराइड्ज़, और फ़ौस्फ़ेट्स अधिक आने लगते हैं, लाला स्राव, पेंक्रियाटिकरस स्राव और पित्त स्राव बढ़ जाते हैं।

स्नान

स्नान के प्रभाव—९९ से ११०अंश तक के गर्मजल में स्नान से रक्त का बहाव त्वचा की ओर हो जाता है, नाड़ी तीव्र हो जाती है, श्वासभी तीव्र हो जाता है, त्वचा लाल हो जाती और पसीना आने लगता है।

८५° से ९५° तक का जल साधारण जल (Tapid bath) कहलाता है। शुरू २ में बाह्य-तापमान को कम करता है और वात संस्थान को तथा रक्त संचार को उत्तेजित नहीं करता है।

५० से ६० अंश तक का जल ठण्डा जल (cold bath) कहलाता है प्रारम्भ में त्वचा के ताप मान को कम करता है। सूक्ष्म रक्त नाड़ियों में संकोच अधिक उत्पन्न करता है। केन्द्रीय वात नाड़ी संस्थान में त्वचा में वर्तमान उस की शाखाओं द्वारा, क्रिया उत्पन्न करता है। उसके बाद प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है और तापमान बढ़ जाता है। वात नाड़ियां उत्तेजित हो जाती हैं। इनस्नानों का असर स्नानके काल पर आश्रित है। औसतन काल—उष्णजल स्नान ८ से १० मिनिट तक।

साधारण जल स्नान १० से ६० मिनिट।

शीत जल स्नान ३ से १० मिनिट।

उष्ण या शीत स्नान अधिक काल तक करने से तबियत गिरी हुई सी मालूम होती है।

चिकित्सा में जल के प्रयोग तथा जल स्नान:—

ताप सम्बन्धी और क्रिया सम्बन्धी जो उपाय सारे शरीर को या उस के अङ्गों को उत्तेजित करते हैं वे जल चिकित्सा सम्बन्धी स्नान कहलाते हैं।

इन के असर:—

१. तापमान को बढ़ाना या घटाना।

२. त्वचा सम्बन्धी रक्तवाहिनियों में, श्लैष्मिक स्थानों में, श्लेष्मवाहिनियों में गति बढ़ाना और विषों को निकालना।

३. ओषजन की क्रिया को अधिक समर्थ करना।

४. रक्त वाहिनियों और वात नाड़ियों को स्फूर्ति देना। इन प्रभावों के लिये निम्न उपाय बर्ते जाते हैं:—

i बौछाड़ स्नान (Shower bath)। तपमान ५० या ६० से १०० अंश तक। समय १ से २ मिनिट तक।

ii सूची स्नान (Needle bath) । दो दिगन्त सम नलों से, जो कई लम्ब रूप नलों से जुड़े होते हैं, यह स्नान किया जाता है। इन लम्ब रूप नलों में १½ इञ्च के फासलों पर कई छोटे २ छेद होते हैं। जिन के कारण सारे शरीर पर पानी की कई तेज धारायें इकट्ठी गिरती हैं।

तापमान १०० से ९० अंश । समय १ से ३ मिनिट तक।

iii नलिका स्नान (Douches)

(क) ऊपर चढ़ता हुआ (Ascending)। रोगी एक टट्टी जैसी कुर्सी में बैठ जाता है। पानी ऊपर की तरफ ¾ इञ्च टूटी वाली नली से छोड़ा जाता है। यह पानी गुह्य प्रदेश पर नीचे से गेरा जाता है जो गुदा में भी चला जाता है। तापमान ५०, ६० अंश से १०० तक। समय ½ से २ मिनिट तक।

(ख) उतरता हुआ (Descending) । १½ इञ्च के नल से ऊपर से पानी की धारा गेरी जाती है रोगी इसके नीचे बैठता है । थोड़ा २ आगे पीछे होता रहता है, जिससे पीठ और छाती पर पानी गिरता है। तापमान और समय ऊपर के समान ।

(ग) मेरु स्नान (Spinal) । १½ इञ्च के नल से पानी की धार मेरु के ऊपर और नीचे गेरते हैं । तापमान और समय ऊपर के समान ।

(घ) टकोर (Percussion) । बारी २ से १०० और ६० अंश की पानी की धारायें मेरु पर गेरते हैं । प्रति मिनिट ६ बार बदलते हैं । समय ½ से २ मिनिट तक ।

(ङ) मालिश सहित उष्ण स्नान (Aix-douche) रोगी एक छोटी पीठ वाली लकड़ी की कुर्सी पर बैठता है । पैर गर्म पानी में

रखता है। पीठ और कन्धों पर ६८ अंश का स्थिर छिड़काव किया जाता है। इसी बीच में एक आदमी चमड़े या रबड़ के नल से पानी की धार जल्दी २ पीठ और छाती पर बदलता जाता है, दूसरा मालिश करता जाता है। स्नान के अन्त में रोगी कमरे में एक लोहे के छड़ को पकड़ कर खड़ा होजाता है, और जल की तीव्र धारा श्लेष्मवाहिनियों की दिशा में शरीर पर गेरी जाती है।

(च) खनिज जलों की पिचकारी (under water douche)। रोगी स्नान पात्र में बैठ जाता है। पात्र में $\frac{3}{4}$ इञ्च टूटी वाला नल लगा रहता है। दबाव से ६६ से १००अंश तक का खनिज जल रोगी के रुग्ण अंगों पर डाला जाता है। टूटी और अंग के बीच में लगे हुए एक थैली में से बहते जल के दबाव से दबाव की मात्रा जानी जाती है।

iv वेष्टन (Packs) ।

(क) उष्ण—व्यापी और स्थानिक । एक मोटा कम्बल बोतल की शकल में लपेट लिया जाता है। खौलता पानी दोनों प्रान्तों से बारी २ से डाला जाता है। यह एक बड़े गर्म तौलिये से ढका रहता है। तौलिये के बाहिर सील पैदा होती है। फिर चारपाई पर बिछे हुए दो सूखे कम्बलों पर यह फैला दिया जाता है। रोगी को कपड़े उतार कर गीले कम्बल पर रख दिया जाता है और शीघ्रता से गीले तथा सूखे कम्बल उस पर लपेट दिये जाते हैं। गर्म पानी के कनस्तर पार्श्वों और पांव की तरफ रख दिये जाते हैं। सिर पर ठण्डे पानी का कपड़ा रक्खाजाता है। कम्बलों से गर्मी निकल न जावे इस ख्याल से यह कार्य बड़ी फुर्ती से किया जाता है। इसका समय ३० से ६० मिनिट है।

(ख) शीत—दो बड़े और मोटे तौलिये साधारण या ठंडे जल में निचोड़ लिये जाते हैं। रोगी एक पर लेट जाता है और दूसरा उसे उढ़ा दिया जाता है। ऊपर से एक कम्बल धीरे से उस पर फैला दिया जाता है। प्रति १०, १५ मिनिट के पश्चात् ऊपर का तौलिया उसी प्रकार किसी दूसरे तौलिये से बदल दिया जाता है। यदि आवश्यक हो तो नीचे का तौलिया एक घंटे के पश्चात् बदल सकते हैं। इसका समय आध घण्टे से २ घण्टे तक है।

(ग) राई—गर्म पानी में राई का चूर्ण डाल कर मरहम तय्यार करो। मलमल के एक टुकड़े पर इसे फैलाओ। उस पर मलमल का एक और कपड़ा बिछा दो। फिर पीड़ित स्थान पर उसे लगा दो। ऊपर से फ़लालैन की पट्टी लपेट दो। इसका समय १० से २० मिनिट तक है।

(घ) पट्टी—उष्ण या शीत। एक मोटा कपड़ा गर्म या ठंडे पानी में निचोड़ो, और पीड़ित अङ्ग पर लपेट दो। फिर इस पर फ़लालैन लपेट दो। उसके ऊपर मोमजामा लपेटो। इस का समय २० से ३० मिनिट है।

गर्म वायु का प्रयोगः—

(क) टर्किश स्नान—यह इतना सरल है कि इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। तापमान ११५ अंश से २०० तक। समय २० से ६० मिनिट।

(ख) गर्म वायु का सन्दूक—इसमें रोगी इस प्रकार बैठता है कि उस का सिर बाहिर निकला रहता है। पांव गर्म पानी में रहते हैं। ठंडे पानी में भीगा कपड़ा सिर पर बंधारहता है। तापमान १०८ से १२० अंश तक। समय ८ से १२ मिनिट।

(ग) रोगी को बिस्तर पर ही उष्ण वायु स्नान कराते हुए उसे एक जाली दार सन्दूक

से ढक दिया जाता है। लैम्प चारपाई के बाहिर रहता है। धातु की एक नली से गर्मी अन्दर पहुंचाई जाती है। समय १५ मिनिट से २ घंटे या इससे भी अधिक।

(घ) उष्ण शुष्क वायु के स्थानिक प्रयोग—

i पूर्व वर्णित सन्दूक में केवल हाथ या पांव पहुंचाने के लिये छेद करो।

ii ग्रैविल के अनुसार हाथ या पांव एक बेलनाकार बर्तन में रक्खे जाते हैं। बर्तन विद्युत् से गर्म किया जाता है। तापमान १८० से ४५०अंश तक। समय ३० से ८० मिनिट।

वाष्प प्रयोगः—

(क) रशियन स्नान—एक कमरे को वाष्प के द्वारा ११० से १२० तक गर्म किया जाता है। समय १० से २० मिनिट।

(ख) वाष्प का सन्दूक—तापमान १०८ से १२०अंश तक। समय ८ से १५ मिनिट। गर्दन या आधे शरीर तक के लिये दिया जाता है।

(ग) स्थानिक वाष्प स्नान—एक सन्दूक में हाथों और पांवों को स्नान देने योग्य छिद्र कर लिया जाता है। तापमान ११० से १२० तक। समय ५ मिनिट से २० मिनिट तक।

इसी प्रकार अन्य स्नान निम्न लिखित प्रकार से हैं।

१. भीगा कपड़ा ओढ़ना—

एक चटाई या चार पाई पर दो तीन मोटे कपड़े या रजाईयां बिछा कर उस पर दो मोटे फ़लालैन के कम्बल बिछाएं और इन सब के ऊपर एक कपड़ा भिगो कर (यदि यह कपड़ा मोटा और सन का होतो अच्छा है) ज़रा निचोड़ कर बिछा दें। फिर रोगी को कपड़े उतार कर उस पर चित्त लिटा दें और यह कपड़ा और कम्बल उस पर लपेट दें। सिर तकिये के सहारे ज़रा ऊंचा रहना चाहिए। ख्याल रहे कि मरीज़ के पाओं भी उस कपड़े से भली प्रकार ढक जायें। यदि शरीर के साथ पांव गरम न हों तो गरम पानी का एक बरतन

भर कर पांवों के साथ रख देना चाहिए और यदि उस के सिर दर्द भी हो तो ठंडे पानी की पट्टियां पेशानी (माथे) पर लगानी चाहिएं। इस का साधारण समय ४० से ६० मिनट तक का है। इस के पश्चात् जैसा उचित हो डुबकी लगवाना, आधा स्नान कराना, गीले कपड़े या तौलिये से शरीर मलना इत्यादि का प्रयोग करें। और जैसा बहुत लोगों का विचार है इस गीले कपड़े से पसीना लेने का तात्पर्य नहीं है यदि थोड़ा बहुत आ जाये, तो कोई डर नहीं, परन्तु इस का असल मतलब तो यह है कि शरीर पर कुछ गरमी हो जाय जिस के लिए ३० मिनट या इस से भी कम समय पर्याप्त होता है। और यदि शीघ्र गर्म न हो धीरे धीरे गर्म हो और कष्ट से गर्म हो तो एक घण्टा समय भी थोड़ा है कभी २ तो गर्म पानी की बोतलें भी पहलुओं और पाओं के पास रखनी पड़ती हैं। जब बुख़ार की गर्मी को ठंडा करने की आवश्यकता हो तो ओढ़ने के कपड़े में अधिक

पानी रहने देना चाहिए। शरीर यदि बहुत गर्म हो तो दो भीगे हुए कपड़े ओढ़ने चाहिएं। पुरानी बीमारियों में जब खून को त्वचा की ओर लाने की आवश्यकता हो तो इस कपड़े को बिलकुल निचोड़ कर रोगी के ऊपर डाल दें, उस के ऊपर और बहुत से कम्बल और रज़ाइयां डालदें।

२. मध्यभाग पर भीगा कपड़ा ओढ़ना

यह स्नान बिलकुल उसी तरह होता है जैसे पहला, भेद केवल इतना है कि इस में गीला कपड़ा शरीर के मध्यभाग पर ही लपेटा जाता है। यह स्नान केवल उन कमज़ोर रोगियों के लिए है जो पहले को न सहार सकें।

३. पेडू स्नान

एक गोल या चौकोर टब या हौज़ इस के लिए अच्छा होता है, यदि किसी और प्रकार का भी हो तो कोई हानि नहीं। परन्तु इतना अवश्य हो कि रोगी उस में आराम से टांगे फैला कर

बैठ सके इस टब में इस कद्र पानी होना चाहिए कि रोगी की नाभी तक आ सके। जब रोगी इस टब में बैठा हुआ हो तो अपने हाथ से शरीर के उन भागों को जो पानी में डूबे हुए हैं मले और एक सेवक शरीर के ऊपर के भागों को मलता रहे।

४. कटि स्नान

इस के लिए कोई छोटे किनारों वाला टब पर्याप्त है। यदि इस टब का पीठ वाला किनारा सीधा और भूमि से चार पांच इञ्च उठा हुआ हो तो और भी अच्छा है। इस टब में पानी उतना होना चाहिए जितना कि पेट के निचले हिस्से और कूल्हों तक आसके। रोगी को इस टब में बैठा कर कम्बल ओढ़ादो और अपने हाथों से मलो—समय २ से १० मिनिट।

५. पाद स्नान

इस के लिए तो कोई छोटा बर्तन या एक बाल्टी पर्याप्त है। इस बर्तन में पानी इतना होना चाहिए कि पांव के गिट्टे तक डूब जायें परन्तु

बहुत रोगी या दुर्बल मनुष्य के लिए पानी आधे इञ्च से लेकर एक इञ्च तक डालना चाहिए। रोगी को चाहिए कि उतना समय पाओं को हिलाता रहे। गर्मी के दिनों में तालाब या नहर में फिर कर स्नान करना चाहिए।

६. पाद शीतोष्ण स्नान

एक पात्र में ऐसा गर्म पानी डालें जिस को पांव सहार सकें, फिर पाओं को उस में ५ या १० मिनिट तक डाल रखें। फिर इस में से निकाल कर पाओं को सरद पानी में डाल दें और फिर पौंछ कर सुखा दें।

७. गीले कपड़े के ऊपर से शरीर मलना

इस काम के लिए एक इतने गीले कपड़े का प्रयोग करना चाहिए कि उस से पानी टपकता हो। रोगी टब में खड़ा रहे उसे शरीर पर ग्रीवा से लेकर नीचे तक कपड़ा ओढ़ा दें। एक नौकर पीठ की ओर से मले और रोगी अपने आप सामने से।

८. लोटे से स्नान

यह केवल एक लोटे से छाती और कंधों पर पानी डालना है।

९. धार स्नान

रोगी को एक टब या हौज़ में बिठा कर ऊंचाई से एक पात्र द्वारा धार बांध कर उस के शरीर पर जल डालते हैं।

१०. स्पञ्ज या तौलिया स्नान

यह इस प्रकार किया जाता है कि किसी मोटे झोटे भीगे हुए तौलिए या स्पंज से शरीर को मलते हैं और फिर सूखी चादर या तौलिए से शरीर को पोंछ देते हैं।

११. छिड़काव स्नान

यह इस प्रकार करवाते हैं कि रोगी के बिस्तर पर एक रबड़ की चद्दर बिछा कर रोगी को उस पर लिटा देते हैं और फिर किसी पात्र से उस के शरीर पर पानी छिड़कते हैं।

१२. गोता स्नान

यह स्नान बहुत कम करवाया जाता है। यदि कोई इस का प्रबन्ध कर सके तो बहुत लाभदायक है। इस के लिए एक इतना बड़ा हौज़ चाहिए कि जिस में मनुष्य सम्पूर्ण रूप से डूब सकता हो। एक बड़े पीपे को बीच में से कटवा कर बराबर दो भाग करवा लें। इन में से एक में पानी भरवा कर बैठ जाने से अच्छा गोता लग सकता है।

१३. टपका स्नान

यह स्नान निम्न प्रकार होता है। एक बर्तन जिस में टूंटी लगी हुई हो ठंडा पानी भर लें उस टूंटी के आगे कोई ऐसी चीज़ लगाएं कि पानी की बूंदें उस से टपकें। यह स्नान सुस्त पट्ठों की बीमारी या झूले इत्यादि की अवस्था में करवाया जाता है। इस प्रकार पानी डाल कर शरीर को खूब ज़ोर से मलना चाहिए।

१४. पसीने का स्नान

इस के लिए सिवाय एक गीले कपड़े के अन्य

सब कुछ उसी प्रकार है जैसा कि पहले स्नान में लिखा गया है। इस प्रकार लपेटने से कई रोगियों को एक घण्टे से भी कम समय में पसीना आजाता है और कईयों को बहुत देर में आता है।

सब प्रकार के स्नानों में यह बड़ा कठिन स्नान है। इस की आवश्यकता भी बहुत थोड़ी पड़ती है। बहुतसी अवस्थाओं में गर्म पानी अथवा पानी की भाप से ही पसीना आ जाता है।

१५. शिरः पृष्ठ स्नान

रोगी एक बिस्तरे या चटाई पर लेटा रहता है। इस के कंधों के नीचे एक तकिया रखा जाता है और उस का सिर ज़रा लटक कर एक बर्तन में पड़ता है जिस में दो या तीन इञ्च पानी पड़ा हुआ होता है। यह स्नान सिर आंखों और कानों की बीमारियों में बहुत लाभ दायक होता है और कभी कभी २ स्नान के स्थान पर गीला कपड़ा या टोपी भी सिर पर पहना देते हैं।

१६. शिरः पृष्ठ सेचन।

रोगी को उलटा लिटा देना चाहिए। उस का मुंह नीचे की ओर रहे। नौकर उस के सिर को जो कि बिस्तरे से आगे निकला हुआ हो सम्भाल रखे। रोगी की ग्रीवा पर एक कम्बल या चद्दर डाल दें ताकि पानी शरीर या बिस्तरे पर न फैले। सिर के नीचे एक टब रख दें ताकि पानी उस में पड़े। फिर सिर के पिछले भाग और कनपटि पर कुछ मिनट तक या उतनी देर तक पानी की धारा बराबर डालते रहें जितनी देर तक सिर खूब ठंडा न हो जाय। सख़्त सिर दर्द के लिए यह बहुत लाभ दायक है। हैज़े के आरम्भ और गर्मी के बुख़ारात की आरम्भिक अवस्था में भी लाभदायक है। हिस्टीरिया— पैरेलिसिज़— नकसीर—दिमाग़ की गर्मी—इत्यादि के लिए यह लाभदायक सिद्ध हुआ है।

१७. वर्षा स्नान।

इस के वर्णन की विशेष आवश्यकता नहीं।

इस को चिकित्सा में नहीं गिना जाता फिर भी इस से रोगियों को आराम हो जाता है। जिन का खून सिर की ओर ज़्यादह चढ़ता हो उन को इस पानी की धारा अधिक देर तक सिर पर डालनी चाहिए। कमज़ोर मनुष्य को यह स्नान नहीं करना चाहिए जब तक कि वह इस के योग्य न हो जाय। इसके पूर्व अपने पाओं को गर्म पानी में डाल रखना दुर्बल मनुष्यों के लिए लाभदायक है। गर्म पानी में गिट्टे डूब जायें। खड़ा होने से कमज़ोर आदमियों के लिए सिर पर इसकी धारा का सम्भालना तकलीफ़ का कारण नहीं होता

१८. नाक, मुख और आंखों का स्नान

पानी धीरे से नाक के रास्ते खींच कर मुख के रास्ते निकाल देते हैं। मुंह में पानी डालते हैं। पानी के छींटे आंखों पर मारते हैं। सूजन और अन्य कई बीमारियों के लिए यह स्नान लाभ दायक है।

१९. बाजुओं और टांगों का स्नान

किसी टब में इतना पानी डाल कर कि ये

अंग उस में डूब सकें, इन अंगों को उस में डाल रक्खें। यह स्नान बुखार पुराने फोड़ों और जोड़ों की सूजन के लिए अच्छा है।

२०. वाष्प स्नान

इस के लिए गर्म की हुई ईंटें या पत्थर पानी में डाल कर वाष्प बनाते हैं। स्नान इस प्रकार कराते हैं कि रोगी को एक चौकी पर बैठा देते हैं और ग्रीवा से लेकर नीचे तक एक कम्बल ओढ़ा देते हैं। एक छोटे टब या बाल्टी में एक सेर भर पानी डाल कर रोगी की चौकी के नीचे रख देते हैं। गर्म की हुई ईंटें या पत्थर एक एक करके उस पानी में डालते रहते हैं ताकि उस पानी से वाष्प उठती रहे। एक विधि यह भी है कि एक पात्र में जिस में आधे इञ्च की टूंटी लगी हुई होती है उस के साथ दो या तीन जोड़ लगते हैं। पात्र में पांच सेर पानी भर कर किसी चूल्हे या अंगीठी पर रख कर गर्म करते हैं और उसकी टूंटी के साथ यह जोड़ लगा देते हैं ताकि वाष्प उस चौकी

के नीचे जिस पर रोगी बैठा हुआ होता है पहुँच सके। यह वाष्प समय अनुसार अवसर पड़ने पर इस्तमाल की जाती है और दस मिनट से लेकर कभी २ आधे घन्टे तक भी इसका समय होता है।

२१. वायु स्नान

तमाम कपड़े उतार कर एक दम ठंडी या सरद हवा के तेज़ झोंकों में चले जाते हैं। यह कई अवस्थाओं में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इस से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। परन्तु इस समय तापमान ठीक होना चाहिए। रुधिर की गति को ठीक रखने के लिए व्यायाम करते रहना होता है। हाथ, कपड़े, तौलिये या नरम ब्रश से शरीर को मलते रहने से भी लाभ होगा।

२२. ठंडी पट्टियां

ये कपड़े की भीगी हुई पट्टियां शरीर के कमज़ोर, ज़ख्मी, दर्द करने वाले अंगों पर लगाई जाती हैं। जब ये पट्टियां सूख जायें तो इन

को बदल डालते हैं। और हमेशा समझदार डाक्टर ज़ख्मों और सूजे हुए स्थानों पर पानी की पट्टियां लगवाते हैं। कभी कभी इन पट्टियों पर सूखा कपड़ा डाल देते हैं और कभी नहीं भी डालते।

२३. भीगा कमर बंद

तीन चार गज़ मोटा या गाढ़ा कपड़ा इस काम के लिए उत्तम होता है। इस कपड़े का आधा भाग भिगो कर कमर के गिर्द नाभि तक नीचे बांधते हैं और आधा ऊपर लपेट देते हैं। ज्यों ज्यों यह सूखता जाता है उसको भिगोते जाते हैं। अक्सर अजीर्ण की अवस्था में इसका प्रयोग करते हैं। यदि इसकी आवश्यकता दीर्घ काल तक हो तो कुछ सप्ताह तक बंधवा कर फिर कुछ देर के लिए छोड़ देते हैं या प्रति दिन कुछ देर बंधा रहने के पश्चात् खुलवा देते हैं ताकि त्वचा गल न जाय और उस अंग में सरदी न पड़ जाये।

२४. सीना बन्द या सदरी

इस को वास्कट की आकृति में अलसी के

मोटे कपड़े की बनाते हैं। यह गर्दन से लेकर पसलियों के नीचे तक आती है। इस को इतना गीला रखते हैं कि इस से पानी न टपके, फिर इस को गले में पहन कर इस के ऊपर एक हल्की फलालैन की वास्कट पहनते हैं। इस को प्रति दिन दो या तीन वार बदलते हैं। विशेषतया इस को निमोनिया, दमा, क्षय और खांसी इत्यादि रोगों के लिए बरतते हैं।

२५. फोमैन्टेशन या टकोर

इस को पट्ठों के नरम करने के लिए इस्तमाल करते हैं। सिर दर्द इत्यादि में इस से आराम होता है। इस की विधि निम्न प्रकार है। किसी कपड़े को गर्म पानी में भिगो कर उन जगहों पर रखते हैं। परन्तु फलालैन के कपड़े को गर्म पानी मे भिगो कर और निचोड़ कर किसी दूसरे कपड़े या रूमाल में लपेट कर उस स्थान को भाप पहुंचाने से भी विशेष लाभ होता है। ऐसी टकोर साधारणतया ५ मिनिट से लेकर १५ मिनिट तक

करनी चाहिये। सख़्त कब्ज़, हिस्टीरिया इत्यादि बीमारियों में लाभ होता है।

२६. रैफ़ीग्रेशन

यह इस प्रकार बनाते हैं कि दो भाग नमक और एक भाग पिसी हुई बर्फ़ मिला कर गोला बनाते हैं और उसको एक बारीक रूमाल में लपेट कर उस स्थान पर जहां जलन या कष्ट हो लगाते हैं। यह उङ्गलियों या हाथों और आंखों की पलकों की सूजन, सख़्त जलन, फोड़ों, आधे सिर की दर्द और गठिये की अवस्थाओं में लाभ पहुँचाता है।

२७. गीले कपड़े का स्नान

इस के लिए किसी सेवक की आवश्यकता नहीं होती। विधि इस प्रकार है कि सोने वाले कोट की तरह का एक खुली आस्तीनों वाला लिनन का कोट बनाते हैं। रोगी सोने से पूर्व उस को भिगो कर पहन कर सो जाता है और फिर दूसरे कपड़े लपेट लेता है।

२८. पिचकारी

यह स्नान गर्म या ठंडे पानी से किया जाता है। पहला तो दर्द को बन्द और अंतड़ियों को खाली करने के लिए होता है और दूसरा इस को बन्द और अंतड़ियों को बल देने के लिए करते हैं। पहले के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए और दूसरे के लिए बहुत थोड़ा या इतना जिस को अन्तड़ियां सम्भाल सकें।

जल चिकित्सा सम्बन्धी सावधानताएं—

खाना खाते ही स्नान नहीं करना चाहिए। स्नान उस समय करना चाहिए जिस समय मेदा खाली हो। यदि खाने के पश्चात् ही स्नान करना हो तो कम से कम तीन घण्टों के पश्चात्। बहुत गर्मी या बहुत पसीना ठंडे पानी से स्नान करने में बाधा नहीं डालता, परन्तु मसाम (त्वचा के छिद्र) बन्द नहीं होने चाहिएं। स्नान करने वाला रोगी थका

हुआ न हो । ठंडे पानी से स्नान करने के लिए शरीर में हल्की गरमी होनी चाहिए। स्नान के पश्चात् व्यायाम करना चाहिए । ख़ुश्क पोशाक पहिने । आग तापना आवश्यकतानुसार होना चाहिए, फिर धीरे धीरे उस की गर्मी कम करते जायें। दुर्बल और रोगी मनुष्य को फव्वारे के नीचे और तालाब में गोता लगा कर स्नान नहीं करना चाहिए । जिन रोगियों का क्षय दूसरे अथवा तीसरे दर्जे में हो, जिन का ख़ून सिर की ओर अधिक जाता हो, जिन के मेदे से ख़ून निकलता हो जिन की अंतड़ियां या रहम (गर्भाशय) अपने स्थान पर न हों, स्त्रियों को मासिकधर्म की अवस्था में, किसी कष्टकी अवस्था में, बुख़ार इत्यादि के हटने ही, किसी जोश की अवस्था में, शराब के नशे की अवस्था में अथवा हैज़ा, डायबेटीज़ और सख़्त फोड़ों की अवस्था में भी इन स्नानों को नहीं करना चाहिए । यदि उक्त बीमारियों में से किसी में शरीर पर बुख़ार की सी गर्मी हो

तो गर्म जल या स्पञ्ज से स्नान करना चाहिए। बुखार के हटते ही गीला कपड़ा ओढ़ना बहुत हानिकारक है। स्नान करते ही खाना आरम्भ नहीं कर देना चाहिए।

तीव्र और पुरातन दोनों प्रकार के रोगों में जलचिकित्सा का उपयोग होता है।

तीव्र रोग

तीव्र आमवात। गर्म कम्बल का वेष्टन बहुत ही उपयोगी है। आवश्यकता के अनुसार दिन में दो बार किया जा सकता है।

आमवातिक तीव्र ज्वर

इन रोगों में इतनी जल्दी मृत्यु हो जाती है कि शीघ्र बलशाली उपायों का प्रयोग करना पड़ता है।

w. arme strong. इस अवस्था में शीत स्नान के तात्कालिक प्रयोग को अधिक महत्व देता है। उसका विश्वास है कि इन रोगों में ठण्डे पानी का वेष्टन करने या स्पञ्ज करने में

बरबाद किया हुआ समय घातक होता है। तीव्र आमवात में जब कभी तापमान १०५° हो जावे तो पांच आदमी रोगी को सावधानी से एक चादर में उठावें। जिनमें से चार कोणों पर और पांचवां सिर को सहारा दे। एक स्नान पात्र बिस्तर के पास ही रखना चाहिये जिसमें ६२° का जल १८ इञ्च से दो फीट तक गहरा हो। इस में ठण्डा पानी या बरफ़ मिला कर ७२° तक ठण्डा करना चाहिये। जब तक रोगी का तापमान १००° से कम न होवे तब तक उसी में लिटाना चाहिये। स्नान के समय सिर पर बर्फ़ रखनी चाहिये। हृदय की हालत पर विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इसी पर स्नान का काल निर्भर है। यह लगभग १० से १३ मिनिट तक होता है। रोगी को सावधानी से चद्दर में उठा कर बिस्तर पर गर्म कम्बल पर रख दें। पैरों के नीचे गर्म पानी की बोतल हो, थोड़ी देर बाद चद्दर और कम्बल दोनों निकाले जा सकते हैं। ज्यूंहि तापमान १०५° हो, स्नान

दुबारा करना चाहिये। W. arme strong २४ घण्टे में ८ बार तक स्नान कराते हुए देखा है। जिनके अन्त में रोगी अच्छा हो गया।

आन्त्रिक ज्वर

प्रामाणिक लेखकों की इस रोग में शीत स्नान, शीत वेष्टन, शीत तौलिये, शीत स्पञ्ज के पारस्परिक लाभों के विषय में विभिन्न सम्मतियां हैं। किन्तु प्रायः सब ही इस बात में सहमत हैं कि इन तरीकों से लाभ बहुत होता है।

नियमित स्नान चिकित्सा के पोषक कहते हैं कि जब तापमान १०३° से ऊपर हो तब रोगी को ९०° जल के स्नानपात्र में डुबोना चाहिये। जल का तापमान ७०° से ६०° तक ठण्डा करना चाहिये। स्नान का समय १० से २० मिनिट। स्नान की विधि पूर्व निर्दिष्ट। इस चिकित्सा पर यह आक्षेप किया जाता है कि इसे करने के लिए बहुत सावधानी तथा चातुर्य की आवश्यकता है। यथा जब आंतों में विषमता हो तब अनु-

चित गति से बहुत हानि की सम्भावना है। अतः निम्न उपायों के प्रयोग को अधिक पसन्द किया जाता है।

शीत वेष्टन—पूर्व वर्णन के अनुसार इसका प्रयोग तापमान के १००° से कम होने तक करना चाहिये।

शीत तौलिये—मोटे तौलिये २ फीट लम्बे एक फुट चौड़े साधारण पानी में निचोड़ कर छाती के ऊपर के सिरे से कोष्ठ के नीचले भाग तक लगाये जाते हैं। उनको फ़लालैन के टुकड़े से ढक देते हैं। कुछ २ मिनिटों बाद ठण्डे या बर्फ़ वाले पानी में निचोड़े तौलिये बदलने चाहियें। इसमें रोगी को गति देने की आवश्यकता नहीं है। निरन्तर इन्हें प्रयोग किया जा सकता है।

शीत या बर्फ़ के पानी से स्पञ्ज करना—स्पञ्ज प्रति घण्टा किया जासकता है। शरीर के विभिन्न भाग स्पञ्ज करके ढक देने चाहियें। रोग की पराकाष्ठा की हालत में बर्फ़ का वेष्टन करना

चाहिये, परन्तु साधारणतया यह ऊपर के प्रयोगों की अपेक्षा न अधिक सुगम है और न अधिक उपयोगी है। शरीर पर ठण्ड के इन प्रयोगों में सिर को निरन्तर बर्फ़ की टोपी से या ठण्डे पानी के थैले से ढक रखना चाहिये।

स्कार्लेटफ़ीवर— यह रोग जब बाहर को ज़ोर से न फूटे किन्तु तापमान इतना ऊँचा हो कि रोगी को मृत्यु का डर हो तो आमवातिक तीव्र ज्वर की चिकित्सा करनी चाहिये। स्नान एक मात्र उपाय है। ठण्ड देने वाले अन्य हलके उपाय लाभ कर नहीं हैं।

टाइफ़स फ़ीवर

इस में शीतवेष्टन उपयोगी है।

निमोनिया

निमोनिया और बच्चों के डब्बे (Broncho neumonea) के रोग में शीत तौलिये अत्यधिक उपयोगी हैं। जब कभी तापमान १०२ अंश से ऊपर हो तो इनका प्रयोग करना चाहिये। तरुण

मनुष्यों में शीत का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। किन्तु जब कभी हृदय उच्चतापमान के कारण गिरता मालूम पड़े तब शीत वेष्टन और शीत तौलिये प्रयोग करने चाहियें। रोग की पराकाष्ठा की हालत में जब तापमान अत्युच्च हो तब बहुत सावधानी से शीत स्नान करावें। ठण्डे जल की बस्ती कई बार देने से तापमान गिर जाता है।

यूरीमिया

गर्म कम्बल वेष्टन, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, इस रोग में कभी २ उपयोगी है। किन्तु उतना उपयोगी नहीं है जितना विस्तरे में उष्ण वायु का स्नान या वाष्प स्नान हैं। जब अन्य उपाय निष्फल हुए हैं तब कई बार इन का लाभ देखा गया है। विशेषतया स्कार्लैट फ़ीवर के पश्चात् होने वाले वृक्क शोथ और गर्भ वेदना में इन का लाभ देखा गया है।

तीव्र ग्रन्थि शोथ

स्थानिक गर्म वायु के स्नान से या वाष्प स्नान

से एक दम अच्छा होता हुआ देखा गया है। तीक्ष्ण सम और चिरस्थाई रोग— आमवात या ग्रन्थि-वात में व्यापी या स्थानिक गर्मवायु स्नान या वाष्प स्नान से लाभ होता है। ग्रन्थिवात के रोगियों में वाष्प अधिक उपयोगी है। और खनिज जलों के साथ इसका प्रयोग अमूल्य है।

Lumbago, मांस शोथ, गृध्रसी, neuralgia, neuritis, को भी इन उपायों से, गर्म भूजल के द्वारा, नलिका स्नान (Douche) से, तथा Aix douche से चिकित्सा की जाती है। गृध्रसी की अधिक चिरस्थाई हालतों में स्कौटिश डूश से लाभ होता है। Rheumatoid Artheritis यदि आमवातिक या ग्रन्थिवात के रूप का हो तो उष्ण शुष्क वायु के स्थानिक प्रयोग से लाभहोता है। यदि साथ में निरन्तर धारा स्नान, नाडिव्रणसम-नलिका स्नान, या विद्युत् स्नान भी दिया जाय तो लाभ विशेष होता है। वातनाड़ियों के रोग के शुद्ध रूप में गर्म वायु का कम लाभ है और प्रयोग

में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। विद्युत् स्नान अत्यन्त लाभप्रद है । वातनाडि शोथ (Neuritis) में पीड़ा स्थान पर राई का प्लस्तर विशेष लाभ देता है । मृदु मेरु के मृदु स्थानों पर विशेष लाभ देता है। इन में नाड़ीव्रणसम विद्युत् स्नान भी दिया जाता है।

त्वक्‌रोग

शुष्क पामा आदि रोग उष्ण शुष्क वायु से अच्छे होते हैं । अधिक शोथ युक्त हालतों में वाष्प सन्दूक स्नान या वाष्प का स्थानिक प्रयोग करना चाहिये । चिरस्थाई मधुमेह, वृक्क असमर्थता, दबा हुआ ग्रन्थिवात , आदि आत्मजन्यविष के अन्य रूपों में वाष्प स्नान या उष्ण वायु स्नान निश्शङ्क दिया जा सकता है ।

न्यूरेस्थीनिया

सूची स्नान, स्कौटिश डूश, राई के प्लस्तर का प्रयोग पोषकग्रैवेयवातनाडिपुञ्ज, आमाशय और जिगर पर करें ।

अर्शस्

इस में उर्ध्ववर्ती नलिका स्नान दें। श्वेत प्रदर, अनियमित ऋतु आदि गर्भ सम्बन्धी रोगों में कटि स्नान (sitz bath) और उर्ध्ववर्ती नलिका स्नान दें।

स्थूलता

इस में सूची स्नान, मेरु सम्बन्धी नलिका स्नान, Aix douche, स्कौटिशडूश दें।

मलबन्ध

इस में स्कौटिशडूश, ठण्डा मेरु सम्बन्धी नलिका स्नान दें और आंतों को धोने के लिये पानी की कई बस्तियां दें।

बर्फ़

अन्तः तथा बाह्य प्रयोग किया जा सकता है। मुख तथा टौन्सिल, गला, आमाशय की शोथ सम्बन्धी और रक्त स्राव की अवस्थाओं में और वमन की हालतों में भी बर्फ़ चूसने से लाभ होता है। बर्फ़ तापमान को भी कम करता है।

कभी २ हिचकी को भी रोकता है। गुदा में रखने से तापमान कम करता है।

बर्फ़ के बाह्य प्रयोग

शोथ तथा ज्वर संबन्धी रोगों में सिर पर रखना चाहिये। तीव्र टौन्सिल में गले पर। मेरु-दण्ड पर और एपिगैस्ट्रियम पर रखने से हिचकी बन्द होती है। फेफड़े और आमाशय से रक्त स्राव होने पर इन पर बर्फ़ रक्खा जाता है। बाह्य तथा आन्तर हृदयावरणशोथ में हृदय पर थोड़ी देर तक प्रयोग करने से लाभ होता है। ग्रन्थियों के और वात नाड़ियों के तीव्र शोथों को भी हटाता है। आमवातिक सन्धिशोथ, विशेषतः गोड़ों के शोथ की तीव्र और तीव्रसम अवस्थाओं में दिन में दो बार आध घण्टे से घण्टे तक बर्फ़ की मालिश से बहुत लाभ होता है। परिचारक अपने हाथ में बर्फ़ के चपटे टुकड़े को लेकर धीरे २ रगड़ता है। गर्भाशय तथा डिम्बकोष सम्बन्धी अंगों को उत्तेजित करने के लिये मेरुदण्ड के नीचे के भाग पर बर्फ़ के थैले

का प्रयोग करे। कोष्ठ के नीचे के भाग पर प्रयोग करने से गर्भाशय का रक्त स्राव बन्द हो जाता है। स्ट्रैंगुलेटिड हर्निया की प्रारम्भिक अवस्था में प्रयोग से कभी २ लाभ होता है और शल्य कर्म के बिना ही हट जाता है।

खनिज जल

खनिज जल उन प्राकृतिक जलों का नाम है जिन का उपयोग रोगों की चिकित्सा में आन्तरिक और बाह्य तौर पर अर्थात् पीने और स्नान के रूप में किया जाता है। जिन का असर उन में वर्तमान लवण या गैस से या तापमान के कारण होता है। खनिज जलों के प्रयोग में तीन अंशों का ध्यान रखना चाहिये।

१. औषध तथा गति सम्बन्धी

लवण तथा गैसों के घोलों के पीने के द्वारा शरीर में कुछ कार्य हो जाते हैं, साथ ही उन में स्नान करने से कुछ गैसें त्वचा से चूसी जाती हैं।

२, जल चिकित्सा सम्बन्धी

पिये हुए जल का निश्चय ही चिकित्सा सम्बन्धी महत्व है। तथा मज्जन, नलिका स्नान, घर्षण आदि भिन्न २ जल चिकित्सा सम्बन्धी क्रियाओं में प्रयुक्त जल के तापमान पर भी ध्यान रखना चाहिये।

३. जल वायु, भोजन, तथा मानसिक अंश

विश्राम, वायु तथा दृश्य में परिवर्तन, साधारण कर्मों का सामयिक त्याग, नियमित भोजन तथा संयम का भी वाञ्छित फल लाने में कम असर नहीं है।

खनिज जल कई प्रकार से असर करता है

१. ताप संबन्धी प्रभाव

२. दबाव तथा यान्त्रिक प्रभाव

३. जलों में विद्यमान लवण तथा गैस

४. जलीय पृष्ठों से उठी हुई रेडियम की प्रसृत शक्ति का नासिका और त्वचा से श्वसन।

यह माना जाता है कि जल में वर्तमान लवण त्वचा द्वारा अन्दर नहीं जाते इस लिये खनिज जलों

के विभिन्न लवण स्नान द्वारा त्वचा की वात-नाड़ियों और रक्त वाहिनियों पर प्रभाव पैदा कर के ही शरीर पर असर डालते हैं। दूसरी तरफ़ गैसें त्वचा द्वारा चूसी जाती हैं। इस प्रकार खनिज स्नान चिकित्सा संबन्धी असर पैदा करने में बहुत बड़ा भाग लेते हैं।

खनिज जलों का श्रेणीकरण कठिन है और विभिन्न प्रयुक्त तरीकों पर कोई न कोई आक्षेप उठाया ही जा सकता है, तथापि सामान्यतया रासायनिक दृष्टि से निम्न श्रेणियां बनाई जाती हैं

(१) साधारण उष्ण जल। इस में नत्रजन तथा रेडियम का प्रसार करने वाले जल लिये जाते हैं।

(२) खारा नमकीन जल

(क) कार्बनिकाम्ल गैस वाला।

(ख) कार्बनिकाम्ल गैस रहित।

(ग) ब्रम और तैल सहित।

(३) क्षारीय जल

(क) साधारण क्षारीय

(ख) नमक युक्त क्षारीय

(४) गन्धकित नमकीन जल

(क) साधारण गन्धकित (कटु जल)

(ख) क्षारीय गन्धकित जल

(५) chalybeate waters.

(६) गन्धक जल

(क) साधारण गन्धक

(ख) नमकीन गन्धक

(७) चूने के जल तथा भौम जल

(१) साधारण उष्ण जल पीने से आमाशय धुल जाता है, धातु पाक में वृद्धि होती है। शरीर में से गन्दा पदार्थ बाहिर निकलता है। पित्त, मूत्र आदि के स्राव में वृद्धि हो जाती है। स्नान करने से त्वचा नरम पड़ती है, त्वचा में रक्त भ्रमण बढ़ जाता है। वात संस्थान और रक्तसंचार गत उत्तेजना शान्त होती है।

जिन जलों में नाईट्रोजन अधिक घुली होती है वे ग्रन्थिवात और आमवात पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। इन जलों से रेडियम का प्रसार भी होता रहता है। क्योंकि नाईट्रोजन में वर्तमान हीलियम पदार्थ रेडियम का अच्छा वाहक है। इन जलों में केवल २० मिनिट तक ही नहाने से रेडियम के कारण रक्त और मूत्र विशेष क्रियाशील हो जाते हैं।

डा० मैकावर (Dr. Mackower) ने विश्लेषण द्वारा पता लगाया है कि जिस जल में १.१ मात्रा रेडियम की है उस के पृष्ठ पर की वायु में ७.● मात्रा रेडियम की होती है।

रेडियम के प्रसार श्वास द्वारा या जल पान द्वारा किसी प्रकार लिये जावें वे फेफड़ों से, त्वचा से और वृक्क से बाहिर निकलते हैं। इस कारण इन जलों के पीने से मूत्र बढ़ जाता है। वृद्धि की मात्रा १० से २० प्र० श०। यदि पानी खाली पेट पिया जावे तो मूत्र की मात्रा और अधिक बढ़

आती है। यूरिक एसिड का बहिः स्राव १० से १५ प्र० श० बढ़ जाता है। कार्बोनिक एसिड २० से ६५ प्र० श० बढ़ कर श्वास के द्वारा निकलने लगता है। पसीने के विष अधिक मात्रा में निकलते हैं। (जैसे यूरिया ० ५ से ० ६ और यूरिक एसिड)। आमाशय और ग्रहणी के कार्य को उत्तेजना देते हैं। सुविलेय लैकृम यूरेट को दुर्विलेय लैकृम यूरेट में बदलने से रोकते हैं।

ग्रन्थिवात—में सञ्चित पदार्थ को विलीन करके दर्द, सूजन और कठोरता को दूर करते हैं।

आमवात— में शोथ को रोक कर दर्द को कम करते हैं।

वातनाडिक शोथ—में दर्द को कम करते हैं और वात नाड़ियों के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं।

प्रमेह (शर्करामेह)—में खांड को कम करते हैं। एसीटोन और डाइ एसिटिक एसिड को कम करते हैं। भार बढ़ाने में सहायक हैं। ओषजन के कार्य को बढ़ाते हैं। कर्बन की विषों को बाहिर

निकालते हैं। मूत्र में ग्लाइकोजन आती हो तो उसे कम करते हैं।

फेफड़ों, त्वचा और किसी हद तक गुर्दों से भी विषों को बाहर निकालते हैं और मूत्र में जाते हुए एल्ब्यूमिन को कम करते हैं। संकुचित वृक्क में मूत्र के आपेक्षिक गुरुत्व को घटाते हैं। पुरुषत्व को बढ़ाते हैं।

(२) खारे नमकीन जल। इन में प्रायः साधारण नमक बहुत मिलता है। पीने से आमाशय और आंतों के स्रावों को बढ़ाते हैं। धात्वन्तर परिणाम को बढ़ाते हैं। रक्त संचार को (विशेष तया पोर्टल संस्थान के रक्त संचार को) बढ़ाते हैं। कर्बोनिक एसिड के साथ मिल कर आमाशय और आंतों पर बहुत प्रभाव करते हैं। इन जलों से स्नान करने से त्वक्गत वातनाड़ियों तथा सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को उत्तेजित करते हैं। केन्द्रीय वातनाड़िसंस्थान की उत्तेजना के द्वारा अन्दर के अङ्गों पर विशेषतया हृदय पर प्रभाव उत्पन्न करते

हैं। कर्बनिकअम्लगैस की उपस्थिति में यह प्रभाव विशेष होता है। स्नान के साथ नियमित रूप से थोड़ी २ व्यायाम भी करनी चाहिये।

(३) क्षारीयजल—

(क) साधारण क्षारीय—इन में प्रधानतया सोडियम का कर्बनित और कार्बोनिक एसिड गैस होते हैं।

(ख) नमक युक्त क्षारीय—इनमें ऊपर के अतिरिक्त साधारण नमक अधिक होता है।

इन से ओगजन को तथा धातु परिणाम को उत्तेजना मिलती है। पित्त और लाला का स्राव शीघ्र होता है। मूत्रल हैं। अम्ल के विपरीत हैं। अच्छे विलायक हैं।

(४) गन्धकित नमकीन जल—

[क] साधारण गन्धकित [कटुजल]—इन में सोडियम और मैग्नीशियम के गन्धित होते हैं।

[ख] क्षारीय गन्धकितजल—सोडियम के कर्बनित, गन्धित् और हरिद् होते हैं।

कटुजल भोजन प्रणाली की श्लैष्मिक कला को उत्तेजित करते हैं। सोडे के कर्बनित और साधारण नमक डाल कर उन का कार्य बढ़ा दिया जाता है।

(५)Chalybeate Watersपोषण को बढ़ाते हैं। ओषजन के कार्य और ताप की मात्रा को बढ़ाते हैं। रक्त कणों की रचना को वृद्धि देते हैं। कर्बनिक अम्ल गैस की उपस्थिति से इन के स्नान से लाभ होता है।

[६] गन्धक जल

[ख] साधारण गन्धक वाले जलों का प्रभाव सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम के गन्धिदों के कारण या गन्धकित उद्जन की उपस्थिति के कारण होता है।

[ख] नमकीन गन्धक वाले जलों में पूर्व की अपेक्षा नमक अधिक होता है।

[७] चूने के जल तथा भौम जल—इन में चूने के कर्बनित, गन्धित और मैग्नेशियम के कर्बनित विशेष होते हैं। इन में पर्याप्त कार्बनिक एसिड गैस भी होता है। चूने के कर्बनित का भोजन प्रणाली पर शामक प्रभाव होता है। अम्ल विरोधी है। गन्धकित कुछ स्तम्भक है। कार्बनिक अम्ल का प्रभाव पहिले देखा जाचुका है। चूना अस्थिनिर्म्माण में सहायता देता है।

कुछ रोगों की चिकित्सा

यद्यपि रोगों का स्वरूप दिखलाते हुए गौण रूप से चिकित्सा का निर्देश भी कहीं २ कर दिया है, तथापि अनेक रोगों की चिकित्सा का केवल चिकित्सा की दृष्टि से पृथक् उल्लेख किया जाता है। आज कल भारत वर्ष में लूई कूने की जल चिकित्सा पद्धति का विशेष प्रचार है। जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में लूई कूने एक प्रसिद्ध व्यक्ति होते हुए भी Encyclopedia Britanica में Hydropathy में वर्णित व्यक्तियों में लूई कूने

का नाम तक नहीं है। मालूम होता है इस की प्रसिद्धि भारत वर्ष में ही विशेष है अन्यत्र नहीं। कुछ भी हो, इसकी चिकित्सा पद्धति से भी लोगों ने लाभ उठाया अवश्य है। यहां पर हम उसी की पद्धति के अनुसार चिकित्सा सम्बन्धी कुछ प्रयोग उद्धृत करते हैं।

इस पद्धति में चार प्रकार के स्नानों का ग्रहण है।

१. हिप-बाथ अर्थात् कटि और पेडू का स्नान।

२. सिट्ज़-बाथ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय की खलड़ी (Foreskin) का प्रक्षालन या मेहन स्नान।

३. स्टीम-बाथ अर्थात् वाष्प स्नान।

४. सन्-बाथ अर्थात् धूप का स्नान।

इन का वर्णन जल-चिकित्सा निबन्ध में आगे जाकर भली प्रकार कर दिया है।

ज्वर

साधारण ज्वर की हालत में हम दिन में दो तीन बार आधा आधा घण्टे का हिप बाथ लेकर रोग

से पीछा छुड़ा सकते हैं। पर सब प्रकार के तीव्र ज्वरों की हालत में स्थिति के अनुसार पन्द्रह मिनिट से लेकर तीस मिनिट तक का, सम्पूर्ण शरीर का स्टीम बाथ प्रति चौथे दिन लेना चाहिये। भाफ़ के स्नान में अन्दरूनी रोगों को उभार देने की विचित्र शक्ति है।

वाष्प स्नान के बाद बीस मिनिट से चालीस मिनिट तक का हिप बाथ लेना ज़रूरी है।

प्लेग

इस रोग में बहुधा गिलटियां निकल आया करती हैं। इन गिलटियों के नाश का उपाय यह है कि प्रतिदिन एक बार उसी फूले हुए स्थान पर थोड़ी देर (लगभग १५ मिनिट) भाफ़ दी जाय। तत्पश्चात् उस स्थान को ठण्डे पानी से खूब धोकर उस पर ठण्डे जल की एक गद्दी भिगो कर रख दी जाय, इस को फिर फ़लालैन की ऊनी पट्टी से ढक दिया जावे। गद्दी के भिगोने का क्रम पांच पांच मिनिट के अन्तर से आधे घण्टे तक जारी

रखना चाहिये। इस तरह कुछ ही दिनों में गिलटी शीघ्र फूट निकलेगी। यह ध्यान रखना चाहिये कि खून या पीप लगी हुई गद्दी पुनः हरगिज़ व्यवहार में न लाई जाय और यदि ऐसा करना अनिवार्य हो तो उस वस्त्र को साबुन और गरम पानी से अच्छी तरह धोकर उपयोग में लाना चाहिये।

ज्वर की हालत में रोगियों को पाख़ाना न होने की बहुधा शिकायत बनी रहती है। इस के लिये किसी दस्तावर दवा का सेवन नहीं करना चाहिये। मिट्टी की पट्टी रात्रि में सोते समय पेड़ू पर बांध लीजिये फिर सुबह दस्त की शिकायत न रहेगी। मामूली साबुन की बत्ती भी काम में लाई जा सकती है।

क्षयी

इस रोग का रोगी साधारण आदमियों की तरह केवल नासिका के छिद्रों द्वारा श्वास लेकर सन्तुष्ट नहीं होता परन्तु शरीर के अन्दर बढ़ी हुई अस्वाभाविक अर्थात् विकृत उष्णता उसे मुख द्वारा भी श्वास लेने के लिये बाधित करती है। रात्री के

साथ ऐसे रोगी मुख खोले रखते हैं, दिन में भी उन के आगे ओठों के पलड़े अस्वाभाविक तौर से खुले रहते हैं।

इस रोग में हिपबाथ से बढ़ कर कोई इलाज़ नहीं है। दिन में तीन चार बार स्नान विधि पूर्वक लेना चाहिये। सप्ताह में दो तीन बार सनबाथ, कटि और पेडू का स्नान लेना अति लाभप्रद है।

क्षय रोग में और सब ज्वरों की तरह भोजन से परहेज़ नहीं किया जाता। स्वाभाविक और प्राकृतिक भोजन पर रोगी को रखना चाहिये।

चेचक

यह एक बड़ा भयानक रोग है। क्योंकि इस में ज्वर का ताप १०५, १०६ अंश और कभी कभी १०७अंश तक जा पहुँचता है। जिनरोगियों कोज्वर की तीव्रता में दाने निकल आते हैं उन के जीवन का खटका कम हो जाता है, फिर शनैः २ शरीर की पोर पोर मोती के समान दानों से पिरोई जाती है।

पहिले तो चित्त के अस्वस्थ होते ही प्राणी को हिपबाथ लेना चाहिये। जो रोगी ज्वर की मामूली हालत में लुई कूने के बाथ लेंगे उन्हें शीतला का कभी खटका न रहेगा अथवा वेग शान्त होकर रोग का आक्रमण बहुत स्वल्प हो जायगा।

यदि दानें निकल आये हों तो ऐसी स्थिति में स्टीम बाथ और हिप बाथ बहुत ही मुफ़ीद साबित होते हैं। तीन चार दिन तक लगातार या एक दिन का अन्तर देकर स्टीमबाथ दिया जाय और हिपबाथ नियम पूर्वक कम से कम दो बार रोज़ दिया जाय। शरीर के छोटे २ हिस्से में भी फैली हुई गन्दगी वाष्प स्नान के द्वारा बाहिर निकल आती है, और शरीर की अतिरिक्त गरमी को हटाने के लिये हिपबाथ से बढ़ कर कोई इलाज ही नहीं है।

'दि न्यू साइन्स औफ़ हीलिंग' नामक पुस्तक में महाशय लूई कूने एक बड़ा सुन्दर उदाहरण लिखते हैं:—

"एक शिल्पकार के तीन बच्चे जिन की अवस्था सात, नौ और तेरह साल की थी शीतला रोग में ग्रसित होगये। बच्चे कठिन दशा में थे, त्वचा फफोलों से भरी हुई थी, पर केवल चार स्टीम बाथ और दस हिपबाथ देने का ज्वर पर इतना प्रभाव पड़ा कि सब भय जाता रहा। रुग्ण खाल स्वतः उतरने लगी। प्राकृतिक रुचिकर भोजन और स्वच्छ वायु ने उन्हें नीरोग करने में बड़ी सहायता पहुँचाई। वे दो सप्ताह में भली भांती चलने फिरने योग्य हो गये। रोगियों के शरीर के किसी भाग पर चेचक का एक दाग़ भी दिखलाई नहीं देता था। इन बच्चों के टीका लग चुका था तिस पर भी चेचक निकली।"

स्वप्नदोष

यह रोग उस घुन के समान है जो शरीर के अन्दर प्रवेश कर देहरूपी पिंजड़े को खोखला करके शीघ्र ही श्मशान पर पहुँचा देता है। जीवित रहने की अवस्था में भी पुरुष की स्थिति अर्ध मृतक

प्राणि के समान रहती है। युवावस्था में ही बुढ़ापा टपकने लगता है। नवयुवकों का सदा प्रफुल्लित रहने वाला चेहरा सूखे हुए फूल की तरह कुम्हला कर मलिन हो जाता है। काम करने की शक्ति नष्ट प्राय हो जाती है। स्मरण शक्ति का ह्रास होने लगता है। शारीरिक दुर्बलता बढ़ती जाती है और पाचन शक्ति का दिवाला निकलने लगता है। यह यथार्थ ही में ठीक है कि वीर्य ही शरीर का सर्वस्व है। वीर्य को परिपक्व होने से पहिले यदि शरीर से बाहिर ज़बरन निकाला जायगा तो इन परिणामों का होना अवश्यम्भावी है।

किसी कालेज के दो विद्यार्थियों की स्वप्नदोष के कारण बुरी हालत थी। उनको नियमपूर्वक चार मास तक सुबह शाम दो बार सिट्ज़ बाथ लेने की सलाह दी। खटाई, मिरच और देर में पचने वाले तथा उत्तेजक पदार्थ (जैसे घी, दूध, मलाई, मांस, मदिरा इत्यादि) आहार से पृथक् कर दिये गये। ये विद्यार्थी केवल सिट्ज़ बाथ की बदौलत तीन

ही मास में पूर्णतया इस रोग से छुटकारा पा गये।

संग्रहणी

इस रोग के लिए हिप बाथ अचूक इलाज है। जिस रोगी को एक एक दिन में साठ और सत्तर दस्त खाट पर पड़े पड़े होते थे हिपबाथ के प्रभाव से वह एक मास में रोटियां हज़म करने के काबिल हो गया। कितनी ही पुरानी संग्रहणी हो हिपबाथ द्वारा जड़ मूल से अच्छी हो जा सकती है। जिन्हें अवकाश हो वे दिन में तीन बार बाथ ले लेवें। पर यदि सम्भव न हो तो दो बार तो अवश्य लेना चाहिये।

कुष्ठ अर्थात् कोढ़

कुष्ठ रोग में भीतरी ज्वर की मात्रा अधिक होती है, पाचन शक्ति क्षीण होती जाती है, शरीर गलता जाता है, अतएव जल की जीवनी शक्ति शरीर में शक्ति का उत्पादन कर रोग को संहार कर अपनी जीवनी शक्ति का देह में संचार कर देती

है। दो तीन बार प्रति दिन सिट्ज़ बाथ और प्रति दूसरे दिन तीस चालिस मिनिट का हिप बाथ लेने, प्रातः काल बिलकुल नग्न होकर हवा और सूर्य की किरणों का सेवन करने, स्वच्छ जल वायु में रहने और सादा भोजन करने से कैसा ही कुष्ठ हो दूर हो सकता है। इस चिकित्सा द्वारा ऐसे २ रोगियों ने लाभ उठाया है जिनकी अंगुलियों की पोरें कट कट कर गिरने लगी थीं, भूख बन्द हो चुकी थी, समाज वालों ने छूत के डर से उन्हें अपने से पृथक् कर दिया था और वे तन क्षीण मन मलिन रात दिन मृत्यु की कल्पना किया करते थे। कोढ़ कोई छूत का रोग नहीं है। जल चिकित्सा करने पर तो यह डर सर्वथा ही निकल जाता है। कुष्ठ रोग के लिए, जल चिकित्सा, एक अपूर्व घातक उपाय है।

लक़वा

सप्ताह में तीन बार स्टीमबाथ (स्टीम बाथ लेते समय यह ध्यान रहे कि समूचे शरीर में वाष्प

स्नान ले चुकने पर लकुवा मारे हुए स्थान विशेष पर बफ़ारा ज़रूर लिया जाय) और प्रति दिन तीन चार सिट्ज़ एवं हिप बाथ को अदल बदल कर लेना लकुवे के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है।

उन्माद

इस रोग में हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ साथ साथ अच्छा फ़ायदा पहुँचा सकते हैं।

हिस्टीरिया

इस रोग में भी ये ही दोनों बाथ काम देते हैं। साथ ही प्रति दिन एक बार दस पन्द्रह मिनिट तक गरदन से लेकर पृष्ठ वंश के निचले भाग तक रगड़ कर खूब धोया जाय।

निद्रा नाश

नींद लाने के लिये ठण्डे जल के दोनों स्नान तो लाभप्रद हैं हीं, साथ ही एक उपचार और भी अधिक लाभप्रद है। रात्रि में ६ बजे के समय गले

पर गीली पट्टी लपेट उस पर फ़लालैन का एक हलका टुकड़ा बांधिए। गीली पट्टी कोई पांच मिनिट में खूब गर्म हो जावेगी और उसका जल सूख सा जावेगा। तब उस पट्टी को निकाल कर निचोड़ कर और फिर खूब ठण्डे पानी में डुबो कर इतनी गीली जो चूने न पावे, गरदन पर फिर वैसे ही लपेट कर फ़लालैन चढ़ा दीजिये। लगभग एक सप्ताह तक यह क्रम जारी रखने से रोगी दस पन्द्रह घन्टे तक सोने लगेगा। पट्टी का लाभ तो एक दो दिन में ही प्रत्यक्ष अनुभव हो जावेगा। नींद आने पर कभी जगाना न चाहिये। साधारण मात्रा से बहुत अधिक निद्रा लेकर जब रोगी खोई हुई शक्ति को पुनः अर्जित कर लेता है। तब वह स्वयं छः सात घण्टे सोने लगता है।

प्रत्येक प्रकार के मानसिक रोग में प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, ओस से भीगी हुई हरी हरी दूब पर नंगे सिर टहलना या दौड़ना बड़ा लाभ दायक है। जिन की आंखों, तलवों और हथेलियों में जलन रहती हो उन के लिये तो यह रामबाण औषधि के समान है।

आंखों के रोग

प्रातः काल सूर्योदय से प्रथम उठ कर जो आंखों को दस मिनिट तक ठंडे पानी से धोते हैं उन के नेत्रों में बहुधा कोई विकार नहीं उत्पन्न होता और वे वृद्धावस्था तक शुद्ध दृष्टि वाले रहते हैं।

जिन की दृष्टि में असमय ही धुंधलापन सा प्रतीत होता हो, अथवा आंखें लाल रहती हों वा उन में किसी प्रकार की पीड़ा रहती हो तो दिन में दो एक बार वाष्प स्नान लेकर दस पन्द्रह मिनिट नेत्रों को खूब ठंडे जल से धोना किसी भी नेत्र व्याधि को सर्वथा निर्मूल कर देता है।

सूरसी

लोकल स्टीम बाथ और हिप बाथ तथा सप्ताह में दो बार समूचे शरीर का वाष्प स्नान लेना चाहिये।

मिर्गी

सन् बाथ के साथ हिप बाथ कुछ दिनों तक लगातार लेना चाहिये। यदि धूप कुछ दिनों तक न निकले तो उस के बजाय सप्ताह में एक बार स्टीम बाथ लिया जा सकता है।

गर्मी, सुज़ाक, नपुंसकता, मधुमेह, पथरी,

इन रोगों में केवल सिट्ज़ बाथ लेना चाहिये उसी के द्वारा पूर्ण लाभ होता है, साथ २ चलने वाला लोकल स्टीम बाथ भी प्रति दूसरे दिन लेते रहना चाहिये।

घाव, चोट, दंश

अंगुलि या अंगूठा कट जाने पर अथवा पैर में ज़बरदस्त खुरेंचा लगने पर पांच सात परत की कपड़े की गीली गद्दी बांध उसे फ़लालैन की हलकी पट्टी से लपेटे रहिये। गद्दी खूब शीतल जल से डुबोई हुई होनी चाहिये। ज्यूंही गद्दी गर्म मालूम पड़ने लगे, उसे पुनः निचोड़ और भिगो कर वैसे ही धर लीजिये।

बरईया, मधुमक्खी या ऐसे ही मामूली विषैले जानवरों के काट लेने पर भी यह गट्टी बड़ा लाभ करती है।

कोई बड़ा घाव हो जाने पर अथवा सख्त चोट लगजाने पर तुरन्त उस अंग को जल में डुबो देना चाहिये। थोड़ी ही देर में दर्द बहुत कम हो जायगा। उसके बाद रोज़ घाव को ठंडे जल से धो उस पर मट्टी की पट्टी चढ़ा फ़लालैन, यदि फ़लालैन न मिल सके तो मामूली कपड़ा, लपेटे रहना चाहिये।

एक दस बारह साल के लड़के का हाथ शीशे के टुकड़े से कट गया। घाव दो इञ्च लम्बा गहरा था। बस फ़ौरन ही उस चोट लगे हाथ को ठंडे जल से भरी हुई पतीली में डाल दिया। कोई पांच मिनिट के अन्दर ही ख़ून निकलना बन्द हो गया उस पर फिर मिट्टी की पट्टी का लेप पन्द्रह दिनों तक जारी रक्खा गया जिस से न केवल चोट ही अच्छी हो गई, परन्तु उस चोट का कोई चिह्न भी शेष न रहा।

अन्दरूनी चोटों के लिये चोट के स्थान पर भफ़ारा लेना और सम्पूर्ण शरीर का स्टीम बाथ लेकर हिप बाथ लेना लाभदायक है।

सर्प इत्यादि विष भरे जन्तुओं के दशन करने पर उस स्थान को जल में बहुत देर तक डुबोये रखना चाहिये। बिच्छू के काटने पर केवल मिट्टी की पट्टी ही दर्द को दूर कर देती है।

कैसा ही कारबंकिल (पीठ का फोड़ा) फोड़ा हो, विषैला हो स्टीम और ठंडे पानी से धोने से निस्सन्देह अच्छा होजाता है। जल-चिकित्सा में यह शक्ति है कि हड्डी के अन्दर के विकृत पदार्थ अर्थात् पीब या मवाद को आसानी से बाहिर निकाल देती है।

आग से जल जाने पर भी भाफ़ लेना और ठंडे जल का स्नान लेना बहुत ही लाभ दायक है।

दमा

हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ सुबह और शाम लेने चाहियें। सन् बाथ के साथ हिप और सिट्ज़

बाथों का लेना रोगी को फ़ायदा पहुंचा सकता है।

अण्डकोषों में जल भरना (Hydrocele)

इस रोग में रोज़ उसी स्थान पर स्टीम बाथ लेकर हिप बाथ लेना चाहिये।

मासिक धर्म, श्वेतप्रदर, बांझपना

स्त्रियों के ऐसे सब रोगों के लिये सिट्ज़ बाथ से बढ़कर दूसरा कोई इलाज नहीं है। छः महीने लगातार दोबार सिट्ज़ बाथ लेने से बांझ स्त्रियां गर्भ धारण कर सकती हैं। मासिक धर्म होने के अवसर पर बाथ चार दिनों तक बंद रखना चाहिये।

मलबन्ध

प्रातः काल सूर्योदय होने से कुछ पहिले उठकर, प्यास हो अथवा न हो, एक गिलास ठंडा पानी पीलेना चाहिये। कोठे की सख़्ती के कारण एक गिलास कुछ असर करता हुआ न मालूम पड़े तो एक और पीलें। ऐसा क्रम जारी रखने से कभी

भी पाखाने की शिकायत न उठानी पड़ेगी, पेट साफ़ रहेगा और भूख खूब लगेगी। प्रातः काल सोकर उठते ही बिना कुछ खाये गिलास दो गिलास जल पी लेना बल, वीर्य और बुद्धि का वर्धक है। जिन्हें इससे लाभ न हो वे हिप बाथ का अवश्य प्रयोग करें।

जलचिकित्सा के सिद्धान्त

फेफड़ों में वर्तमान वायुकोष्ठ गन्दी हवा में से उस पदार्थ को लेलेते हैं जो शरीर के काम का नहीं होता, इसी प्रकार आंतों के साथ वर्तमान रसायनियां (Lectiols = absorbants) भोजन के रस में से ऐसे पदार्थों को भी खेंच लेती हैं जो शरीर के लिये अनुपयुक्त हैं। ये अनुपयुक्त पदार्थ आंतों में से खिंच कर जब शरीर के अन्दर चले गये तो अब कैसे बाहिर निकलें। शरीर में से मलों को बाहिर निकालने के लिये हमारे पास निम्न लिखित साधन हैं—त्वचा (जिसके प्रत्येक वर्ग इञ्च में ३००० के लगभग छिद्र विद्यमान हैं),

जिगर, फेफड़ों के वायु मार्गों के पृष्ठ, गुर्दे, रसाय-
नियां। ये साधन विकृत पदार्थ को शरीर में से
बाहिर निकालते हैं और उन औषधियों को भी
बाहिर निकालते हैं जिन से शरीर परिपूर्ण हो चुका
हो। यदि त्वचा के छिद्र उचित सफ़ाई और
व्यायाम के द्वारा स्वस्थ और स्वच्छ अवस्था में न रक्खे
जावें तो परिणाम आसानी से देखे जा सकते हैं।
यह कार्य ऐसा ही है जैसा कि पानी के नल में पानी
आना रोक कर उसकी टूटी खोलना है। शरीर के
विकृत पदार्थ का और रक्त के अशुद्ध भागों का
पृथक् करण बराबर जारी रहता है। शरीर की
रसायन शाला को सिवाय मृत्यु के कोई ठहरा नहीं
सकता है। विकृत पदार्थ चूंकि काफ़ी तेज़ी से
बाहिर नहीं निकलता है, इसी कारण परिणाम रूप
में ज्वर, शोथ, जिगर की शिकायतें, आंतों की
शिकायतें, चिड़चिड़ापन, क्षुब्धता, आमाशय की
शिकायतें आदि उपद्रव उन कष्ट पाते हुए अङ्गों से
उत्पन्न हो जाते हैं जो छुटकारे के लिये चिल्ला रहे

होते हैं। यदि उचित रास्ते न खोले जावें तो परिणाम मृत्यु होता है। इस विषय में जल चिकित्सा ऐसा उपाय बतलाती है जो आराम देने वाला, स्वाभाविक और बड़ा आसान है; इस में खर्च तो कुछ नहीं, परन्तु केवल थोड़ा सा पुरुषार्थ अवश्य अपेक्षित है।

शिशिर ऋतु में उचित कपड़ों के द्वारा त्वचा और आभ्यन्तरङ्गों की जीवन शक्ति को कायम रखना कितना आवश्यक है। ठण्ड त्वचा के छिद्रों को बन्द कर देती है, खराब गन्दे सड़े पदार्थ को जमा रखती है और अन्दर के अङ्गों के पृष्ठ से रक्त को खैंच कर फेफड़ों, जिगर, आमाशय, आंतों और गुर्दों के बल को कम करती है। स्मैड्ले के चिकित्सालय में शिशिर ऋतु में मुश्किल से ही कोई रोगी ऐसा आता होगा जिस ने केवल गर्मियों के ही कपड़े न पहिने हुए हों। स्मैड्ले ऐसे रोगियों को बिना उचित कपड़ा पहिनाये चिकित्सा नहीं करता था। जल-चिकित्सा के क्रियात्मक सिद्धान्त निम्न लिखित हैं—

स्नानों के साधारण उपायों द्वारा शरीर में से विकृत पदार्थ को निकालना, रक्त के परिभ्रमण को उत्तेजित करना, नवीन स्वस्थ रचना को करके पुराने जीर्ण तन्तुओं का स्थान बदलना, त्वचा के उन असंख्य छिद्रों के स्वतन्त्र कार्य को उत्पन्न करना जो कि पसीने के समय स्वेदग्रन्थियों के लिये पसीने को बाहिर निकालने का कार्य करते हैं और रक्त में ओषजन पहुँचाने के लिये वायु को चूस कर फेफड़ों की सहायता करते हैं। ऐसे सरल प्राकृतिक उपायों के द्वारा इस आवश्यक कार्य की पूर्ति, प्रकृति के अपरिवर्तन शील नियमों के कार्य की धैर्य से प्रतीक्षा किये बिना, नहीं हो सकती है। औषध के द्वारा या तीक्ष्ण जल चिकित्सा के द्वारा ज़ोर लगाना इलाज नहीं है इलाज का पराभव है। यदि ऐसे कोई मनुष्य अपने आप को जल-चिकित्सा के लिये अधीन करें, जिन के आन्तर अङ्गों की श्लैष्मिक कला में भयानक शोथ होरही है या लकवे तथा पुराने शोथ के

आक्रमण आदि के कारण जिनके शरीरों में अतिशय गन्दा पदार्थ इकट्ठा हो चुका है, और उनका यह विचार हो कि दो तीन सप्ताह की तीव्र चिकित्सा उनको समर्थ कर देगी तो वे समझलें कि वे बड़ी गलती में होंगे क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में सम्भवतया उतने समय में तो वे पहिले से भी अधिक खराब हालत में हो जावेंगे और नाजुक हालत से शायद बिलकुल ही लेट जावें।

किसी स्वस्थ पुरुष में किसी भी जल-चिकित्सा या वेष्टनों के द्वारा नाजुक हालत (फफोले या पिड़का) उत्पन्न नहीं हो सकती। जिस अनुपात में शरीर में रोग होगा उसी अनुपात में नाजुक हालत उपस्थित हो सकती है। कई कृश रोगियों में थोड़ा सा वेग उत्पन्न हो कर एक दो ही फफोले निकल सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कोई फफोला न निकले।

स्मैड्ले ने इस बात को एक स्थान में देखा है कि शरीर उत्तम अवस्था में होते हुए भी केवल

पाचक अङ्गों की कमज़ोरी के कारण या जीवन शक्ति की कमी के कारण, आमाशय में पड़े हुए भोजन में उचित रासायनिक परिवर्तन को पैदा करने में पर्याप्त मज़बूत न होने से अम्लता उत्पन्न हो जाती है और पश्चात् सड़ांद शुरू होजाती है। यह अजीर्ण पदार्थ शरीर में चक्कर लगाता है। ख़राब पदार्थ के द्वारा शरीर का निर्माण आरम्भ होता है। यदि शरीर इस को बाहिर फेंकने के लिये अनुकूल अवस्था न प्राप्त कर सके तो अन्त को रोग और मृत्यु आ उपस्थित होते हैं। यदि रोगी पूर्ण स्वास्थ्य के विचार को छोड़ कर अपने साधारण स्वास्थ्य की उन्नति मात्र चाहते हों तो उन्हें तीव्र चिकित्सा कराने के लिये उत्सुक नहीं होना चाहिये नाहीं बन्धनों का प्रयोग करना चाहिये ; वे तो केवल शुद्ध वायु शुद्ध जल का सेवन करें और रोगी आश्रम में रह कर अपनी आदतों को सुधारें नियम पूर्वक बनावें ; इसी प्रकार उनकी जीवन शक्ति बढ़जावेगी और विकृत

पदार्थ को शरीर में से बाहिर फेंकने के लिये सामर्थ्य पैदा हो जावेगी। ये नियम रोगी आश्रम छोड़ने के पश्चात् घर पर भी जारी रखने चाहियें। इस प्रकार उत्पन्न हुआ प्रभाव लाभ दायक और चिरस्थाई होगा।

प्राकृतिक उपायों द्वारा जीवनीय शक्ति को बढ़ाना जल चिकित्सा का सिद्धान्त है। जिस प्रकार एक व्रण मृत और नष्ट हुए तन्तुओं को स्राव और पपड़ी के रूप में बाहिर फेंकता है तथा उनके स्थान में धीरे धीरे नये दाने उत्पन्न करके रोहण करता है, उसी प्रकार अधिक मात्रा में जहां कहीं भी हो गन्दा पदार्थ बाहिर फेंका जाना चाहिये, इस के लिये केवल यही एक तरीका है और केवल यही सिद्धान्त है जिसके आधार पर प्रकृति चिकित्सा करती हुई कार्य करती है। औषध का गले में उतार लेना बड़ा आसान है और रोगी के लिये यह भी बड़ी अनुकूलता की बात है कि घर और अपना कार्य छोड़ना नहीं

पड़ता, परन्तु याद रखना चाहिये कि इस प्रकार शरीर में आवश्यक तौर पर गन्दा विकृत पदार्थ जमा होता रहता है यह पदार्थ रोगी को घर छोड़ने के कष्ट के लिये ही केवल बाधित नहीं करता परन्तु सर्वदा के लिये संसार से ही उठा लेता है।

विद्वान् अनुभवी एलोपैथ डाक्टरों की सम्मति है कि एलोपैथी और जल चिकित्सा में बड़ा भारी भेद यह है कि एलोपैथ डाक्टर लोग रोगी को अच्छा करने से पहिले अधिक कमज़ोर और क्षीण कर डालते हैं इसीलिये उन के रोगी ख़राब होते हैं परन्तु जल चिकित्सक शुरू से ही रोगी को पुष्ट करना आरम्भ करते हैं और इसी कारण जल चिकित्सा के द्वारा रोगी प्राकृतिक स्वास्थ्य के रूप में दीगई उत्तेजनाओं को ग्रहण कर लेते हैं। नाज़ुक हालत के कारण कष्ट तो शुरू के कुछ दिनों के पश्चात् आरम्भ होते हैं जब कि बहुत पहिले से ही, अच्छी भूख का लगना और शरीर में बल और

हलकेपन का साधारण अनुभव आरम्भ हो चुका होता है। कुछ साधारण सी ख़बरदारी रक्खी जावे तो नाज़ुक हालत से कुछ भी ख़तरा नहीं होता है। इस समय भी सब उत्तेजक पदार्थों का बहिष्कार रखना पड़ता है। लोशन्ज़ या मरहमों का प्रयोग भी बिलकुल छोड़ देना ही होता है। पुराने रोगों में नाज़ुक हालत अवश्य ही आया करती है। जल चिकित्सा के द्वारा नाज़ुक हालत का आना यह उस में एक अद्भुत रूप है। जल-चिकित्सा करते २ जिस रोगी की हालत नाज़ुक हो जाती है वह बहुत ही खुश होता है। जल चिकित्सा के सिद्धान्त को जानने वाले उसके सम्बन्धी भी बहुत खुश हुआ करते हैं।

जब नाज़ुक हालत आने लगती है तो एक प्रकार की बैचैनी मालूम होने लगती है, निद्रा और भूख कम हो जाती है, सर्दी गर्मी बारी बारी से आती हैं, अन्त में ज्वर के सब लक्षण उपस्थित हो जाते हैं जो कभी २ बड़े तीव्र होते हैं परन्तु यदि

सावधानता रक्खी जावे तो रहते थोड़ी ही देरतक हैं। नाज़ुक हालत जब समाप्त होने लगती है तो शरीर से भिन्न २ प्रकार के स्राव भिन्न २ मार्गों से निकलने लगते हैं। इन स्रावों के निकलने में ही त्वचा पर फफोले पड़ जाते हैं। नाज़ुक हालत (crisis) शब्द से शरीर में विद्यमान बड़ी भारी उथल पुथल ऐसा अर्थ लिया जाता है। शरीर में जब उथल पुथल मचती है तो नाज़ुक बुख़ार, दुर्गन्ध युक्त स्वेद, विशेष दुर्गन्ध युक्त मूत्र, वमन अतिसार, रक्तपित्त, त्वक् पिडका इन्हीं में से कुछ लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कई अवस्थाओं में नाज़ुक हालत ज़रा भी उत्पन्न नहीं होती है। इस लिये कोई खास नियम नहीं बन सका है। पुराने ग्रन्थिशोथ में पारद विष में तीन से पांच बार तक नाज़ुक हालत होती देखी गई है, जब कि अभी न तो रोग दूर हुआ होता है और नाहीं पूर्ण स्वास्थ्य ही प्राप्त हुआ होता है। जल चिकित्सक प्रीसनिज़ ने अपने दीर्घकाल के अनुभव से बत-

लाया है कि फफोलों के रूप में नाज़ुक हालत, जब कि उनसे स्वतन्त्र स्राव भी बह रहा हो, उत्तमतम चिकित्सा साबित हुई है। इस से पुरानी दर्दें और आन्तरिक कष्ट दूर हो जाते हैं। कोई भी अच्छा सुधार नहीं होता जब तक कि नाज़ुक हालत उपस्थित न हो जावे। प्रीसनिज़ के उस अनुभव में इतना और बढ़ा लेना चाहिये कि फफोलों के रूप में नाज़ुक हालत उसी स्थान के आसपास प्रायः होती है कि जिस स्थान पर रोग विद्यमान होता है। प्रीसनिज़ का यह ख़्याल था कि फफोलों से जो स्राव निकलता है वह पहिले रक्त में विद्यमान होता है। इसी नियम को वह अपने चिकित्सा के प्रयोगों में भी बरतता था। क्योंकि रोगी इस बात की परवाह नहीं किया करता कि चिकित्सा में वैज्ञानिक आधार विद्यमान है या नहीं, वह तो सिर्फ़ इतना ही देखता है कि रोग को आराम किस विधि से होता है, तथा चिकित्सा शास्त्र का नियम पूर्वक प्रयोग जहां

असफल हो जाता है वहां विचित्र प्रकार के इलाजों पर उस का विश्वास जम जाता है।

विसर्प, पिडका आदि त्वचा के रोगों का कारण हम साधारण तौर पर रक्त विकार कहा करते हैं, परन्तु एक दूसरे विचार से इन्हें हम विकृत अन्तः स्रावों का विकार कह सकते हैं। जैसे कि आमाशय का कटु रस या विकृतपित्त सम्बन्ध के कारण त्वचा को दूषित करते हैं।

बौयल और कारबंकल स्वस्थ मनुष्य को कभी नहीं होते हैं। जब वे अचानक स्वभाविक तौर पर हो जावें तो अवश्य ही शरीर में विकार समझा जाता है। फफोले और पिडका क्षोभ का प्रतिकार हैं। इसी सिद्धान्त को लेकर बाह्य प्रयोगों से भी कृत्रिम पिडकायें और फफोले उत्पन्न किये जाते हैं। इस का अभिप्राय यही होता है कि रक्त में से हानिकारक पदार्थ को द्रव के रूप में निकाल दिया जाय। कृत्रिम रोग पैदा कर के फिर उस के द्वारा रोग का विष बाहिर किया जाता है।

इस प्रकार रोगी को अवश्य ही इलाज करने में अधिक असुविधा उठानी पड़ती है और अधिक अच्छी हालत में होने से पहिले उसे अधिक बुरी हालत में होना होता है।

कुछ भी हो, फफोलों का निकालना इतना ही अधिक आवश्यक नहीं है कि इस के बिना इलाज ही न हो सके। यह हो सकता है कि प्रकृति एक प्रकार से इलाज न कर के किसी अन्य प्रकार से करदे, और मनुष्य रोग मुक्त हो जावे।

बड़ी राशी में चिकित्सा प्रयोग करके रक्त संचार को बाधित करना कि वह नाजुक हालत (Crisis) उत्पन्न करदे इस के लिये बड़ी दूरदर्शिता और गहरे विचार की आवश्यकता है विशेष कर उस अवस्था में जब कि मनुष्य की आदत जल्दी क्षुब्ध हो जाने की हो। पुराने रोगों में साधारण चिकित्सा विशेष लाभ नहीं देती है वहां तो योग्यतम उपायों का अनुसरण किया जाता है। ऐसे विशेष रोगियों में यदि तीव्र

उपायों का प्रयोग किया जाय तो एक दम और भयानक नाज़ुक हालत उपस्थित हो जाती है इस से कष्ट अधिक होता है और रोगी ख़तरे में पड़ जाता है कि कहीं अनुकूल रूप से पूय स्थायी फफोले कठिन रूप धारण न करलें।

इस प्रकार के अवाञ्छनीय परिणामों से साधारण ध्यान रखने से बचा जा सकता है, और जल चिकित्सा सम्बन्धी इलाज की आवश्यकता नहीं पड़ती। लोगों के ऐसे कठिन रोगों की चिकित्सा चिकित्सक के एक मात्र निरन्तर अभ्यास पर निर्भर करती है।

नाज़ुक हालतों में जल चिकित्सा

जिस समय शरीर की त्वचा पर फफोले आदि निकल आवें उस समय थोड़ा साबुन और गर्म पानी लो, फिर फ़लालैन का एक टुकड़ा लेकर बड़े नरम हाथ से सारी मैल को धो डालो। फिर लिनन के सूखे नरम कपड़े की रुग्ण स्थान पर पट्टी करो। दिन के समय यदि क्षोभ मालूम दे

तो कपड़े को खोल कर शीघ्र ही ६५ अंश के जल से शरीर पर स्पञ्ज करो पश्चात् पूर्ववत् फिर पट्टी करदो।

यदि सूईयों के चुभने की सी दर्द हो तो ८० अंश के जल का प्रयोग करो। यदि दाह हो तो गर्म पानी से हलका २ सेक करो। फिर पूर्ववत् पट्टी कर दो। फिर स्पञ्जिङ् मत करो। किसी प्रकार की ठण्ड के प्रयोग से क्षोभ बढ़ जावेगा। यदि बुखार की सी हालत हो तो आध घण्टे तक आर्द्र वेष्टन करो। सोने के समय लिनन उतार दो और कैलिको की तथा तेलीये रेशम की पट्टियां ६'५ अंश के जल में अच्छी प्रकार भीगी हुई धारण करो। चार पाई के पार्श्वों पर कुछ गर्म पानी रख दो। यदि निद्रा न आवे तो पूर्वोक्त प्रक्रिया फिर नये सिरे से करो। यदि हालत इतनी नाज़ुक हो कि इतनी गीली पट्टियां शरीर पर रात को न रक्खी जा सकें तो लिनन का गीला कपड़ा ऊपर रक्खो इस पर नई फ़लालैन का टुकड़ा रहे। जब तक नाज़ुक हालत पूरी तरह से प्रकट न हो

(अर्थात् फफोले अच्छी तरह से न निकल आवें) कम से कम तब तक तो मान्स भोजन सर्वथा त्याग दो, ठण्डा पानी पर्याप्त मात्रा में जितना पिया जा सके पीडालो । शरीर को अत्यधिक गर्म मत रक्खो ।

शरीर में अधिक दाह और शोथ के कारण यदि पूर्वोक्त प्रकार से नाजुक हालत शान्त न हो तो रोगी को, अच्छा है, बिस्तर पर पड़े ही रहने दो, पट्टियां सब खोल डालो, शरीर पर जितनी सम्भव हो हलकी से हलकी चादर डाले रक्खो, चादर ठण्डी न हो । प्रति घण्टे के पश्चात् आक्रान्त स्थानों को गर्म पानी से स्पञ्ज करो। अच्छा होने का यह छोटे से छोटा उपाय है । आक्रान्त स्थानों को मल मल के लोग बहुत ही नाजुक खराब हालत बना लेते हैं । जब तक नाजुक हालत रहे मान्स भोजन त्याज्य है । कोई फफोले जो फूटे नहीं जिन में पदार्थ भर चुका हो उन्हें फोड़ डालो और लिनन का एक गीला टुकड़ा उन पर लगा रक्खो । स्रावको स्पञ्ज से साफ़ करते रहो । अन्य आस पास

के स्थानों पर स्नाव का स्पर्श न होने दो। इलाज समाप्त होने से पहिले ही कई रोगी घर लौट जाते हैं। उन की असावधानी से फफोले फिर निकल आया करते हैं। फफोले सिर पर नहीं निकलते। शोथ कम करने के लिये जोकों का प्रयोग किया जाता है, यह बहुत हानिकारक है, यह प्रकृति को अपना काम करने से रोक देता है। बल को क़ायम रखने के लिये उत्तेजक पदार्थ दिये जाते हैं। ये पदार्थ शोथ और क्षोभ को अधिक बढ़ा देते हैं। कुछ फफोले निकलते प्रतीत होते हैं परन्तु निकलते नहीं वापिस चले जाते हैं इस से हमारे उद्देश्य पर असर पहुंचता है जब कि शरीर के बाहर निकलता हुआ पदार्थ शोषकों के द्वारा सुखाया जाता है।

‡ पाश्चात्य औषध चिकित्सा के विरुद्ध पाश्चात्यों की सम्मतियां

---

‡ उर्दू की पुस्तक 'इलाज बज़रिया पानी' ठाकुर भास्कर चन्द्रकृत

(१) न्यूयार्क के प्रसिद्ध फिज़िशन सर्जन कालेज के प्रोफ़ेसर अलैग्ज़ैन्डर एच. मैटन्स, एम. डी. ने अपने एक व्याख्यान में दृढ़ता से निम्न शब्द कहे थे। डाक्टर लोग ज्यों २ बूढ़े होते जाते हैं त्यों २ सत्यान्वेषी बनते जाते हैं और जिस क़दर किसी दवाई की ख़ूबी को पहिचानते हैं उसी वक्त उनको स्वाभाविकतया प्राकृतिक नियमों पर विश्वास होता जाता है। दवाइयों की ख़ूबी की प्रशन्सा ख़ूब होते हुए भी रोगी उसी क़दर नुक़सान उठा रहे हैं जिस क़दर आज से ४० वर्ष पूर्व उठाते थे। औषध विज्ञान में इतनी धीमी उन्नति इसी लिये हुई है कि डाक्टरों ने प्रकृति को अध्ययन करने के स्थान में अपने पूर्वजों की लिखी हुई पुस्तकों के पढ़ने में समय नष्ट किया है।

(२) इसी कालिज के प्रोफ़ेसर जोसफ, एम. स्मिथ, एम. डी. इसके समर्थन में कहते हैं कि "सब प्रकार की औषधियां ख़ून में मिल कर ख़ून को इस तरह ज़हरीला बनाती हैं जिस तरह

ज़हरीली औषधियां ख़ून में मिल कर बीमारी पैदा करती हैं। कोई औषधि बीमारी को दूर नहीं करती परन्तु बीमारी मनुष्य की अपनी जीवन शक्ति से ही दूर होती है।"

(३) डाक्टर होसक जो इसी कालिज में प्रौफ़ेसर था कहा करता था कि "शब्द डिजिटेलिस के असली अर्थ कब्रस्तान के रास्ते का निशान है, इससे वे निशान जो कि बोतलों पर पौण इञ्च की दूरी पर लगाये जाते हैं कायम किये गये हैं।

(४) इसी कालिज के एक प्रौफ़ेसर सी. ए. गुलमैन एम. डी., कहते हैं कि जो पुरानी बीमारियां जानवरों के शरीरों में पाई जाती हैं वे इसी कारण से पुरानी हो गई हैं कि बचपन में इनका इलाज अच्छी प्रकार नहीं किया गया। जब कभी बच्चों पर छाले डालने का प्रयोग किया गया है बच्चे मर गये हैं। जब कभी रोग से मुक्त करने के लिये बच्चों को पारद दिया जाता

है तब उनको ऐसा आराम आता है कि कबर में भी तकलीफ़ नहीं होती। दूध पीने वाले बच्चे के शरीर की त्वचा पर अफ़ीम का प्रयोग करने से मृत्यु शीघ्र ही हो जाती है। ४ ग्रेन कैलोमल से एक युवक की जान निकल जाती है। धीरे धीरे पारद का प्रयोग और धीरे धीरे गला घोंटना एक ही अर्थों में व्यवहृत होता है।

(५) इसी कालिज के प्रोफेसर अलबिओ क्लार्क एम. डी. का कथन है "३० से लेकर ६० ग्रेन तक कैलोमल छोटे बच्चों को दिया गया परन्तु एक भी न बच सका। Paralysis के रोगी जिनका ख़ून नहीं निकाला जाता प्रायः सभी बच जाते हैं। डाक्टर इस बात को ख़ूब जानते हैं कि मीज़ल और स्कारलेटिना के रोगी को औष-धियों से लाभ की जगह हानि होती है।"

(६) इसी कालिज के प्रो० डब्ल्यू पारकर एम. डी. का कथन है 'सुज़ाक की दवाइयों पर मुझे कोई विश्वास नहीं प्रायः सभी केस ख़राब

हो जाते हैं। आतशक के रोग में कैलोमल के प्रयोग से नसों पर फालूदे का सा कोट जम जाता है। जिसकी तकलीफ़ से रोगी सुन्न हो जाता है। यह निश्चित सिद्धान्त है कि बहुत से प्रयोग केवल तजुरबे के लिये किये जाते हैं। आतशक के तीसरे और दूसरे दर्जे में जो कष्ट रोगी को होता है उसका कारण आतशक का ज़हर नहीं अपितु कैलोमल का ज़हर होता है जो औषधि के रूप में दिया जाता है। विज्ञान भी औषधियों पर विश्वास नहीं करता।'

(७) प्रो० ई. एच. डो. कहा करते थे "मैंने हैज़े के रोगियों को प्रति मनुष्य ४८० ग्रेन टेबल स्पून फुल कैलोमल दिया है परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। क्योंकि दवाई के प्रयोग की विधि मालूम नहीं। यह तो पता है कि दवाई असर करती है परन्तु यह किसी को भी पता नहीं कि किस तरह। केवल अपने अज्ञान को छिपाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।"

(८) प्रो० होरेस ग्रेन एम. डी. कहते हैं कि ज्यों २ बीमारियों के पहिचानने का अभ्यास होता जाता है त्यों त्यों औषधियों से विश्वास उठता जाता है जैसे कौडलिवर औयलसे सिल को कोई लाभ नहीं होता।

९. प्रो० एच. डी. कौफस एम. डी. ने कहा" कि निमोनिया की दशा में खून निकालने से मौतों की संख्या बढ़ जाती है और कैलोमल से कोई लाभ नहीं पहुंचता। रोगी का जितना थोड़ा इलाज किया जाय उतना ही अच्छा है। बुखार के समय कैलोमल देना मौत को ही बुलाना है।"

(१०) प्रो० बी.एफ.पारकर एम.डी.ने लिखा है "जो औषधियां स्कार्लेट फीवर और मीज़ल्स को हटाने के लिए दी जाती हैं वे बीमारियों को मारने की जगह मनुष्यों को मार देती हैं। थोड़े दिनों से मैंने किसी औषधि का प्रयोग नहीं किया इस प्रकार मुझे खूब सफलता प्राप्त हुई है। बहुत सी लेडियों को शराब पीने की आदत पड़ गई है

उसका असली कारण यह है कि औषधि के साथ उनको अलकोहल इत्यादि नशीली चीज़ें ही दी जाती हैं। यह भी निश्चित ही है कि पारा देने तथा खून निकालने से रोगी को लाभ की जगह हानि ही होती है। मुझे दुःख है कि डाक्टरों को भी रोगी के निदान का उतना अनुभव नहीं जितना कि साधारण मनुष्यों को होता है। आधुनिक डाक्टरों ने बजाय अन्वेषण करने के पहले डाक्टरों की ग़लतियों की नकल की है। और औषध विज्ञान की उन्नति को रोक दिया है।"

११. प्रो० जे. डब्ल्यू कारसन एम. डी. कहा करते थे 'बच्चों को मार देना बहुत सहज काम है। जो लोग इस व्यवसाय में आते हैं उन को यह भली भांति ज्ञात होता है जैसे नुस्खे में औषधि की थोड़ी सी मात्रा के बढ़ा देने से जो बच्चा पहिले राज़ी खुशी था अब मुर्दा दीखता है। इस लिए डाक्टरों का कर्तव्य है कि वे चिकित्सा करते समय सावधानी से काम किया करें। फिर

इस बात का भी पता नहीं कि रोगी को औषधि से लाभ हुआ है या स्वाभाविक रीति से ही वह स्वस्थ हो गया है। शायद बिना औषधियों के उतने ही लोग स्वस्थ हो गये हैं जितने कि औषधियों से।"

१२. न्यूयार्क यूनिवर्सिटी मैडिकल कालिज के प्रो० ई० एल० कार एम. डी. ने कहा है "सभी औषधियों में ज़हरीले अंश होते हैं और डाक्टरों की यह अवस्था है कि शायद सौ में से एक भी ऐसा न होगा जो रसायन शास्त्र को भली भांति जानता हो और दवाई की ख़राबी को दूर करने की योग्यता रखता हो। उस को यह भी पता नहीं होता कि उसकी औषधि का कितना प्रभाव है। इस के साथ यह भी सत्य है कि पारा चाहे किसी अवस्था में क्यों न दिया जाय अवश्य ही ख़ून के साथ मिल कर शरीर के सभी भागों में पहुँच जाता है और उसका प्रभाव एक दो दिन तक नहीं अपितु वर्षों तक और जीवन

के अन्त तक रहता है जो जोड़ों और हड्डियों में बैठ कर मनुष्य को सर्वदा के लिये रोगी बना देता है। मैंने कई रोगियों की हड्डियों से धातु के रूप में पारद निकाला है जो इन को औषधि के रूप में दिया गया था।"

१३. प्रो० ऐस सेवट जौन ने लिखा है कि सभी औषधियाँ ज़हरीली हैं तथा प्रो० ए. डीन एल. एल. डी. का भी यही मत था।

१४. प्रो० मार्टन पैनी एम. डी. कहा करते थे कि हमारी चिकित्सा ही रोगों की जड़ है। हमारी औषधियां शरीर पर उसी प्रकार प्रभाव डालती हैं जिस प्रकार रोगों के कारण तथा भ्रमें एक रोग को हटा कर दूसरा रोग पैदा कर देती हैं।"

१५. एस. डी. गौस एम. डी. प्रो० न्यूयार्क यूनिवर्सिटी मैडिकल कालिज तथा लूईस वाल मैडिकल कालिज का विचार है कि बीमारी के असल कारण को कोई नहीं जानता।

१६. प्रो० पारकर लिखते हैं कि बीमारी की चिकित्सा करने में औषधि की अपेक्षा स्वास्थ्यरक्षा ज़्यादह लाभदायक और अमूल्य है। यदि कोई मुझ से पूछे तो मैं मैटीरिया मैडिका के स्थान पर मैटीरिया एलिमैण्टीरिया के अध्ययन को अच्छा कहूँगा। परन्तु फिर भी पहिला ही पढ़ाया जाता है। इस के अतिरिक्त यदि सभी लोग केवल जीने के लिए ही भोजन करें तो शायद् बहुत कम लोग मरा करें। मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि एक पुराने मोतियाबिन्द के रोगी को जब सभी प्रकार की औषधियां ठीक नहीं कर सकीं तो उसे हाईजीनिक चिकित्सा से लाभ हुआ।

१७. प्रो० कारसन ने कहा है पानी सब से उत्तम रेचक पदार्थ है मेरे पूर्वज रोगियों को रंगदार पानी दिया करते थे और उन को दूसरे रोगियों की अपेक्षा शीघ्र आराम आ जाता था।

१८. प्रो० क्लार्क कहते थे कि ठण्डी वायु रोगी को अत्यन्त हितकारी और अच्छी टौनिक

है। क्षय रोगियों की कई चिकित्सा विधियां निकाली गई हैं परन्तु सभी अकृतकार्य सिद्ध हुई हैं। हमें कोई ऐसी चीज़ ज्ञात नहीं जिस से क्षय रोगी स्वस्थ हो सके अतः हाईजीन पर ही विश्वास कर सकते हैं।

१९. प्रो० बारकर का कहना है कि बीमार बच्चों का जितना सादा इलाज किया जाय उत्तम है।

२०. प्रो० पैनरले का कहना है कि मनुष्य के शरीर मे ८/१० हिस्सा पानी का है। पानी एक ऐसी वस्तु है जिस को ईश्वर ने सभी जान दारों के पीने के लिए बनाया है।

२१. प्रो० गुलमन ने कहा है कि क्षय रोगियों के इलाज के नित्य नये तरीके निकाले जाते हैं परन्तु कोई लाभ नहीं होता, औषधियों से लाभ की जगह हानि होती है। हाइजीनिक चिकित्सा ही इस के लिए उत्तम है।

२२. 'नशे वाले ज़हर को दूर करने वाली सब से अच्छी चीज़ पानी ही है। यदि डाक्टर इस को

जान लें तो ऐसे ज़हरों से बहुत कम लोग मरा करें। लगातार ठंडे पानी के प्रयोग से जितनी जल्दी सूजन रुकती है और किसी इलाज से नहीं रुक सकती। पेट पर ठंडा पानी डालना पेचिश का बहुत अच्छा इलाज है। मैंने कई युवकों को केवल पानी से अच्छा किया है। पानी सब पदार्थों से उत्तम पेशाब और पसीना लाने वाली चीज़ है।

२३. प्रो० स्मिथ कहते हैं कि गर्म पानी की भाफ़ दस्त लाने के लिए बहुत उत्तम है। उपवास करना भी अंतड़ियों की सफाई के लिए बहुत लाभ दायक है।

२४. लएडन के डाक्टर वेली साहब का कथन है "मुझ को तो दवाई पर बिल्कुल विश्वास नहीं रहा। क्योंकि वर्तमान की डाक्टरी बिलकुल अविश्वसनीय रूप में है। इस में न तो फिलासफ़ी ही है और नाही बुद्धि से काम लिया जाता है जिस

पर कि विश्वास किया जासके” (प्रो० ईवन्स फैलो रायल कालिज)

२५. 'डाक्टरी की बातें सौ में से निन्यानवें तो झूठी होती हैं। डाक्टरी शिक्षा की ओर देखना एक बेहूदा चीज़ की ओर देखना है (प्रो० गेरी गिरी-एडनबर्ग स्काटलैंड)

२६. डाक्टरी की थ्यूरियों की कमज़ोरी के कारण सर्वदा मुझे क्षमा मांगनी पड़ी है। वेही डाक्टर प्रसिद्ध हो सकते हैं जिन्हों ने आप अपने को कालिजों के जुल्म से स्वतंत्र कर लिया हो। मृतक देहों को चीरने से हम को हर रोज़ पता चलता है कि हम रोग के वास्तविक कारणों को बिलकुल नहीं जानते होते। हमें अपने निश्चित नुस्खों को देख कर लज्जित होना पड़ता है। झूठी बातों पर विश्वास कर कर हम ने क्या बुराइयां नहीं की। बीमारियों के बढ़ने का कारण हम लोग ही हैं। मृत्यु की संख्या को बढ़ाने

में भी हमारा ही हाथ है।' "बैञ्जमिन रश एम. डी प्रो० फ़िलैडैल्फ़िया कालिज।"

२७. इस से इनकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान डाक्टरी को यदि डाक्टरी कहा जाये तो लज्जा जनक है। हमारी औषधियों से शायद ही किसी को लाभ होता होगा। रोगियों की अवस्था प्रायः ख़राब ही होजाती है। एक रोगी को किसी डाक्टर का इलाज कराने में न कराने से अधिक हानि और कष्ट होता है। मैंने अपने डाक्टर भाईयों को अपने व्यवसाय को बहुत बुरी तरह बरतते देखा है। "डाक्टर राईज फैलो रायल कालिज लण्डन"

२८. बेशक औषधि विज्ञान कोई विज्ञान नहीं है अपितु भिन्न भिन्न ग़लत और अस्थिर विचारों का ग़लत परिणाम है। इस विज्ञान की सब थ्यूरियां निकम्मी और सभी सिद्धान्त बिना युक्ति के हैं। (मैडिकल जरनल-डबलन)। बहुत थोड़े रोगी औषधियों से अच्छे होते हैं और उस से ज़्यादह

बिना इलाज़ के स्वयमेव अच्छे हो जाते हैं, (सर जान कुरैशन एम. डी. डाक्टर क्वीन विक्टोरिया)

२९. 'प्रति वर्ष कई रोगी सुनसान कमरों में बन्द कर के मारे जाते हैं। सरकार या तो इन डाक्टरों को देश से निकाल दे या इन की सख्त गलतियों का कोई इलाज करे या प्रभु इन को कुछ बुद्धि दे कि ये लोग मनुष्यों की जान बचाने के लिए कुछ अच्छे तरीके ढूंढें। क्योंकि ये लोग इस पेशे को ठीक ठीक समझते नहीं। जितनी मौतें इस पेशे के ख़राब प्रयोग से होती हैं उतनी और किसी घृणित से घृणित कार्य से भी नहीं होतीं (डाक्टर फ्रैंक)

३०. क्योंकि डाक्टरों का फ़िज़ियालोजी के आधारपर कोई निश्चत सिद्धान्त नहीं बना। इसी लिए इस व्यवसाय में कोई उन्नति नहीं हुई। मेरे इन शब्दों से डाक्टर भाईयों को दुःख तो होगा परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हम डाक्टर लोग रोगों के वास्तविक कारणों को सर्वथा नहीं जानते

यदि रोगी को औषधि न देकर उसे प्रकृति के नियमों के भरोसे छोड़ दिया जाय तो उस के लिये बहुत अच्छा हो। क्योंकि बीमारी के कारण को न जानते हुए हमारे इलाज से हानि की ही सम्भावना है। हम लोग रोगियों के जीवन का अन्त कर देते हैं (एम. मैजण्डी फ्रैंञ्च फ़िज़ियालोजिस्ट एण्ड पैथोलोजिस्ट)

३१. मुझे यह कहने की आवश्यकता प्रतीत हुई है कि जिन बच्चों की शीघ्र मृत्यु होती है उन का कारण अनुचित चिकित्सा ही होता है। (डाक्टर मार्शल हौल फिज़ियॉलोजिस्ट)

३२. हमारा निदान और अनुभव दोनों अधूरे हैं। औषधि की प्रत्येक मात्रा जो रोगी को दी जाती है, उन के जीवनों पर अन्धा ज्ञान तजरुबा होता है। (डाक्टर बोस्टाक, हिस्ट्रीआफ़ मैडिसन)

३३. चाहे मैं अपने वर्तमान व्यवसाय को छोड़ना नहीं चाहता और मेरे कई मित्र भी बहुत योग्य डाक्टर हैं परन्तु यह व्यवसाय मेरी आत्मा के इस

विश्वास को नहीं रोक सकता कि वर्तमान डाक्टरी व्यवसाय ने लाभ के स्थान पर हानि ही पहुँचाई है। यदि यह व्यवसाय हट जाय तो मनुष्य जाति का बहुत भला हो। (फ्रांसिस कान्स वैल एम०. डी. बोस्टन)

३४. मैडिकल सायंस न समझ में आने वाली वहशियों की माया है मनुष्य शरीर पर इस के प्रभाव का विश्वास कदापि नहीं किया जा सकता, यदि इस की किसी बात पर विश्वास किया जा सकता है तो इस पर कि लड़ाई, कहत और अन्य दैवी प्रकोपों से भी अधिक मनुष्य इस से कत्ल किये जाते हैं(जान मैसन गुड एम. डी. एफ. आर. एस.)

३५. मुझे अपने इतने लम्बे अनुभव से विश्वास होता जाता है कि यदि पृथ्वी पर कोई डाक्टर सर्जन, कैमिस्ट, अत्तार और दवाईयां बनाने वाला न होता तो इतनी अधिक मृत्यु संख्या न होती जितनी आज कल है। (जैम्सन जानसन एम. डी.

एफ. आर. एस.)

जल चिकित्सा की विजय

पिछले प्रकरणों से भी यह स्पष्ट है कि जल चिकित्सा उन भयानक रोगों का उस अवस्था में भी सफलता के साथ इलाज कर देती है। जिस अवस्था में एलोपैथि निराशा के साथ रोगी को जवाब दे देती है। ऐसे अनेक उदाहरणों का निर्देश किया जावेगा जिन में जल चिकित्सा की पूर्ण विजय हुई है और एलोपैथी पीठ दिखा कर संग्राम से भाग खड़ी हुई है। इस से भी आप यह निश्चय जानें कि जल चिकित्सा शरीर विज्ञान के आधार पर एलोपैथी की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति उतनी वैज्ञानिक नहीं है।

(१) वौल्टर येट्स हौलोवे (walter yates Holloway) १५ वर्ष की उम्र में टाईफ़स फ़ीवर से आक्रान्त हुआ। टाइफ़स फ़ीवर अपनी अन्तिम अवस्था में था। उस को उस के एलोपैथिक डाक्टर चिकित्सक ने छोड़ दिया। रोगी ने अपने

घर पर जल चिकित्सा प्रारम्भ की। उसे लगातार ज्वर वमन और दस्त आते थे। एक सप्ताह ही में उस की भूख अच्छी हो गई। कुछ ही सप्ताह में पूर्ण स्वस्थ होगया।

(२) विलियम बन्टिङ्ग ली (William Bunting Lea) उत्कृष्ट रूप में आमवातिक ज्वर से आक्रान्त था। कुछ ही दिनों में दर्द बिलकुल जाती रही, १५ दिनों में अपने काम पर आगया। अदूरदर्शिता, प्रमाद, वा अज्ञान के कारण शीत ऋतु में ठण्ड लगजाने से दूसरा आक्रमण हुआ। यह आक्रमण शीघ्र ही दूर हो गया। उस समय से रोगी आमवात से सर्वथा मुक्त रहा।

(३) मि० रैल्फ स्मिथ, क्रिच (Mr. Ralph Smith Crich) यकृत् की भयानक शोथ से आक्रान्त था एलोपैथिक चिकित्सा की जा रही थी। रोगी बिस्तर के साथ लगा हुआ था उसने रविवार के दिन तीसरे पहर जल चिकित्सा आरम्भ की

सोमवार के दिन दुपहर से पहिले ही उस ने बिस्तर छोड़ दिया और शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ होगया।

(४) विलियम ऐल्ड्रिच (William Aldrich) शेफ़ील्ड इन्फरमरी (Shaffield Infirmary) से पृथक् हुआ। उस की पीठ और टांगों में पुरानी आमवातिक पीड़ा थी। बिना क्रच (crutch) या डण्डे के सहारे चल नहीं सकता था। ६ दिन में वह अपने काम पर लौट गया और अच्छा होने की यादृदाश्त के रूप में क्रच को वहां ही छोड़ गया।

(५) मैटलौक में हर्थ स्टोन का नोलैस (Knowles of HearthstoneMatlock) आमवातिक ज्वर से आक्रान्त था। दो वर्ष से कुछ काम नहीं कर सकता था। ऐलोपैथिक चिकित्सा बहुत दिन तक जारी रही, परन्तु आराम कुछ भी नहीं हुआ। जल चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व वह अपने हाथ को सिर तक भी नहीं ले जा सकता था। एक सप्ताह में रोग से मुक्त हो गया और

उस के बाद से कभी उसे दर्द नहीं उठी और अपना काम करता रहा।

(६) टौमस हौज़किनसन हौलोवे (Thomas Hodgkinson, Holloway) फेफड़ों की भयानक शोथ से ग्रस्त था, नाड़ी ६० से १०० तक रहती थी। श्वास लेने के समय तीव्र वेदनायें उठती थीं। पूर्ण आराम हो गया और अगले दिन काम पर चला गया।

(७) टौमस किङ्, मैटलौक बेंक (Thomas KingMatlock Bank) पर लग भग ५५ वर्ष का बूढ़ा पैन्शनर रहता था । उस को सख्त चोट लगी इस से उस का एक पार्श्व बिलकुल निकम्मा हो गया। बिना कच्च या स्टिक के वह चल नहीं सकता था। सहारे से भी कुछ गज़ ही चल सकता था। वेष्टन, फुहारा, कटिस्नान और शीत जल के थोड़े प्रयोग के पश्चात् वह कितनी ही दूर जा सकता था, फिर कुछ काल के पश्चात् उस का शारीरिक स्वास्थ्य उसे पूर्ण रूप से प्राप्त हो गया। वह पुरुष

स्मैड्ले के पास प्रार्थना करने आया कि अपनी पुस्तक में इस रोगी का अवश्य वर्णन करे जिस से कि इसी प्रकार की तकलीफ़ में पड़े हुए अन्य लोगों को भी इलाज कराने में उत्साह मिले। स्मैड्ले कहता है कि उस की परोपकार वृत्ति की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि ऐसे अनेक रोगी आये और सब की चिकित्सा सफलता के साथ हुई।

(८) फिनीस डेविस, मैटलौक बैङ्क (Phineas Davis, Matlock Bank) पर रहता था। उस का जिगर भयानक रूप से ख़राब हो गया और साथ ही आमवात रोग भी बहुत पुराना पड़ गया। जब वह चिकित्सालय में आया तो झुकने के कारण लग भग दुहरा था। लग भग दो वर्ष तक कभी अच्छी नींद नहीं आई थी। जिगर और आंते प्रायः अपना काम छोड़ चुके थे। एक सप्ताह के अन्दर ही नींद अच्छी आने लगी, भूख अच्छी लगने लगी। कुछ ही सप्ताह बाद उस ने स्मैड्ले की मशीन में काम करना शुरू कर दिया। तब से वह बिलकुल

अच्छा रहा कभी किसी अवसर पर भी औषध की आवश्यकता नहीं पड़ी।

(६) ली का माउब्रे (Mowbray of lea) लैड कौलिक का एक भयानक रोगी था। सीसे की कच्ची धातु को पिघलने के कारखाने में काम करने से उसे यह रोग होगया था। स्मैड्ले के हस्पताल में पहिले आक्रमण से तो वह शीघ्र ही मुक्त होगया। दूसरी बार जब उस पर आक्रमण हुआ तो चिकित्सक को कष्ट न देने की इच्छा से उसने स्मैड्ले को खबर नहीं दी। रोगी की हालत का खराब समाचार सुनकर उसे बुलाने के लिये स्मैड्ले ने एक गाड़ी भेजी। आंतों में लगातार तीव्र वेदना हो रही थी। कई दिनों से ऐसी हालत थी। आंतें कुछ काम नहीं करतीं थीं। पहिले उसे बिस्तर पर लिटा दिया गया। आध घंटे तक गर्म पानी से आंतों को सेकदिया गया। फिर आर्द्र वेष्टन में लपेट दिया गया। एक घण्टा पड़ा रहने के पश्चात् बाहर निकाला और

खुले ठण्डे पानी से या पानी बहाती चद्दर से उसे साफ़ कर डाला। दर्द अभी तक जारी थी। सम्पूर्ण प्रक्रिया फिर दोहराई गई। दर्द बहुत अंश में चली गई। सायंकाल ६० अंश के जल से १० मिनिट तक कटि स्नान जारी किया। आमाशय और आंतों को साधारण पट्टी से दुगनी पट्टी लेकर लपेटा गया। पट्टी ठंडे पानी में निचोड़ली जाती थी। रात दिन बंधी रहती थी। प्रातः काल से पहिले ही आंतों में क्रिया शुरू होगई। अगले दिन प्रातः काल २० मिनिट तक गर्म पानी से सेक किया। फिर आर्द्र वेष्टन फिर ठंडे पानी से स्नान। ४ घंटों में एक बार गर्म पानी से स्नान। पानी १०० अंश। स्नान १५ मिनिट तक। फिर एक मिनिट तक ठंडे पानी से स्नान। शरीर को खूब मला विशेषतया आंतों को। कुछ ठण्डा पानी पीठ के नीचे के हिस्से पर डाला गया। फिर शरीर की पट्टियां बदलदी गई। ठंडे पानी में गीली करलीं। इसदिन दर्द बिलकुल जाती रही। आंतें दोबार स्वाभाविक

तौर पर काम करने लगीं। गर्म पानी से सेक करने से कुछ व्रण का सा अनुभव रह गया। अगले दिन प्रातः काल शीत आर्द्र वेष्टन, पश्चात् शीत जल स्नान, ११ बजे दुपहर को सेक नहीं किया केवल ठंडे पानी से स्नान कराया। तीन बजे तीसरे पहर फुहार स्नान और ठण्डे पानी का स्नान। रात को नींद अच्छी आई। अगले दिन बिलकुल ठीक हो गया। अन्तिम आक्रमण से पहिले आक्रमण में वह ६ सप्ताह तक औषध चिकित्सा कराता रहा था।

(१०) स्मैड्ले कहता है कि एक बड़े भयानक रोगी की मुझे अपने ही घर पर चिकित्सा करनी पड़ी। यह पुरुष राजराजेश्वरी की नौकरी में था। बर्मुदा (Bermuda) से छः मास पहिले ही लौट आया था। मैडिकल बोर्ड ने इस का रोग वातनाडियों सम्बन्धी पीड़ा (Newralgia) ठहराया था। वह इङ्गलैण्ड में आया। वहां चैथम (Chatham) के मैडिकल बोर्ड ने भी पूर्व कथन

को ही पुष्ट किया। फिर वह मैटलौक में आया। सारे समय दर्द के दौरे उठते रहे, जो पिछले बारह वर्षों से उसे खूब परेशान कर रहे थे। पिछले एक दो वर्षों में तो इतने तीव्र वेग उठे कि जिन से उस में सोचने की ताकत बिलकुल ही न रही। दिन में या रात में एक घण्टा भर नींद भी उसे मुश्किल से ही आती थी। और पिछले पांच वर्षों से तो संज्ञाहरों या उत्तेजकों की बड़ी मात्रायें लिये बिना कभी निद्रा नहीं आई। किसी भी ठोस पदार्थ के भोजन करने में बड़ी कठिनता होती थी। कभी २ तो बहुत दिनों तक केवल द्रव पदार्थ ही लेकर बड़ा साहस करता था, क्योंकि उसे भय रहता था कि भोजन करने से कहीं दर्द के दौरे न उठ खड़े हों। उस ने स्मैड्ले का नाम सुन रक्खा था अतः उसे बुला भेजा। उस के रोग के बारे में कुछ बात चीत करने के पश्चात् स्मैड्ले ने उसे अपने घर ही बुला लिया, क्यों कि वह समझता था कि आशा तो नहीं है परन्तु यदि कुछ हो सकता है तो

घर पर बुला कर ही हो सकता है। स्मैड्ले ने उस को खाने पीने का ठीक २ सब प्रबन्ध कर दिया और तीव्र चिकित्सा आरम्भ की। ७ बजे प्रातः काल १० मिनिट तक कटिस्नान कराया, फिर साधारण स्नान और लघु नलिका स्नान(Small Douche) कराया। फिर स्नान समाप्त करने से पहिले मेरु-दण्ड और कन्धों पर दीर्घ नलिका स्नान (Large Douche) कराया। रात दिन शरीर पर पट्टियां लपेट रक्खीं। साढ़े नौ बजे १ मील दूर चश्मे पर चल कर गया। यहां उस ने जूते और जुराब उतार दिये और गोड़ों तक पानी में ५ मिनिट के लिये उतर गया। पश्चात् सिर पर पानी डाला। फिर लौट आया और आर्द्रवेष्टन कर लिया, इसे फुहार स्नान या स्प्रिट लैम्प की प्रक्रिया से बदलता रहा। स्प्रिट लैम्प कई दिनतक रोज़ दिया गया, इस ने बहुत आराम पहुंचाया। सयं काल ४ बजे कटिस्नान और मेरुदण्ड की मालिश १५ मिनिट तक, बीच २ में कभी २ फुहार स्नान और स्प्रिट लैम्प.ग्रीष्म ऋतु होने के कारण रोगी की चिकित्सा

तीव्र की गई। ६ बजे सायंकाल २० मिनिट तक शिरः स्नान, साथ २ मस्तक पर स्पञ्ज करना। प्रति दिन ५ गिलास पानी सिप करना। रात को ठण्डे पानी में भीगा निचोड़ा तौलिया धारण किया, तथा दिन को भी जितना हो सके धारण किया। दस दिन के अन्दर दर्द के कारण बिना एक बार भी जागे वह रात भर सोया। पांच सप्ताह के अन्दर वह इस रोग से सर्वथा मुक्त होगया। शीत ऋतु भी किसी प्रकार से प्रतिकूल नहीं है, परन्तु तब इलाज का बदला जाना आवश्यक है।

(११) स्मैड्ले कहता है कि दो स्त्रियों के विषय में जल चिकित्सा के द्वारा सफलता प्राप्त करके तो बहुत ही खुशी हुई। ये स्त्रियां कच्चे बच्चे के जन्म के समय किये गये भयानक दर्दनाक शल्य कर्म को भुगत कर १८ मास से कष्ट में पड़ी हुई थीं। इस कर्म ने इन्हें कबर के किनारे पहुँचा दिया था। लण्डन में उच्च स्थिति के मनुष्यों ने अपना विश्वास उद्घोषित किया कि गर्भ धारण की अवस्था में इसी

प्रकार का कर्म करना आवश्यक होगा। इस सूचना को सुन कर उन स्त्रियों ने जल चिकित्सा आरम्भ की। अब वे साधारण सी आवश्यक तकलीफ़ के साथ बहुत ही स्वस्थ बच्चे उत्पन्न कर चुकी हैं। उन में से पहिली तो कुछ महीने तक यहीं रही और स्वाभाविक शक्ति को बढ़ाने वाली हमारी चिकित्सा का पालन करके वह मज़बूत और ख़ूब हृष्ट पुष्ट होगई। दूसरी ने भी स्वस्थ हो कर एक उत्तम सन्तान प्राप्त करली है। निस्सन्देह ये बच्चे ख़ूब बढ़े और फूले फले। उत्पन्न होने से पहिले उन के शरीर में औषधि का एक कण भी नहीं था। हलकी चिकित्सा के द्वारा और उत्तेजक पदार्थ तथा औषध के त्याग द्वारा माता पिता ७, ८ महीनों से इतने अधिक स्वस्थ थे कि वे अपनी सन्तान को अत्यन्त परिशुद्ध पोषक पदार्थ देते रहे। हज़ारों स्थिर रोगियों के कष्ट और उनके कुघड़ शरीर उन के माता पिता के द्वारा उन के शरीर में उस समय हुसी

गई औषधियों के कारण होते हैं, जिस समय उन्होंने संसार में प्रकाश का अनुभव भी नहीं लिया होता।

इस प्रकार एलोपैथी के मुक़ाबिले में जल चिकित्सा की विजय के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। विचार शील मनुष्यों के लिये इतने ही पर्याप्त हैं।

हमारे गरीब देश की आज कल की अवस्था ऐसी है कि भोजन, वस्त्र और रोगों से तङ्ग आये हुए भारतीयों को विदेशी औषधियों को खरीद कर अपना रुपया विदेश में बहाना उचित नहीं है।

इन औषधियों से बल और धन दोनों का नाश होता है। धैर्य के साथ इलाज किया जाय तो जल चिकित्सा के द्वारा स्थिर इलाज होता है, जो औषधियों के द्वारा कदापि सम्भव नहीं है। जल चिकित्सा स्वावलम्बन के सिद्धान्त के बहुत समीप है। इस लिये इस विज्ञान को समझ कर स्वावलम्बन धारण करके जल चिकित्सा से ही

सब रोग दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। स्वराज्य प्राप्ति के युद्ध में असहयोग सम्बन्धी अन्य उपायों की तरह जलचिकित्सा विज्ञान भी बड़ा भारी हमारा सहायक हो सकता है॥

‡ वर्तमान समय में विटामिन्ज़ (vitamins) सम्बन्धी विचार

इङ्गलैण्ड और अमेरिका के वैज्ञानिकों के १४ वर्ष तक लगातार अन्वेषणात्मक परिश्रम से सिद्ध कर दिया है कि औषधोपचार में विटामिन्ज़ अत्यधिक आवश्यक पदार्थ हैं। विटामिन्ज़ के कम से कम तीन भेद हैं। विटामिन्ज़ की रासायनिक रचना अभी तक अज्ञात है। सब ही अन्वेषण से इस बात को पुष्ट करते हैं कि वानस्पतिक तन्तुओं में विटामिन्ज़ बनते हैं। वनस्पति से ये वनस्पति भोजियों में जाते हैं और वहां से ये मांस

‡ The medical Annual 1928; Viamins, Present Position.

भोजियों को प्राप्त होते हैं। मनुष्य जिस समय प्राकृतिक वानस्पतिक भोजन करता है और उस का भोजन भिन्न २ प्रकार का होता है उस समय विटामिन्ज़ की पर्याप्त मात्रा उसे प्राप्त हो जाती है। परन्तु जब वनस्पति को पाकशास्त्र की विविध कृत्रिम प्रक्रियाओं में से गुज़ार कर विटामिन्ज़ से सर्वथा रहित कर दिया जाता है तब ऐसी वनस्पति के भोजन करने से मनुष्य को वातबलासक (Scurvi or Beriberi) आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

वातबलासक रोग में पोषण संस्थान की शक्ति मन्द पड़ जाती है। शक्ति मन्द पड़ने का कारण भोजन सम्बन्धी गलतियां हैं। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्नलिखित होते हैं— दौर्बल्य, पाण्डु, मसूढ़ों का फूलना, मसूढ़े आदि की श्लैष्मिक कला से रक्त स्राव, टांगों और पिण्डलियों की मांसपेशियों की कठोरता।

जहाज़ चलाने वाले मल्लाहों, मच्छी खाने वालों और नमक डालकर मान्स खाने वालों को यह रोग प्रायः होता है। जो लोग मशीन से साफ़ किये हुए चावल और बहुत मात्रा में खाते हैं वे भी इस रोग से आक्रान्त होते हैं।

इस रोग की चिकित्सा के लिये और पहिले से ही इसे रोकने के लिये कच्चे ताज़े आलू, स्कर्वी घास, प्याज़, विशेषतया नीम्बू का रस ये सब भोजन के तौर पर और औषध रूप से भी बहुत अच्छे हैं।

नीम्बू का रस इस रोग को दूर करने और रोकने के लिए बहुत ही अच्छा है यह बात बृटिश नौ सेना को सन् १८०० में ही ज्ञात थी। १६ वीं शताब्दि के अन्त में जापान की नौ सेना में दिखलाया गया था कि जौ और चावलों के भूसे में नसों की शोथ को दूर करने और रोकने के लिये विशेष पदार्थ है। लगभग ठीक इसी समय ईज़कमैन ने मालूम किया था कि वात बलासक ज्वर

(Beri-Beri) के साथ प्रायः बहुसंख्यक वात-नाड़ियों में शोथ भी होती है। उसने सिद्ध किया कि उसके पक्षियों को उत्पन्न हुए इस रोग के लक्षण शीघ्र ही मिट गये जब कि उनके भोजन के साथ चावलों का बाहिर का, मोटा छिल्का मिला दिया गया, जो कि चावलों को साफ़ करते समय बिलकुल निकाल कर फेंक दिया जाता है।

गोलैण्ड हौपकिन्ज़ ने सन् १९०६ में पता लगाया कि वृद्धि को उत्तेजना देने वाला पदार्थ दूध में मौजूद है। परीक्षण के लिये पाले गये जानवरों के भोजन में बहुत थोड़ी मात्रा में यह मिलाने से उन की वृद्धि में आश्चर्य जनक परिणाम उत्पन्न हुआ। अमेरिका में मैककौलम, डेवीज़, और औसबौर्न तथा मैन्डेल भी ठीक इसी परिणाम पर पहुंचे।

विटामिन्ज़ A, B, C इत्यादि अक्षरों से सूचित किये जाते हैं।

A विटामिन स्नेह में घुलने वाला और वृद्धि को उत्तेजना देने वाला है, इसलिए सब छोटे प्राणियों के लिये आवश्यक है। इस स्नेह विलायक समूह में रिकिट को और वन्ध्यात्व को दूर करने वाले पदार्थ पाये गये हैं। उनको क्रमशः D और E कहते हैं।

रिकिट बच्चों की वह बीमारी है जिसमें उनकी हड्डियां चूने की अनुपस्थिति के कारण नर्म पड़जाती हैं और मुड़ जाती हैं। हड्डियों के सिरों पर या पार्श्वों पर उभार उत्पन्न होजाते हैं।

वन्ध्यात्व बांझपने को कहते हैं। इस रोग में स्त्रियां बच्चा पैदा नहीं कर सकतीं।

B विटामिन जल में घुलनेवाला पदार्थ है। वातनाड़ियों की शोथ को दूर करता है और वृद्धि में उत्तेजना देता है।

C विटामिन भी जल में घुलता है तथा स्कर्वी रोग को दूर करता है। विटामिन प्राप्त करने के लिये प्राणी संसार सर्वथा वनस्पति संसार पर

आश्रित है। ड्रमन्ड और ज़िल्वा ने सब से पहिले पता लगाया कि कौडलिवर औयल में पाये जाने वाले विटामिन्ज़ का स्रोत समुद्र के किनारे लगने वाले छोटे २ पौदे होते हैं। इन पौदों को डाइटोम कहते हैं। इन पौदो में क्लोरोफ़ील बहुत होता है। सूर्य के प्रकाश में ये विटामिन्ज़ को बनाते हैं। इन पौदों को बहुत छोटी २ मछलियां खा जाती हैं। इन छोटी मछलियों को इन से बड़ी मछलियां खा जाती हैं। इन मछलियों को हैरिङ्ग कहते हैं, क्योंकि ये समूह में रहती हैं। अन्त को इन मछलियों को भी कौड नाम की मछली खाजाती है। इस प्रकार कौड के तेल में वनस्पति से ही विटामिन पहुंचते हैं।

विटामिन A

यह विटामिन वृद्धि में उन्नति देने वाला और स्नेह में घुलने वाला पदार्थ है। सन् १८५७ में डेविड लिविङ्गस्टन ने आंख की एक विचित्र अवस्था का वर्णन किया है। डेविड अपनी पार्टी में

था। काफ़ी उड़ रही थी साथ कुछ मादक मूल थे और कुछ अन्न था। आंखें ऐसी आक्रान्त हो गयीं जैसी कि परीक्षण के लिये केवल निशास्ते या प्रोटीन पर पाले गये पशुओं की होगई थीं। १६०४ में मोरी ने सब से पहिले बतलाया था कि अपूर्ण भोजन के कारण ज़ीरोफ़थैल्मिया होजाता है।

जीरोफ़थैल्मिया आंख का रोग है। आंखों में तरावट नहीं रहती, खुश्क होजाती हैं, सूज जाती हैं उसने देखा कि कौड लिवर औयल के देने से आंखों की अवस्था शीघ्र ठीक होगई।

मैककौलम और साइमन्ड्ज़ ने आंखों का वैसा ही रोग चूहों में पाया। चूहों का भोजन दोष पूर्ण था। आंख का रोग उन जानवरों में पाया गया जिन के भोजन में विटामिन A की कमी थी। आजकल यह निश्चित रूप से समझा जाता है कि आंख का आना भोजन में विटामिन A की कमी से होता है। क्रेमर ने सन् १६२४ में बहुत से भिन्न २ शिक्षा विद्यालयों में फैले हुए चक्षुरोग का वृत्तान्त

प्रकाशित किया है। यह वृत्तान्त सन् १८८० से सन १९२४ तक का है। बहुत से फूट कर निकलने वाले रोग मनुष्यों में फैले होते हैं। परन्तु उनकी बड़ी भारी विशेषता यह होती है कि वे छूत से नहीं फैलते। जो उस समय असम्भव समझा जाता था वह अब सम्भव प्रतीत होता है कि ये रोग विटामिन A की कमी के प्रभावों को सूचित कर रहे थे। मोरी ने चूहों की आंखों के रोग के चिह्नों का पूर्ण रीति से विस्तार के साथ अनुशीलन किया। चूहों को यह रोग विटामिन A की कमी से हुआ था। मोरी ने परिणाम निकाला है कि विटामिन A की कमी से मुख्य परिवर्तन अश्रुग्रन्थि से स्राव के बन्द हो जाने के रूप में हुआ और गौण परिवर्तन के रूप में बाह्यआवरण और पलकों में शोथ होगई। मोरी ने यह भी देखा कि चूहों की लाला ग्रन्थियों के कोष्ठ सुकड़ गये थे और स्राव रुक गये थे। क्रेमर ने देखा कि अक्षि शोप के आरम्भ होने के साथ २ आंतों की विल्लाई (villi) की

वृद्धि बन्द होगई है और इनकी मृत्यु आरम्भ हो गई है।

आंतों की श्लैष्मिक कला में पतले डंडे के आकार के उभार होते हैं इन्हें villi कहते हैं।

सन् १९१३ में मैककौलम और डेवीज़ ने निर्धारित किया कि कुछ स्निग्ध पदार्थों में अन्यों की अपेक्षा विशेष गुण हैं। उन्होंने दिखलाया कि चूहों के पोषण के लिये मक्खन और अण्डे के पीले भाग की चिकनाईयों में विशेष पदार्थ है। इन के स्थान में भोजन के अन्दर यदि सुअर की चर्बी या जैतून के तेल का प्रयोग किया जाय तो वह पदार्थ नहीं प्राप्त होता जो मक्खन से प्राप्त होता है। औसबौर्न और मैन्डल ने भी इन्हीं निरीक्षणों को पुष्ट किया और इस ओर ध्यान आकर्षित किया, जिसपर वे विश्वास करते थे, कि वृद्धि को उत्तेजना देने वाले स्नेहों के सेवन से अक्षिरोग दूर हो जाते हैं।

प्राणियों के छोटे बच्चों को विटामिन न दिये जावें तो उन की वृद्धि बन्द हो जाती है और अन्त को उन्हें शीघ्र ही मृत्यु दबा लेती है। वृद्धि के रुक जाने का काल खाये गये भोजन की प्रकृति और उस भोजन में वर्तमान विटामिन्ज़ पर आश्रित है। विटामिन C की अपेक्षा विटामिन A का संग्रह करने की सामर्थ्य शरीर में बहुत अधिक है। यदि यह सामर्थ्य एक बार भी समाप्त हो जावे तो शरीर की वृद्धि रुक जाती है। चूहों के छोटे बच्चों को यदि विटामिन A न दिया जावे तो कमी के चिन्ह फ़ौरन सूचित होते हैं, परन्तु बड़े चूहे कई मास तक स्वस्थ रहते हैं। अन्त को वे भी पोषण की विषमता के चिह्न दिखाने लगते हैं। और जीवाणुओं के आक्रमणों को ग्रहण करने के लिये अधिक योग्य हो जाते हैं। विटामिन पर जब ओषजन की क्रिया होती है तो विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

विटामिन B

सब प्राकृतिक भोजनों में उपस्थित होने के कारण यह विटामिन बहुत फैला हुआ है। यीस्ट

(yeast) और गेहूँ के जर्म में यह बहुत अधिक पाया जाता है। गेहूं के दाने के उस भाग को जहां से कलि निकलती है जर्म कहते हैं।

साफ़ किये हुए चावल, सफ़ेद गेहूँ का आटा, जर्म निकाल डाले गये अन्न के दाने, गेहूं का कठोर हिस्सा, खाण्ड इन में निस्सन्देह विटामिन B नहीं होता इस की रासायनिक रचना के विषय में अभी तक कुछ ज्ञान नहीं है।

गर्म देशों में चावल खाने वाले लोगों को ही अधिकतर वातबलासक (BariBari) रोग होता है।

विटामिन B प्रायः सब की सब भोजन सामग्री में पहिचाना गया है। यीस्ट में इस के पाये जाने से इस की व्यापक उपस्थिति कही गई है। यीस्ट को छोड़कर इस के मुख्यस्रोत पौदों के बीज और पक्षियों के अण्डे हैं। सफ़ेद आटे में इतना विटामिन नहीं होता जो ख़याल किया जा सके। मोटे आटे और आटे के छानस में मशीन में पिसे आटे

की अपेक्षा, दुगना विटामिन होता है। पौदों के बीजों में यह विटामिन अधिक होता है, इस लिये बीजों में वात नाड़ियों की शोथ को दूर करने का विशेष गुण है। इस लिये बाल्य अवस्था में बालकों को आवश्यकता अनुसार पौदों के बीज पर्याप्त मात्रा में देने चाहियें। जहां बेरी बेरी का रोग प्रदेश विशेष में रहता है वहां गर्भवती स्त्रियों में अधिक फैला हुआ पाया जाता है। यीस्ट में यह विटामिन बहुत होता है। यीस्ट के आत्म विनाश और बाहिर निकलने से इस पर कुछ असर नही होता। मान्स में विटामिन B की कमी होती है। कबूतरों का मछलियों से कुछ नहीं बनता है। फलों में टमाटो के अन्दर यह विटामिन यीस्ट से लगभग आधा होता है मशरूम में भी यह विटामिन बहुत पाया जाता है। दूध का विटामिन अनिश्चित है। परीक्षणों से उस की कोई सरूपता नहीं पाई गई है इस का कारण यह है कि गो का भोजन भिन्न २ होता है।

बेरी बेरी का विरोधी पदार्थ दीर्घ काल तक रूक्षता को रोकता है और इस में तापमान को न

बढ़ने देने का भी सामर्थ्य है। अम्लीय घोल में उच्च तापमान पर भी यह बहुत अधिक स्थिर रहता है, परन्तु क्षारीय घोल में अस्थिर होता है। इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि आयुर्वेद में भिन्न २ भोजनों और औषधियों को पकाने के लिये जो अम्लीय और क्षारीय विविध प्रकार के मिश्रण किये जाते हैं, सम्भव है, वे विटामिन की रक्षा और विनाश की दृष्टि से स्थापित किये हों। विटा-मिन B चूंकि उच्च ताप मान पर भी नष्ट नहीं होता अतः अन्न को उचित प्रकार से उचित मात्रा में पकाकर खाने से भी कुछ नुकसान नहीं है, क्यों कि तब भी बुद्धि को उत्तेजना देने, और वातिक शोथ को दूर करने का सामर्थ्य भोजन में बना ही रहता है। † रोटी, बिसकिट आदि पदार्थ पकाने में विटामिन B की मात्रा में कोई चिन्तनीय कमी नहीं आती। परन्तु भोजनों को सुरक्षित करने और टिन में बन्द करने के लिये १०० अंश शतांश से भी

† Medical Research Council Report.

अधिक तापमान देना होता है, इतने उच्च तापमान पर विटामिन B बहुत ही थोड़ी मात्रा में रहते हैं या बिलकुल नष्ट हो जाते हैं।" अतः टिन आदि में सुरक्षित बन्द करके बिकने वाले भोजन अधिकतर न खाने चाहियें।

मैक कैरिसन ने कबूतरों और बन्दरों पर परिश्रम के साथ अनुशीलन करके परिणाम निकाले हैं कि लक्षण विशेष क्रम से प्रकट होते हैं। सब से पहिले भोजन में अरुचि और क्षुधा नाश प्रकट होते हैं, आमाशय और आंतों के कार्यों में व्यतिक्रम, अजीर्ण, आन्त्र शोथ, भार हानि, बलक्षय, शिर पीड़ा, पाण्डु, श्वयथु की ओर प्रवृत्ति, तापमान का साधारण अवस्था से गिर जाना, दिल की दुर्बलता और अन्त में वातसंस्थानिक लक्षणों में वृद्धि होती है।

फ़िण्ड्ले ने पता लगाया है कि मुख्य वात संस्थान में नसों के कोष्ठों में से प्रोटीन के दानेदार बड़े २ कणों की सर्वथा अनुपस्थिति नसों के क्षय

का रूप है। जिस पक्षी की वात नाड़ियां इस प्रकार क्षीण हो चुकी हों उसे यीस्ट खिलाने से मुख्य वात संस्थान में नष्ट हुए दाने फिर बनने लगते हैं। रोगी पक्षियों में वृक्क के आवरण में स्नेह की मात्रा बहुत अधिक बढ़जाती है परन्तु यीस्ट देने से वह बड़ी भारी मात्रा में घट जाती है। इस से फिएड्ले परिणाम निकालता है कि विटामिन B की कमी से शरीर के कोष्ठों की मींगी (nucleus) में उत्पन्न होने वाला अम्ल जिसे (nucleic-acid) न्यूक्लीइक अम्ल कहते हैं बनना बन्द होजाता है, अतः विटामिन B न्यूक्लीइक अम्ल की रचना में मुख्य भाग लेता है। उसने बैल के भिन्न २ अङ्गों में विटामिन B और न्यूक्लीइक अम्ल की मात्रा का समानुपात दिखलाया है।

जिस प्रकार स्नेह में घुलने वाले विटामिन के दो कार्यों के अनुसार दो विभाग हैं एक विटामिन A और दूसरा विटामिन D, इसी प्रकार विटामिन B के भी नसों की शोथ को दूर करना

और वृद्धि को उत्तेजना देना दो कार्य हैं। यह हो सकता है कि ये दोनों कार्य एक ही विटामिन के हों। परन्तु सोलमन ने अभी विटामिन C समूह में दो पृथक् २ कार्यकर्त्ता पदार्थों को पहिचाना है। उसने दिखलाया है कि वेलवैट बीन और सोय बीन के बीजों की तथा वेलवैट बीन और रेप के पत्तों की तुलनात्मक परीक्षा की जावे तो पता लगता है कि बीजों में वातिक शोथ को दूर करने और बेरी बेरी रोग को हटाने का विशेष गुण है और पत्तों में बीजों की अपेक्षा वृद्धि को उत्तेजित करने का अधिक गुण है। इसी के आधारपर एक प्रकार की मट्टी तय्यार की गई है जिसे फुलर की मट्टी कहते हैं और जो त्वग् व्रणों की चिकित्सा के लिये व्रणों पर लगाई जाती है। उसने परीक्षण में पैदा हुए कबूतरों और चूहों के बेरी बेरी रोग को तो दूर कर दिया परन्तु चूहों की वृद्धि को उत्तेजना नहीं दी।

विटामिन C

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विटामिन C की कमी से स्कर्वी रोग उत्पन्न होजाता है। हौलस्ट और फ्रौहलिक ने सन् १९१२ में पता लगाया कि जब गिनिपिग को केवल रोटी या अन्न का भोजन दिया गया तब उसे स्कर्वी रोग शीघ्रता से बढ़गया। उन्हों ने यह भी देखा कि गाजर या शलगम का भोजन देने से गिनी पिग का भार तो घट गया परन्तु स्कर्वी नहीं बढ़ा। उन्होंने यह भी बतलाया कि पकाने या सुखाने से स्कर्वी को दूर करने वाला पदार्थ नष्ट हो जाता है। ड्चर और हान्ट ने भी सिद्ध किया है कि दूध का विटामिन C पदार्थ गौ के भोजन पर अवलम्बित है। इस प्रकार हेमन्त ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु का दूध अधिक महत्व रखता है। यह विटामिन सब ताज़े फलों और ताज़ा वनस्पतियों में होता है। टमाटो, नारङ्गी, निम्बू इस सबन्ध में बहुत ही महत्व के पदार्थ हैं। इन की अपेक्षा सेब इस

सम्बन्ध में अत्यन्त दरिद्र है। गोभी, कैरट, लैट्यूस और सैलरी इस विटामिन के धनी स्रोत हैं। सब विटामिन्ज़ में से यह सबसे अधिक अस्थिर है। परन्तु ओषजन की अनुपस्थिति में यह पदार्थ ताप को बहुत अधिक रोकता है। ओषजन इसे शीघ्र ही निष्क्रिय बना देता है। वैज़सोनोव ने इस को सघन रूप में तय्यार किया। तय्यार करने से ऐसी वस्तु बन गई जिस में स्नेह और प्रोटीन्ज़ बिलकुल नहीं थे, और जो गिनिपिग को १ ग्राम की मात्रा में देने से उन की रक्षा करने में बहुत समर्थ थी।

परीक्षणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मनुष्य, बन्दर और गिनिपिग को उस समय स्कर्वी रोग हो जाता है जिस समय उन्हें विटामिन C नहीं मिलता है। परन्तु चूहों, प्रेरी कुत्तों, और पक्षियों को यह रोग नहीं होता। चूहों के जिगर में विटामिन C मिलता है। जब तक किसी अन्य वस्तु में विटामिन C का पता नहीं लगा था तब तक योरोप में चूहों का जिगर निकाल कर स्कर्वी

रोग से पीड़ित व्यक्ति को दिया जाता था। गिनि-पिग को तीव्र स्कर्वी रोग होने पर चूहे का जिगर देने से अद्भुत प्रभाव देखा गया है।

ज़िल्वा ने सिद्ध किया कि Ph ६.८ मात्रा में नीम्बू का रस लेकर कार्बनिक अम्ल गैस के वायु मण्डल में दो घंटे तक खौलाया जाय तो तीन चौथाई से अधिक शक्ति नष्ट हो जाती है। क्षारीय घोल में नाश अधिक होता है, और अम्लीय घोल में कम।

शरीर में विटामिन C को संग्रह करने की शक्ति इतनी थोड़ी है कि उस को विचार में नहीं लाया जा सकता। स्कर्वी पैदा करने वाले भोजन खिलाने से पहिले यदि गिनिपिग को निम्बू का रस बड़ी मात्रा में दे दिया जाय तोभी स्कर्वी पैदा होने में कुछ देर नहीं लगती। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि शरीर के लिये भोजन में विटामिन C की उपस्थिति लगातार आवश्यक है, एक बार इकट्ठा खिला देने से कुछ विशेष लाभ नहीं है।

बच्चों के भोजन की ओर ध्यान रखने की यह आवश्यक बात है। यदि किसी बच्चे को थोड़े २ भोजन के साथ केवल गर्म दूध पर पाला जाय और ताज़े फलों का रस बिलकुल न दिया जाय तो कुछ ही सप्ताह में उनके शरीर की प्रवृत्ति स्कर्वी रोग की ओर हो जावेगी। इस लिए मैक कौलम कहता है कि जब बच्चा बीमार हो जावे तब उसके भोजन का निरीक्षण करना अधिक बुद्धिमत्ता का लाभप्रद काम है। बच्चे के दांतों के चारों ओर के कठोर मांस के स्पञ्ज के सदृश बनने की ओर जड़ों के फूलने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। ये स्कर्वी के निश्चित चिह्न हैं।

विटामिन D

यह कौड लिवर ऑयल में और अन्य जान्तविक स्नेहों में पाया जाता है। इसका मुख्य कार्य हड्डियों के कच्चेपन को दूर करना है। यह विटामिन A के साथ रहता है। बहुत थोड़ा काल हुआ है जब से जान्तविक स्नेहों के, वृद्धि को उत्ते-

जना देने और हड्डियों को मज़बूत करने के, गुणों के बीच में भेदक पहिचान मालूम हुई है। विटामिन D के विषय में कुछ खास भेदक पहिचानें अब ज्ञात हुई हैं। यदि इसे वायु की उपस्थिति में गर्म किया जाय तो यह ओषजन की क्रिया को रोकता है। कौड लिवर औयल को वायु में कुछ काल तक गर्म किया जाय तो हड्डियों को मज़बूत करने की इसकी शक्ति तो वर्तमान रहती है, परन्तु वृद्धि को उत्तेजित करने का इसका धर्म जाता रहता है। आंख दुखने आवें तो उस पर मक्खन की चिकनाई बांधनी चाहिये और मक्खन खाने को देना चाहिये, क्योंकि कौडलिवर औयल की अपेक्षा मक्खन आंख दुखने के रोग पर अधिक प्रभाव डालता है, जब कि मक्खन की चिकनाई की अपेक्षा कौड लिवर औयल में हड्डि को मज़बूत करने की शक्ति बहुत अधिक भी होती है। गौ के दूध में हड्डि को मज़बूत करने की शक्ति अधिक होती है। यदि इस शक्ति को दूध में अधिक बढ़ाना हो तो गौ को सूर्य के

प्रकाश में अधिक रखना चाहिये, अर्थात् जो गौएं खुली हवा और धूप में चरती फिरती रहती हैं उन का दूध अन्धेरे में बंधी रहने वाली गौओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और आरोग्य सम्पादक होता है। परन्तु इस प्रकार वृद्धि को उत्तेजना देने वाली दूध की शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विटामिन A को विटामिन D से पृथक् करने के लिये आर्सनिक क्लोराइड से परीक्षा की जाती है। यह परीक्षा विटामिन A पर लगती है विटामिनD पर नहीं।

भोजन में जो हम चूना और फ़ौस्फ़ोरस खाते हैं हड्डियों को मज़बूत करने वाला विटामिन उनकी विषमता को दूर करता है। जितना ही अधिक इन पदार्थों में विषम अनुपात या दोष हो हड्डियों की कमज़ोरी को दूर करने में विटामिन्ज़ उतना ही अधिक आवश्यक कार्य करते हैं। यदि चूना और फ़ौस्फ़ोरस अच्छी समता में हों और प्रत्येक की उपस्थिति तुल्य हो परन्तु हड्डियों को मज़बूत

करने वाला विटामिन भोजन में अनुपस्थित हो तो हड्डि ऐसी बनेगी जिस में चूना अच्छी प्रकार जमा न हो।

हैस, अङ्कुर और पैपन हीमर ने देखा है कि चूहे यदि सूर्य के प्रकाश में प्रति दिन थोड़ी देर के लिये रक्खे जावें तो उनका भोजन हड्डियों को कमज़ोर करने वाला होते हुए भी वह हड्डियों को कमज़ोर नहीं करता है। इस के अतिरिक्त जो चूहे अन्धेरे में रक्खे जाते हैं उन मे हड्डियों की कमज़ोरी के स्पष्ट चिह्न नज़र आते हैं। पारदीय वाष्प सम्बन्धी लैम्प की शिलास्फटिक (quart) में से होते हुए नीलोत्तर रश्मि के प्रकाश के प्रसार में हड्डियों की कमज़ोरी को दूर करने का बड़ा बल होता है। चूहों को यदि पूर्ण अन्धकार में रक्खा जावे परन्तु भोजन उनके स्वास्थ्य के लिये सर्वथा अनुकूल हो तो भी हड्डियों में निबलता उत्पन्न नहीं होती। इसी को यूं कह सकते हैं कि अस्थि भङ्गुरता (Rickets) को रोकने के लिए

अस्थि भङ्गुरता का विनाशक विटामिन आवश्यक मुख्य पदार्थ है, जब कि साधारण अस्थि निर्माण के लिए आवश्यक भोजन सम्बन्धी भाग की कमी को दूर करने में सूर्य का प्रकाश आवश्यक भाग लेता है। स्टीन बौक और ड्रमन्ड ने एक नई पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने दिखलाया है कि जोपदार्थ अस्थि भङ्गुरता प्रतिरोधि गुण को धारण करने के लिये बिलकुल जड़ हैं उन्हें नीलोत्तर प्रकाश के प्रतिक्षेप के द्वारा उस गुण को धारण करने के लिये उत्तेजित किया जा सकता है।

शरीर के अन्दर गोल—गोल स्फटिकाकार स्निग्ध पदार्थ होता है। जिसे कौलेस्टरोल (cholesterol) कहते हैं। यह सब जान्तव स्नेहों और तेलों में पाया जाता है, तथा पित्त, रक्त, मस्तिष्क-तन्तु, दूध, अण्डलाला, वातनाड़ियों के तन्तुओं के आवरण, जिगर, गुद, वृक्कोत्तरग्रन्थि में पाया जाता है। इससे अतिरिक्त रक्त वाहिनियों के आव-रणों में जब स्नेह पदार्थ टूट जाता है तब वहां भी

यह पदार्थ पाया जाता है। अर्बुदों और अर्बुद प्रणालिकाओं में पाया जाता है। इसमें सर्प विष को उदासीन करने की शक्ति है। इसी पदार्थ से मनुष्य के शरीर में सर्प विष के प्रति प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होती है। इस पदार्थ को नीलोत्तर रश्मि प्रकाश के प्रभाव में रखने से इस में अस्थि भङ्गुरता का प्रतिरोधी गुण पाया जाता है। इस पदार्थ को जब उच्च अंश तक शुद्ध किया गया तब भी इसमें यह गुण पाया गया। परन्तु शुद्ध हुए इस पदार्थ को जब नीलोत्तर रश्मि प्रकाश में रखते हैं तब इसमें अस्थि भङ्गुरता प्रतिरोधक गुण बिलकुल नहीं रहता।

विटामिन E

चूहों को परिक्षण के लिए देर तक एक प्रकार का मिश्रित भोजन दिया गया। इस भोजन में स्नेह, कर्बोदित (खांड), प्रोटीन शुद्ध रूप में वर्तमान थे। भोजन में नमक, विटामिन A और विटामिन B भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान थे। कुछ समय

तक चूहों में स्वास्थ्य के सम्पूर्ण चिह्न दीखते रहे। कुछ न कुछ काल के पश्चात् ये जानवर सन्तानोत्पत्ति के लायक बिलकुल नहीं रहे। गर्भ धारण तो होता था, परन्तु १० से २० दिन के अन्दर गर्भ विलीन हो जाता था।

विटामिन E बहुत से जान्तव तन्तुओं में मिलता है। परन्तु बड़ी मात्रा में नहीं मिलता। कौड लिवर औयल में यह बिलकुल नहीं होता। लैट्यूस, एल्फ़ेल्फ़ा, मटर और चाय के पत्तों में बहुत अधिक पाया जाता है। मक्का और गेहूं के गर्भाशयों में इसकी मात्रा अधिक होती है। गर्भ की अवस्था में यह विटामिन माता से उसकी सन्तान में आ जाता है। चूहे के बच्चों के तन्तु भी भोजन में वर्तमान बन्ध्यापने के दोष को दूर कर देते हैं। यह स्नेह में घुल जाता है। ताप, प्रकाश, वायु और बहुत से रासायनिक पदार्थों के प्रभाव से इसका नाश नहीं होता, देर तक स्थिर रहता है। ईवन्स,

विशप और श्यूअर ने पता लगाया है कि लैट्यूस, मान्स, गेंहू के अङ्कुर और गोल किये हुए मक्का के दानों में इस विटामिन के होने से इन पदार्थों के द्वारा बन्ध्यात्व रोका जा सकता है और हटाया भी जा सकता है। गोधूमाङ्कुर (Germ) तैल बहुत थोड़ी मात्रा में ही विशेष प्रभावशाली है।

सूर्य का प्रकाश और कौड लिवर औयल दोनों ही अस्थि भङ्गुरता को दूर करते हैं क्योंकि सूर्य का प्रकाश त्वचा में वह पदार्थ उत्पन्न करता है जो कौड लिवर औयल में मौजूद है।

अब यह बात आसानी से समझ में आती है कि उष्ण प्रदेशों के निवासियों और शीत कटिबन्ध में रहने वालों में अस्थि भङ्गुरता का रोग क्यों कम होता है। उष्ण प्रदेशों के लोगों को धूप का सेवन अधिक हो जाता है, उनके भोजन से उन्हें चूना बनाने वाले विटामिन्ज़ की मात्रा थोड़ी मिलती है अतः एस्किमों को बड़ी मात्रा में लेकर वे अपना

कार्य करते हैं। भोजन की वर्तमान शिल्प सम्बन्धी अवस्थाओं से आक्रान्त शीतोष्णकटिबन्ध में रहने वाले लोगों को ये दोनों ही चिकित्सा सम्बन्धी साधन बहुत कम मात्रा में प्राप्त होते हैं। परन्तु उपर्युक्त निर्देशों का बुद्धि पूर्वक प्रयोग किया जाय तो नागरिक लोग इस भयानक रोग के आक्रमण से बहुत कुछ मुक्त हो सकते हैं।

विटामिन्ज़ के विचार से आहार विहार

आहार विहार का विचार करना मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बहुत से मनुष्य अपने अमूल्य जीवन से संसार को लाभ पहुंचाते हुए आहार विहार के अज्ञान से अपने जीवन को शीघ्र समाप्त करके संसार की आशाओं पर पानी फेर कर अपने पीछे लोगों को शोक सागर में निमग्न करके इस संसार से चल बसते हैं। इतना ही नहीं कि बिना विचार करके अहार विहार करने से अपने कारण दूसरों को कष्ट पहुँचता है प्रत्युत अपना जीवन भी सुखमय नहीं रहता।

मनुष्यों को देखा है कि किसी रोग के होजाने पर अपने कर्मों को लाञ्छन लगाते हैं ; शरीर का धर्म ही है कि उसमें रोग हों क्योंकि "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" प्रसिद्ध है इस प्रकार अपने को सन्तोष देते हैं ; परमात्मा की लीला अपरम्पार है, कौन जान सकता है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं, बड़े २ ज्ञानी और विज्ञानी हाथ पांव मारकर रह गये पर कोई अपने आप को न बचा सका, इस प्रकार मन को सन्तोष देकर आंख मूंद कर अपने आप को इस संसार रूपी जङ्गल में छोड़ देते हैं पद पद पर ठोकरें खाते गिरते पड़ते अपनी जीवन लीला समाप्त कर डालते हैं।

Blind are they, who have not eyes of wisdom.

And pitiable are they, who tend not to take wisdom in the open-book of Nature.

जो होता है सो होने दो का सिद्धान्त मनुष्य जीवन के लिये घातक है। जीवन को ठीक रास्ते पर ले जाने के लिये मनु ने बड़ा अच्छा सिद्धान्त बताया है।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥ मनु॥

इसका अभिप्राय है कि मनुष्य का प्रत्येक आचरण ज्ञान पूर्वक होना चाहिये। ज्ञान पूर्वक आचरण करने से ही मनुष्य नानाविध कष्टों से बचता है। दुःख का कारण अधर्म है। अधर्म का एक मात्र स्वरूप अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य संसार में दुःख उठा रहे हैं उनके कार्यों में बाधायें उपस्थित हो रही हैं।

जो जातियां रहने के ढङ्ग को नहीं जानतीं। यह नहीं जानतीं कि हवा, धूप, और प्रकाश के द्वारा मनुष्य को और प्राणी संसार को जीवन शक्ति प्राप्त होती है, अथवा जिस जाति का ज्ञान क्रिया में नहीं आ रहा है, उसके अन्दर ऐसी

कुप्रथायें चली हुई हैं जिनके कारण उस जातिके बच्चे कमज़ोर हो रहे हैं और वह जाति धीरे २ क्षीण हो रही है। जाति की अवनति में उन नियमों का अज्ञान ही कारण है जिनके पालन करने से उस जाति के बच्चे बलवान होकर उस जाति को मज़बूत बना सकते हैं।

बच्चों को बलवान बनाने के लिये, उनके शरीरों को बढ़ाने के लिये ऐसे पदार्थ उनके शरीरों में जाने चाहियें जिनमें वह सामर्थ्य है। जब बच्चा बहुत छोटा होता है, केवल दूध ही पीता है। दूध और मक्खन में वह जीवन तत्त्व या विटामिन मौजूद है जो वृद्धि को उत्तेजना देता है। जब तक मनुष्य की वृद्धि की अवस्था है तबतक अन्य आहार का सेवन करते हुए भी दूध पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिये। अच्छी स्वस्थ गाय का धारोष्ण दूध पीना अति उत्तम है। जो गायें छाया में खड़ी नहीं रहतीं धूप में चलती फिरती रहती हैं उनके दूध में जीवनतत्त्व विशेष होता

है। इन गौओं का दूध बच्चों को पिलाने से उनके शरीर की वृद्धि अच्छी प्रकार होती है और वे स्कर्वी रोग से प्रायः बचे ही रहते हैं। स्कर्वी रोग में बच्चे दुर्बल रहते हैं और उनके शरीर पर से छिलके २ उतरा करते हैं और खुजली हुआ करती है। दूध में यह विशेषता है कि यह स्कर्वी रोग को दूर करने के साथ २ हड्डियों के कच्चेपन को भी मिटाता है, क्योंकि दूध और मक्खन में विटामिन डी रहता है जिसका यह गुण है। बच्चों की आंखें बहुत दुखने आया करती हैं। जो बच्चे प्रायः दूध पीते हैं उनको अक्षिरोग नहीं होते या बहुत कम होते हैं। दूध में सब प्रकार के विटामिन हैं। दूध को गर्म करने से इन जीवन तत्वों में न्यूनता अवश्य आजाती है। जो बालक दूध न पी सकते हों उन्हें कच्चे दूध में से मक्खन निकाल कर देना चाहिये, अथवा दूध में सोंठ, पिप्पली वा इलायची उबाल कर दूध दे सकते हैं।

लोगों को रोग होने का प्रधान कारण पोषण

संस्थान की निर्बलता है। पोषण संस्थान को बलवान करने का सामर्थ्य विटामिन ए में है। विटामिन ए से यह लाभ उठाने के लिये कच्चे ताज़े आलू, प्याज़ और निम्बू खाने चाहियें। कच्चे ताज़े आलुओं को आग में भून कर प्याज़ मिला कर और निम्बू निचोड़ कर खाने के लिये अच्छी चाट बन जाती है। भोजन के लिये जौ के आटे की रोटी उत्तम है। चावल खाने हों तो चावलों के ऊपर का छिलका उतार कर फेंक नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य मैशीन के द्वारा साफ़ किये हुए चावल खाते हैं उनके पोषण संस्थान ख़राब हो जाते हैं और उन्हें 'बेरी बेरी' रोग हो जाता है। इस रोग में मनुष्य का वातसंस्थान और श्लेष्म संस्थान दोनों विकृत हो जाते हैं। मनुष्य वातश्लैष्मिक ज्वर से आक्रान्त रहता है। पोषण संस्थान को बल विटामिन ए से मिलता है। यह तत्व चावलों के छिलकों में रहता है। साफ़ किये हुए चावल अधिक खाने से विटामिन ए शरीर में

नहीं पहुंचता और इसीलिये आंखें भी दुखने आजाती हैं। चावलों से बादी तभी होती है जब छिलके उतार कर खाये जाते हैं। चावलों में जीवन तत्व (विटामिन् ए और डी) उनके छिलके में रहता है। इस दृष्टि से सतुष चावलों का सेवन हितकर है वितुष का नहीं।

जिन की आंतें कमजोर हों, हड्डियों में कच्चापन हो, शरीर क्षीण हो रहा हो, वात संस्थान ढीला पड़रहा हो उन्हें मक्खन, मलाई आदि जान्तविक स्नेहों का प्रयोग करना चाहिये। नीम्बू, नारङ्गी उनके लिये हितकर हैं।

आलू, प्याज, गाजर आदि कन्द मूल उनको खाने चाहियें। शिम्बीधान्यों (फलियों के बीज) में सेम, लोभिया, मटर, मूंग, चणा, मसूर अधिक उपयोगी हैं। उड़द खाने के लिये पकाते समय सोंठ, मिर्च, पीपल डालनी चाहिये, क्योंकि उड़द पेट में वायु अधिक पैदा करते हैं। शिम्बीधान्यों में अर्थात् दालों में नत्रजनीय पदार्थ जो मान्स को

बढ़ाता है बहुत होता है। जिनको मन्दाग्नि हो उन्हें दालें नहीं खानी चाहियें या बहुत कम खानी चाहियें। हाथ की चक्की से पिसे और बिना छने आटे की रोटी खानी चाहिये। विटामिन बी जो वातनाड़ियों को बलवान करता है और वृद्धि को बढ़ाता है, अनाज के छिलके में विशेष रहता है। छिलका उतार फेंकने से आटे में जीवन तत्व बहुत कम हो जाता है। शाकों में टमाटो, मशरूम, गोभी का फूल, बन्द गोभी उत्तम हैं। इनके बादीपन को हटाने के लिये पकाते समय अदरक डालना चाहिये और घी में अच्छी प्रकार छौंकना चाहिये।

स्कर्वी रोग को हटाने के लिये विटामिन ए जिस प्रकार विशेष उपयोगी है इसीप्रकार विटामिन सी भी है। विटामिन ए चिकनी चीजों में रहता है। अतः भोजन में स्नेह खाकर उसे प्राप्त करते हैं। विटामिन बी दालों और अनाज में रहता है अतः दाल और अनाज भी भोजन का विशेष भाग हैं। विटामिन सी अस्थिर है। यह पदार्थों को पकाने से

प्रायः नहीं रहता । अतः कच्चे कन्द, मूल, फल खाकर विटामिन सी को हम प्राप्त करते हैं । कन्द मूल फल भी कच्चे रूप में भोजन के आवश्यक भाग हैं । गाजर, शलगम, टमाटर, नारङ्गी, नीम्बू, गोभी, शलरी, लैट्यूस आदि ताज़े कन्द मूल फल खाने चाहियें । विटामिन सी क्षारीय घोल में नष्ट होता है अम्लीय घोल में नहीं । इसलिये क्षार का प्रयोग फलों के साथ न करके नीम्बू, अनार, नारंगी आदि का प्रयोग करना उत्तम है । बच्चों को फलों के स्थान में दूध और ताज़े फलों का रस पिलाना चाहिये । विटामिन डी तो दूध, मक्खन, मलाई आदि में विटामिन ए के साथ ही रहता है । भोजन खूब चबाने से पदार्थों की जीवन शक्ति विशेष जागृत होती हैं और अपना प्रभाव दिखलाती है ।

जिन स्त्रियों में गर्भ धारण नहीं होता या जो बांझ होती हैं उनके बांझपने को हटाने के लिये विटामिन ए और ई विशेष उपयोगी हैं । इस के

लिये गेहूँ के अङ्कुर, मक्का के दाने, मटर, चाय के पत्ते आदि पदार्थ लाभदायक हैं।

पृथ्वी पर सम्पूर्ण शक्ति सूर्य से आरही है इसलिये स्वास्थ्योन्नति के लिये वा रोग निवृत्ति के लिये शुद्ध वायु में प्रातः सायम् मन्द २ धूप में अवश्य भ्रमण करना चाहिये। बड़े २ जलाशयों के किनारे भ्रमण करने से, गहरे श्वास लेने से मनुष्य की जीवन शक्ति विशेष बढ़ती है, क्योंकि जलाशयों से रेडियम का तीव्र प्रसार होता रहता है। ऐसे जल को पीने से जितना लाभ है, उस से कई गुणा लाभ जलाशय की समीपस्थ वायु के सेवन से है, क्योंकि उस वायु में जल की अपेक्षा रेडियम की क्रियाशीलता सात गुणा रहती है। इस लिये प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने जलाशयों के किनारे सन्ध्योपासन की परिपाटी बहुत अच्छी चलाई है।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

‡ पाश्चात्य जलचिकित्सा का विकास

जल चिकित्सा को अंग्रेज़ी भाषा में Hydropathy कहते हैं। जल-चिकित्सा (Water-cure) के लिये ग्रीक लोगों ने Hydropathy नाम रक्खा है। इस का अर्थ है जल के द्वारा रोगों का इलाज। चिकित्सा में जल का प्रयोग अन्तः बाह्य उभय रूप से होता है। रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में यह शब्द ठीक अर्थ नहीं देता है। कार्यकारक साधन ताप और शैत्य हैं। जल उनका वाहक है, परन्तु केवल मात्र वाहक नहीं है। ताप चिकित्सा (Thermotherapeutics or Thermotherapy) नाम अधिक उचित है, इसमें आक्षेप का स्थान कम है।

जलचिकित्सा की पद्धति के अन्दर प्रयोगात्मक रूप लगभग सन् १८२६ से आरम्भ हुआ है,

‡ The Encyclopaedia Britannica, 11th edition, 1911.

जब औस्ट्रिया के सिलेशिया (Silesia) में ग्रैफ़नबर्ग (Grafenberg) के एक किसान विन-सैन प्रीसनिज़ (१८०१—१८५१) ने गृहपति रूप से सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया था। उसके इलाज का कार्य इतना फैल गया था कि प्रसिद्धि के कारण चारों ओर से आये हुए बहुत लोगों का आश्रयदाता उसे ही बनना पड़ता था। प्रीसनिज़ से चलाये गये उद्योग से पहिले ही, अठारवीं शताब्दी में, जल के औषध रूप से व्यवहार के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी भाषा से जर्मन भाषा में ग्रन्थ अनूदित हो चुके थे। इन ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ सर जौन फ्लौयर (१६४६-१७३४) ने लिखा था। यह लिचफील्ड का एक चिकित्सक था। इसने अनुभव किया कि वहां के गांव के पास के कई चश्मों के पानियों से अनेक रोगों का इलाज होजाता है। इसके आधार पर इसने शीत स्नान का इतिहास खोज निकाला और १७०२ में The History of Cold Bathing, Both

Ancient and Modern (शीत स्नान का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास) नाम से एक पुस्तक लिखी। कुछ ही वर्षों में इस के छः संस्करण निकल गये। सिलेशिया के डा. जे. एस. हेहन (Dr. J. S. Hahn) ने इसका अनुवाद करके १७३८ में प्रकाशित किया। इसका नाम On the Healing Virtues of Cold Water, Inwardly and Outwardly Applied, as Proved by Experience (अनुभव के आधार पर शीत जल के स्वास्थ्य दायक गुणों का अन्तः और बाह्य प्रयोग) रक्खा। दूसरा ग्रन्थ लिवरपूल के डा. जेम्स क्यूरी (१७५६—१८०५) ने लिखा। इसका नाम उसने Medical Reports on the Effects of Water, Cold and Warm, as a Remedy in Fevers and Other Diseases (ज्वर और अन्य रोगों में इलाज के तौर पर ठण्डे और गर्म जल के प्रभावों की मैडिकल रिपोर्ट) रक्खा। १७६७ में यह प्रकाशित हुआ और प्रकाशित होने के पश्चात्

शीघ्र ही मिकेलिस (Michelis—१८०१) और हीजविच (Hegewisch—१८०७) ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया। यह पुस्तक बहुत सम्मानित हुई। वैज्ञानिक आधार पर यह विषय पहिली बार इसी पुस्तक में रक्खा गया। इसी बीच में हेहन के लेखों ने सिलेशिया देश-वासियों में बड़ा जोश पैदा कर दिया था। स्थान २ पर जल के भोजन सम्बन्धी और चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगों को उत्तेजना देने के लिये संघ स्थापित किये जारहे थे। १८०४ में एन्सबैक (Ansbach) के प्रोफेसर ऊर्टल (Ortel) ने उन ग्रन्थों को फिर प्रकाशित किया और जल पीने से तमाम रोगों का इलाज होता है इस विषय में अपनी अमूल्य सम्मतियों से बढ़ते हुए आन्दोलन को और बढ़ाया। उदीयमान प्रीसनिज़ (Priessnitj) ने उसे बहुत ही उत्साही समर्थक लिखा है और उसे शिक्षक भी बतलाया है।

ग्रौफ़नबर्ग में प्रीसनिज़ ने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। उसकी ख्याति के कारण अनेक देशों से प्रत्येक दर्जे के लोग खिंचे चले आरहे थे। चिकित्सक लोगों की संख्या आंखों के लिये विशेष आकर्षक थी। कुछ तो अचम्भे से खिंचे हुए आते थे, और कितने ही अपनी ज्ञान पिपासा बुझाने आते थे। परन्तु बहुत सारे तो असाध्य सिद्ध हुई तकलीफ़ों के लिये इलाज पता लगाने की आशा से आते थे। ग्रौफ़नबर्ग में अनुभवों के बहुत से प्राचीन लेख प्रकाशित हुए। सभी कुछ न कुछ प्रीसनिज़ के दावों को पुष्ट करते थे और कुछ में तो सिर्फ़ जोश भरा होता था, प्रतिभा और विषय गाम्भीर्य कम होता था। कैप्टन क्लेरिज (Claridge) ने १८४० में इंग्लैण्ड के अन्दर जलचिकित्सा का प्रवेश कराया। और उसके पश्चात् सर डब्ल्यू. इरैसमस (Sir W. Erasmus १८०६—१८८४), जेम्स मैनबी गुली (James Manby Gully १८०८—१८८३) और ऐडवर्ड

जौनसन (Edward Johnson) के लेखों और व्याख्यानों ने बहुत लोगों को जल चिकित्सा का पक्षपोषक बनाया । पश्चात् शीघ्र ही मैलवर्न (Malvern) तथा अन्य स्थानों में जल चिकित्सालय स्थापित हुए और वे रोगियों से भर गये । जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका में बड़ी शीघ्रता के साथ जल चिकित्सालयों की वृद्धि हुई । प्राचीन और नवीन चिकित्सापद्धतियों में बड़ा भारी विरोध खड़ा हो गया । प्रत्येक ने दूसरे पर निर्दय और घृणा पूर्ण आक्षेपों का ढेर लगा दिया । राजकीय कमीशन के आधार पर अदालत ने प्रीसनिज़ और उसकी पद्धति को जनता के सन्मुख अधिक ऊंचा रक्खा ।

फिर भी इस प्रकार से जलचिकित्सा की फैलती हुई गति को बहुत धक्का लगा । एक प्रकार का भय उत्पन्न हो गया । अधिक कमज़ोर और भयानक श्रेणी के रोगियों का इलाज कुछ रुक सा गया । पुराने रोगी, जो कठोर संयम वाली

पद्धति और अवश्य होने वाली तीव्र नाजुक हालतों को बर्दाश्त कर सकते थे, उन के सख्त हुकमों पर ही जलचिकित्सकों ने अपने आपको उन्हीं की चिकित्सा के लिये सीमित कर लिया। जौन स्मैड्ले ने प्राचीन पद्धति को मूलरूप से ग्रहण किये जाने की आवश्यकता को फिर से अनुभव किया। यह मनुष्य डर्बीशायर का एक कार्यकर्ता था। इसने अपने शरीर पर शीत-जल-चिकित्सा का अनुभव लिया और अपने साथ के कार्य करने वालों पर भी कुछ प्रयोग किये। जलचिकित्सा के इतिहास में इसने १८५२ में एक नया युग आरम्भ किया। ग्रौफनबर्ग की संस्था के मुकाबले में इसने मैटलौक (Matlock) में एक संस्था कायम की।

बर्लिन के अर्निस्ट ब्रैन्ड ('Ernst Brand, १८२६-१८६७), कील (Kiel) के रौल्जन, (Raljen), थियोडोर वौन जूर्जैन्सन (Theodor Von Jurgensen) और बेसिल

(Basel) के कार्ल लीबरमीस्टर (Karl Liebermeister १८३३—१९०१) ने १८६० और १८७० के बीच में पेट के टाइफस रोग में शीतकारी स्नान का प्रयोग करके अद्भुत परिणामों को देखा, और डा० विलसन फौक्स (Dr. Wilson Fox) के द्वारा इङ्गलैण्ड में जल-चिकित्सा का प्रवेश कराया। फ्रान्स. में जर्मनी की लड़ाई में कुनीन के साथ शीतकारी स्नान का प्रयोग बहुत हुआ। अब तो अत्यन्त तापवृद्धि के इलाज में इसका बड़ा प्रयोग होता है। भीगी चादर से लपेटना तो चिकित्सा का अङ्ग बन चुका है। पूर्व से लौटकर वापिस आकर डेविड अरकुहर्ट (David Urquhort, १८०५-१८७७) ने इङ्गलैण्ड में टर्किश बाथ (Turkish bath) को जारी किया। कौर्क (Cork) के डा० रिचर्ड बार्टर (Dr Richard Barter १८०२-१८७०) ने बड़े जोश और उत्सुकता से इसे ग्रहण किया। अब इसका प्रचार सार्वजनिक होगया है। जल-

चिकित्सा द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य को दी हुई अमूल्य भेंटों में से प्रातःकाल की टब में क्रिया (Morning tub) और पानी पीने का साधारण अभ्यास अद्भुत हैं।

वे प्रयोग और प्रबन्ध जिन के द्वारा सर्दी और गर्मी बड़ी सहूलियत से ली जाती है:—

१. वेष्टन (Packings)—उष्ण और शीत, व्यापी और स्थानिक, स्वेदक और शामक।

२. उष्णवात और वाष्प स्नान।

३. उष्ण वा शीत जल से साधारण स्नान।

४. मेहन स्नान (Sitz bath), मेरु स्नान (Spinal bath), शिरःस्नान (Head bath) पाद स्नान (Foot bath).

५. शुष्क या आर्द्र बन्धन (Bandages or Compresses).

६. उष्ण और शीत सेचन (Hot and cold fomentations), उपनाह (Poultices), राजिका प्रलेप (Sinapism). अतसी प्रलेप

(Stupes), उष्ण और शीत घर्षण तथा जलपान (Rubbings and water potations).

वेष्टन

शरीर को भीगी चादर से लपेटते हैं। इस पर कई सूखे कम्बल लपेटते हैं। पश्चात् कभी २ मोम-जामा भी लपेट दिया करते हैं। फिर घण्टे भर में या कुछ कम समय में वेष्टन उतार डालते हैं और साधारण स्नान कराते हैं।

वेष्टन क्रियाशोधक, शामक, स्वेदक और त्वक्स्राव के उत्तेजक हैं। वेष्टन के कई भेद हैं। उदाहरण के तौर पर शीत वेष्टन। शीत वेष्टन में वेष्टन ढीले और थोड़े होते हैं, इनको सूखने दिया जाता है, इनके प्रयोग के समय का परिमाण निश्चित नहीं होता, वेष्टन सूख जावे तो फिर गीला कर दिया जाता है। जीर्णज्वर की अवस्थाओं में यह बहुत ही उपयोगी है। कुछ स्थानिक वेष्टन भी होते हैं—जैसे धड़ का वेष्टन, उदर का वेष्टन, भुजाओं और टांगों का वेष्टन, शिरोवेष्टन। ये

येपुन भी शोधक, शामक, उत्तेजक होते हैं और हालत के अनुसार प्रयोग किये जाते हैं।

उष्ण वात स्नान

इनमें से मुख्य टर्किश बाथ (Turkish bath) है। दो या कई कमरे होते हैं जिनका तापमान १२० अंश से २१२ अंश तक और इस से भी अधिक होता है। चिकित्सा में प्रायः १५० अंश तापमान तक का ही काम लिया जाता है। २० मिनिट से दो घण्टे तक यह स्नान कराया जाता है, जैसी हालत हो वैसा किया जाता है। पश्चात् साधारण स्नान किया जाता है। कभी २ स्नान मे साबून मलकर शरीर को खूब रगड़ा जाता है। यह स्नान स्फूर्ति देता है, शोधक है, रक्त शोधक है, स्वेदक है, वृष्य है, शरीर की चय और क्षय प्रक्रिया को बढ़ा कर धात्वन्तर-परिणाम को उत्तेजित करता है। यह स्नान रक्त को त्वचा में रखता है, आशयों में सञ्चित रक्त को बाहिर निकालता है, पसीना लाने की शक्ति को बढ़ाता

है, अत्यन्त सर्दी और गर्मी में वातनाड़ियों और रक्तवाहिनियों को उत्तेजित करता और स्फूर्ति देता है। शरीर में अस्वस्थ वृद्धियों और स्रावों के, जैसे कि रक्त में मूत्रघटक पदार्थों के संग्रह, सन्धिशोथ और आमवात के, पूर्व रूपों पर अच्छा प्रभाव डालता है। पूर्णवेष्टन और टर्किश बाथ कुछ स्थान पर अधिकार जमाते हैं और उष्ण स्नान के द्वारा उस की हालत को उन्नत करते हैं। रशियन बाथ या वाष्प स्नान और लैम्प बाथ वर्तमान टर्किश बाथ के पुराने और अवनत रूप हैं। इनमें वायुमण्डल बहुत शुष्क और शुद्ध नहीं हो सकता है।

साधारण स्नान

इससे निम्नलिखित स्नान लिये जाते हैं—वर्षा स्नान (Rain), तुषार स्नान (Spray) झंझा वात स्नान (Shower), उथला स्नान (Shallow), डुबकी स्नान (Plunge),

नलिका स्नान (Douche) तरङ्ग स्नान (Wave), प्रातः स्पञ्ज स्नान (Morning sponge bath), पानी चुआती चद्दर (Dripping sheet), उष्ण और शीत स्पंजिंग (Hot and cold sponging) । ये स्नान उत्तेजक, स्फूर्ति देने वाले, अन्तः बहिः शोधक हैं ।

स्थानिक स्नान

इस से निम्नलिखित स्नान ग्रहण किये जाते हैं—मेहनस्नान (Sitz or sitting) नलिका स्नान (Douche or spouting), मेरुस्नान (Spinal), पादस्नान (Foot), शिरः स्नान (Head) । ये स्नान शीत और उष्ण दोनों तरह के होते हैं। ये केवल शीतजल से, केवल उष्ण जल से या क्रमशः दोनों से लिये जाते हैं । मेहन-स्नान, शिरः स्नान और पाद स्नान कभी २ जल की धारा से भी किये जाते हैं । यदि आतपाघात (Sunstroke) अथवा शिरोगुहा-कलाशोथ (Meningitis) हो जावे तो शोथ और तापमान

को कम करने के लिये धातु की बनी हुई लचकीली पतली नलियों (Leiter's tubes) के द्वारा शीतजल का प्रयोग किया जाता है। ये नलियां धातु की न हों तो इण्डिया रबर की बनी होती हैं। नलियों का एक जाल बना होता है जिस में ठण्डा पानी बहाया जाता है। यदि रक्तवाहिनियों में रक्त स्थिर होजावे, वातसंस्थान सुस्त पड़ जावे, रस चूसने वाली नाड़ियों का कार्य मन्द हो जावे, स्थानिक रक्त सञ्चय हो जावे और चिरस्थायी शोथ हो तो शीघ्र २ गर्म सर्द पानी के क्रमिक प्रयोग से बहुत ही उत्तम लाभ होता है।

बन्धन (Bandages or compresses) दो प्रकार के होते हैं। १. ठंड पहुंचाने वाले— गीले पदार्थ के होते हैं। इनसे वाष्प निकलने के लिये इन्हें खुला छोड़ दिया जाता है। स्थानिक शोथ और ज्वरों में काम आते हैं। २. गर्मी पहुंचाने वाले—ये भी वैसे ही होते हैं। इनको ऐसे पदार्थ से ढक दिया जाता है जिसे पानी न लग सके।

जिस स्थान में अन्तः वा बहिः सञ्चय हो उस स्थान में इन्हें प्रयोग किया जाता है। कभी थोड़े काल के लिये और कभी दीर्घ काल के लिये लगाये जाते हैं। रोटी, चोकर, राई आदि के गर्म उपनाह भी उसी काम आते हैं जिस काम में गर्मी पहुंचाने वाले बन्धन आते हैं। उपनाह २४ घन्टों में दो बार बदले जाते हैं। गर्मी पहुंचाने वाले बन्धनों की अपेक्षा उपनाह अधिक गर्मी देते हैं, अतएव उनके प्रयोग से त्वचा में जीवन क्रिया अधिक होती है।

उष्ण वा शीत सेचन और उपनाह, राजिकोपनाह, उष्णजलसिक्तबन्धन, त्वचा को लाल कर देने वाले प्रयोग, क्षोभक, घर्षण, गूंदना, व्यायाम, जिमनास्टिक्स, विद्युत् इत्यादि भी सहायक के तौर पर बहुत प्रयोग किये जाते हैं।

जल चिकित्सा विषयक स्वाध्याय ग्रन्थः—

Balbirnie—Water Cure in Consumption (1847). Hydropathic

Aphorisms (1856). A Plea for the Turkish Bath (1862)

Beni-Barde—Traited' Hydrotherapic (1874)

Claridge—Cold Water Cure, or Hydropathy (1841). Facts and Evidence in Support of Hydropathy (1843).
Cold water, Tepid water and Friction Cure (1849)

Dunlop—Philosophy of the Bath(1873)

Floyer—Psychrolousia, or The History of Cold-Bathing, &c. (1702)

Hahn J. S.—(Schweidnitz)—Observations on the Healing Virtues of Cold Water (1738).

Hunter—Hydropathy for Home Use (1869).

Lane E. W.—Hydropathy, or the Natural System of Medical Treatment (1857).

Lane R. J.—Life at the Water Cure (1851).

Metcalfe Richard—Rise and Progress of Hydropathy (1906).

Shew—Hydropathic Family Physician (1857).

Smedley—Practical Hydropathy (1879)

Smethurst— Hydrotherapia, or The Water Cure (1843).

Wainwright—Inquiry into the Nature and Use of Baths (1737)

Weiss-Handbook of Hydropathy(1844).

Wilson—Principles and Practice of the Cold Water Cure (1854)

The Water Cure (1859).

वेद में जल की महिमा

अथर्व वेद के प्रथम काण्ड के चतुर्थ सूक्त में बतलाया है कि कुओं में अमृत विद्यमान है। जलों में भेषज अर्थात् रोग निवारक तत्व मौजूद है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र से मालूम होता है कि जलों में अमृत और भेषज कहां से आता है। सूर्य और पृथिवी के बीच में वर्तमान अन्तरिक्षस्थ पदार्थों का रस मधु होता है। वह मधु आकाश से आते हुए जलों के साथ मिल कर इस पृथ्वी पर पयरूप में विद्यमान होता है। उस अमृतयुक्त रोगनिवारक जल को सूर्य के स्पर्श से अध्वर रूप में रक्खा जाता है अर्थात् उन जलों में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता और उन की रोग निवारक शक्ति बनी रहती है। जो उन जलों का सेवन वा उपभोग करना चाहते हैं वे जामि हैं, उन का कर्तव्य है कि वे उन जलों को अध्वर रूप में, अर्थात् ज्यूं का त्यूं बनाये रक्खें, उन में किसी प्रकार की कुटिलता वा विकार उत्पन्न न होने दें। सूर्य की किरणों के साथ मिले हुए आकाश

से आते हुए जल, जो दिन के समय प्राप्त हुए हों रात के न हों, उन जलों में मिलाते रहने से पुराने जल अध्वर बने रहते हैं। वे भी दिव्य जल हैं जिन्हें हमारी गौएं जलों से हवन करने योग्य दूध बनाने के लिये पीती हैं। जिन जलों के पीने से गौओं का दूध बढ़ता है और उत्तम होता है उन में वही अमृत और रोग निवारक तत्व उपस्थित जानना चाहिये। जलों के उत्तम गुणों के कारण ही घोड़ों और गौओं में बल आता है।

अम्बयो यन्त्यध्वभि र्जामयो अध्वरीयताम्।
पृञ्चतो र्मधुना पयः॥ अथर्व० का० १।४।१॥

(पयः) जल को (मधुना) मधु के साथ (पृञ्चतीः) मिलाते हुए (अम्बयः) जल (अध्वभिः) आकाश मार्गों से (यन्ति) आते हैं (जामयः) जलों का उपभोग करने वाले उन को (अध्वरी-यताम्) अध्वर करें॥ १॥

अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ २॥

(अमूः) वे जल (याः) जो (उपसूर्ये) सूर्य के समीप हैं (वा) अथवा (याभिःसह) जिन के साथ (सूर्यः) सूर्य है (ताः) वे जल (नः) हमारे (अध्वरम्) अध्वर को (हिन्वन्तु) गति दें, बढ़ावें ॥ २ ॥

अपो देवी रुपह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ ३ ॥

(अपः) उन जलों को (देवीः) दिव्य (उपह्वये) कहता हूं (यत्र) जहां (सिन्धुभ्यः) जलों से (हविः) हवन करने योग्य दूध (कर्त्वम्) करने को (नः) हमारी (गावः) गौएं जिन्हें (पिबन्ति) पीती हैं ॥ ३ ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

(अप्सु अन्तः) जलों के मध्य में (अमृतम्) अमृत है (अप्सु)जलों में (भेषजम्) रोगनिवारक शक्ति है, (उत) और (अपाम्) जलों के (प्रशस्तिभिः) उत्तम गुणों से (अश्वाः) हे अश्वो (वाजिनः)

बलवान (भवथ) बनो और (गावः) हे गौओ तुम (वाजिनीः) बलवती (भवथ) बनो ॥ ४ ॥

अथर्व वेद के प्रथम काण्ड के इसी सूक्त से अगले ५ वें सूक्त में जल के गुण बतलाये हैं। जल त्वचा में कान्ति, श्रोत्र में सुनने की शक्ति और चक्षु में देखने की शक्ति को देते हैं। आनन्द, प्रसन्नता, सन्तोष, तृप्ति और कामनाओं की पूर्ति को देते हैं। जीवन में बल और प्राण शक्ति को बढ़ाते हैं। अपने पुत्रों से प्यार करती हुई माताओं की तरह हमें अपने कल्याणतम रस प्रदान करते हैं। बड़े खुले जलाशयों से जलों को जीवन शक्ति प्राप्त होती है। जल उस भेषज को देते हैं जो रूखे प्राणियों को स्निग्ध कर देती है और अगतिशील को गति शील बनाती है।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ अथर्व. १, ५, १ ।

(आपः) हे जलो तुम क्योंकि (मयोभुवः) आनन्द, प्रसन्नता और तृप्ति को उत्पन्न करने वाले (ष्ठाः) हो

इस लिये (महे) त्वचा में चमक के लिये (रणाय) श्रवण शक्ति के लिए और (चक्षसे) दृष्टि शक्ति के लिये (नः) हमको (ऊर्जे) बल और प्राण को देने वाले शीतल वायु में वर्तमान रस में (दधातन) रक्खो ॥ १ ॥

शीतल वायु में प्रातः सायम् भ्रमण करने से त्वचा में कान्ति आती है तथा श्रोत्र चक्षु आदि इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है और मन में आनन्द, प्रसन्नता और सन्तोष प्राप्त होते हैं । इस लिये जल से भरी हुई शीतल वायु का सेवन बड़ा लाभ दायक है। प्रातः सायम् तथा अन्य समय में भी प्रत्येक मनुष्य को इसके सेवन से लाभ उठाना चाहिये। ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जिसने गर्मी से व्याकुल होने और थकान के बाद इस वायु के सेवन से उत्पन्न आनन्द का अनुभव न लिया हो। इस वायु में ऊर्ज रहता है, उस में रोग निवारण की शक्ति अद्भुत है, उसी के सेवन के लिये रोगियों को पहाड़ी मैदानों में वा समुद्र के किनारे भेजा

जाता है। समुद्र, झीलों, जलाशयों, नदियों और पहाड़ों के ऊपर इस वायु में से रेडियम के प्रसार उन जलाशयों के जलों की अपेक्षा सात गुणा निकलते हैं। ये प्रसार वह ऊर्ग् रस ही जान पड़ता है जो शरीर, इन्द्रिय और मन में जीवन शक्ति की अद्भुत वृद्धि करता है॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

(उशतिः) प्यार करती हुई (मातरः इव) माताओं की तरह हे जलो ! (वः) तुम्हारा (यः) जो (शिवतमः) कल्याणतम (रसः) रस अर्थात् शक्ति है (तस्य) उसको (नः) हमारे लिये (इह) यहां (भाजयत) बांटो ॥

तस्मा अरङ्ग गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

(आपः) हे जलो (यस्य) जिस शक्ति के (क्षयाय) निवास के लिये, संग्रह के लिये (जिन्वथ) किसी स्थान को प्रीणन करते हो अर-

देते हो (वः) तुम्हारी (तस्मै) उस शक्ति की प्राप्ति के लिये (अरङ्गमाम) हम सामर्थ्य को प्राप्त होवें (च) और (नः) हमारे अन्दर (जनयथा) उस शक्ति को तुम उत्पन्न करो ॥ ३ ॥

जिन स्थानों को जलों ने तृप्त किया है अर्थात् जिन स्थानों में जल भरे हुए हैं उन स्थानों से और सौम्य पदार्थों से तथा सौम्य मनुष्यों से हमें वह जल की अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है और प्राप्त करनी चाहिये ॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ ४ ॥

(वार्याणाम्) जो पदार्थ और प्राणी रूखे हैं, जिन में जल की कमी होने से जो जल के योग्य हैं उनको (ईशाना) सामर्थ्य देने वाले अर्थात् रूक्षता को हटा कर स्नेह उत्पन्न करने वाले तथा (चर्षणीनाम्) गतिशीलों को (क्षयन्तीः) निवास देने वाले अर्थात् अगति शीलता को हटा कर गति शील बनाने वाले (आपः) हे जलो तुम

से (भेषजम्) रोग निवारकशक्ति को (याचामि) याचना करता हूं ॥ ४ ॥

शरीर के अन्दर स्नेह की कमी के कारण रूक्षता बढ़जाने से जहां शाथ उत्पन्न हो जाती है वहां जल चिकित्सा में जल के द्वारा स्नेह की उत्पत्ति होती है और शोथ दूर होती है। लकवा अर्धङ्ग आदि वे रोग जिन में शरीर के अङ्ग निश्चेष्ट अगतिशील हो जाते हैं उनको गतिशील करने के लिये जल में अद्भुत सामर्थ्य है। जल से उन रोगों की अच्छी चिकित्सा होती है। समाज के जिस समूह में दूसरों के साथ सहानुभूति न रखने वाले रूखे स्वभाव के, स्वार्थी, लड़ने झगड़ने वाले व्यक्ति बढ़ जावें उस समूह में जलीय प्रकृति के सौम्य स्वभाव के मनुष्य रखने चाहियें जो उन रूखे मनुष्यों की रुखाई को अपने प्रभाव से निकाल दें और मनुष्यों के अन्दर फैले हुए विषमता रूपी रोग को दूर कर के समता रूपी स्वास्थ्य को उत्पन्न कर दें। मनुष्यों की जिस श्रेणी में हठ दुरा-

ग्रह आदि का लक़वा मार जाता है, मनुष्य निकम्मे हो जाते हैं उस श्रेणी में जलीय प्रकृति के सौम्य मनुष्य ही हठ दुराग्रह आदि को दूर कर के मनुष्यों को सचेष्ट कर्मशील बनाते हैं ॥

इस सूक्त के पश्चात् अथर्व वेद के प्रथम काण्ड का ६ ठा सूक्त देखिये। इस सूक्त में बतलाया है कि दिव्य जलों से मनुष्यों के अभीष्ट और पीने के कर्म होते हैं। मनुष्यों की कामनाओं को पूरा कर के दिव्य जल चारों ओर से सुख की वर्षा करते हैं। दिव्य जल वर्षा के जल हैं। वर्षा के जलों से ही खेतियां हरी भरी दिखलाई देती हैं, नहरें चलती दीखती हैं। कुओं और तालाबों में पानी वर्षा से ही आता है। वर्षा से प्रवाहित हुई नदियों से विद्युत् के बड़े २ कारखाने चलते हैं। सब प्रकार की वनस्पतियां अन्न सम्बन्धी या औषध सम्बन्धी वर्षा से ही उत्पन्न होती हैं। संक्षेप में कहा जाय तो मनुष्य का खाना, पीना, पहिनना आदि जीवन की सम्पूर्ण सामग्री वर्षा के दिव्य

जलों पर आश्रित है। अतिवृष्टि और अल्पवृष्टि दोनों ही जीवन की सुख सामग्री के बाधक हैं। केवल सुवृष्टि के कारण ही चारों ओर से सुखों की वर्षा होती है। जलों में सम्पूर्ण भेषज विद्यमान हैं। जलों में विद्यमान एक अग्नि है जिससे संसार का कल्याण उत्पन्न होता है। जल शरीर की रक्षा के लिये और रोग निवारण के लिये रक्षण के अनेक साधनों को और औषध को उत्पन्न करते हैं जिन के कारण मनुष्य की आयु दीर्घ होती है मनुष्य देर तक सूर्य को देखता है। मनुष्य के जीवन की सुख सामग्री जल पर विशेष आश्रित है इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि बड़े २ टैंकों में उपस्थित जलों को जोहड़ों में वर्तमान जलों को, कुओं और घड़ों के जलों को तथा नदी नहरों में वर्तमान वर्षा के जलों को ख़राब न करें और न ख़राब होने दें किन्तु उन को कल्याणकारी रक्खें।

शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयो रभिस्रवन्तु नः॥ अथर्व० १, ६, १॥

(देवीःआपः) वर्षा के दिव्य जल (नः) हमारे लिये (अभीष्टये) अभीष्ट के लिये और (पीतये) पीने के लिये (शंभवन्तु) कल्याणकारी हों और [नः] हमारे लिये [शंयोः] सुख की [अभिस्रवन्तु) चारों ओर से वर्षा करें ॥ १ ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥ २ ॥

[सोमः] सोम ने [मे] मुझे [अब्रवीत्] बतलाया है कि [अप्सु अन्तः] जलों के अन्दर [विश्वाभेषजा] सम्पूर्ण भेषज विद्यमान हैं [च] और उसी ने जलों में [विश्व शम्भुवम्] संसार को सुख देने वाली [अग्निम्] अग्नि को बतलाया है ॥ २ ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३ ॥

[आपः] हे जलो [मम तन्वे] मेरे शरीर के लिये [सूर्यम्] सूर्य को [ज्योक् दृशे] बहुत देखने के लिये [वरूथं भेषजम्] रक्षाकरी भेषज को [पृणीत] तय्यार करो ॥

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु कुम्भ आभृताः । शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

(धन्वन्याः) तालाबों के (अनूप्याः) जोहड़ों के (आपः) जल (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याण कारी हों । (खनित्रिमाः) कुओं और बावड़ियों के और (कुम्भ आभृताः) घड़े में भरे हुए (आपः) जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों । (वार्षिकीः) नदी नालों और नहरों के जल (नः) हमारे लिये (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) हों ॥४॥ अथर्व वेद के तीसरे काण्ड के सातवें सूक्त के पांचवें मन्त्र में बतलाया है कि जल ही निश्चय से भेषज हैं, जल ही रोग को हटाने वाले हैं । जल सब रोगों की औषध हैं । उन में असाध्य वा अचिकित्स्य रोगों से मुक्त करने की ताकत है ।

आप इद्वा उ भेषजी रापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥

(आपः) जल (इद्) ही (उ) तो (वै) निश्चय से (भेषजीः) औषध हैं । (आपः) जल

(अमीव चातनीः) कच्चे पन से या अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले रोगों के नाश करने वाले हैं। (आपः) जल (विश्वस्य) रोग मात्र की (भेषजीः) औषध हैं। (ताः) वे जल (त्वा) तुझ को (क्षेत्रि-यात्) असाध्य रोग से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥

औषध चिकित्सा से जो रोग असाध्य कह दिये गये हैं वे भी जल चिकित्सा से दूर हो सकते हैं।

इसी मन्त्र से मिलता हुआ एक मन्त्र अथर्व वेद के छठे काण्ड में इक्कानवें सूक्त का तीसरा मन्त्र है। इस मन्त्र से प्रतीत होता है कि औषध चिकित्सा से जब मनुष्य निराश हो जावे तब भी रोग दूर न होते देख कर उसे निराश न होना चाहिये, क्योंकि उस समय जल उसके रोग की चिकित्सा करते हैं ॥

आप इद्वा उ भेषजी रापो अमीव चातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्

॥ अथर्व० ६,९१, ३ ॥

(आप इद्द) जल ही(वै) निश्चय से (भेषजाः) औषध हैं। (आपः) जल (अमीव चातनीः)रोग, पीड़ा और व्रण को दूर करने वाले हैं। (आपो विश्वस्य भेषजीः) जल रोग मात्र का इलाज हैं। (ताः) वे जल (ते) तेरा (भेषजम्) इलाज (कृण्वन्तु) करें।

ऐसा कोई रोग नहीं जो जल चिकित्सा से दूर नहीं होता। जल चिकित्सा से सब रोग दूर होते हैं, असाध्य अवस्था में प्रतीत होने वाले अनेक रोग भी इस से दूर होते हैं। हो सकता है कि रोगों की ऐसी कोई अवस्था विशेष हो जो जल से भी दूर न हो, परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि जल से सब रोगों की चिकित्सा होती है ऐसा वेद मानता है।

इसी प्रकार अथर्व वेद के ६ठे काण्ड में २३ वां और २४ वां सूक्त जल विषयक हैं।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः।
वरेण्यक्रतु रहमापो देवी रुपह्वये॥ अथर्व० ६, २३, १॥

(वरेण्य क्रतुः अहम्] श्रेष्ठ कर्म करने वाला मैं [उपब्रुये] कहता हूं कि [दिवानक्तम्] दिन रात [सस्रुषीः अपसः] बहने वाली जल धाराएं [देवीरापः सस्रुषीः] दिव्य जल बहानेवाली होती हैं।

रात दिन बहने वाली नदियों में जल या तो बर्फ़ के ढलने से आते हैं या किसी ऐसे चश्मे से आते हैं जिस का स्रोत कभी टूटता नहीं है बर्फ़ के स्थिर जल से उस का सम्बन्ध रहता है। बर्फ़ के पहाड़ जो बहुत ऊंचे हैं सर्वदा बर्फ़ से ढके रहते हैं उन में दिव्य जल ही बर्फ़ के रूप में रहता है। बर्फ़ पिघलकर जल धाराओं के रूप में बहने से दिव्य जल ही जल धाराओं के रूप में बहा करते हैं।

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥ अथर्व ६, २३, २ ॥

[कर्मण्याः] कर्म कराने वाले [ओताः] व्यापक [आपः] जल [प्रणीतये] उत्तम गति को प्राप्त करने के लिये [इतः] निकृष्ट अवस्था से

[मुञ्चन्तु] छुड़ावें, [सद्यः] शीघ्र (एतवे) प्रगति को [कृण्वन्तु] करें । जल को अग्नि से तपाने से जल की भाफ़ बनती है, जल फैलते हैं, व्यापक होते हैं । अतः व्यापक जल का मतलब जल वाष्प है । शरीर के अगतिशील निकृष्ट अवस्था को पहुंचे हुए रोगी अङ्गों को यदि वाष्प स्नान कराया जाय तो वे अङ्ग शीघ्र ही गति करने में समर्थ हो जाते हैं । वेद कहता है कि अर्धङ्ग, लक़वा, मचकोड़ तथा अन्य रोग जिन में अङ्गों की गति बन्द हो जाती है उन रोगों में वाष्प स्नान (steam bath) देने से शीघ्र लाभ होता है ।

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥ अथर्व० ६, २३, ३ ॥

(सवितुः देवस्य) सूर्य देव के [सवे] उदय होने पर [मानुषाः] मनुष्य [कर्म] पुरुषार्थ [कृण्वन्तु] करें । [शिवाः] कल्याणकारी [अपः ओषधीः] जल रूप औषधी [नः] हमारे लिये [शम्] सुख कारी (भवन्तु) हों ॥

इस मन्त्र में बतलाया है कि काम करने का समय दिन है। जल के द्वारा सुख प्राप्त करना हो तो रात को आराम और दिन को काम करना उचित है। दिन को मेहनत की जावे तो रात को विश्राम लेना ही पड़ता है। पर्याप्त निद्रा न लेकर रात को भी काम करना वैदिक मर्यादा के विरुद्ध है। इस सूक्त का अगला सूक्त अथर्व वेद के ६ठे काण्ड का चौबीसवां है। वह भी जल की महिमा को ही वर्णन करता है, उस का देवता भी आपः है। उस में बतलाया है कि हिमालय पहाड़ से आता हुआ जल हृदय की जलन का वा हृदय की शोथ का अच्छा इलाज है। जलों को वैद्यों में उत्तम वैद्य कहा है। जल आंखों का, पैरों की एडी और पंजे के रोगों का अच्छा इलाज है। सिन्धु में गिरने वाली और सिन्धु से निकलने वाली नदियों के जलों में उस रोग को दूर करने की अच्छी शक्ति है।

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह: सङ्गमः।
आपो ह मह्यं तद् देवी र्ददन् हृद्योत भेषजम् ॥
अथर्व ६ २४, १ ॥

[हिमवतः] हिमालय से [प्रस्रवन्ति] निकल कर बहती हैं [सिन्धौ] सिन्धु में [समहः] उन का तेज समान हो जाता है. सिन्धु में उन की [सङ्गमः] गति पृथक् नहीं रहती एक हो जाती है।

(तद् देवीः आपः) उस के दिव्य जल (मह्यम्) मेरे लिये (हृद्योत भेषजम्) हृदय की जलन का औषध (ददन्) देते हैं।

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आप स्तत्सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ २ ॥

(यत्) जो (मे) मेरी (अक्ष्योः) आंखों में (च) और (यत्) जो मेरी (पार्ष्ण्योः) एड़ियों में (प्रपदोः) पञ्जों में (आदिद्योत) प्रकट होता है। (भिषजां सुभिषक्तमाः) चिकित्सकों में उत्तम चिकित्सक (आपः) जल (तत् सर्वम्) उस सब को (निष्करन्) निकाल डालते हैं।

(सिन्धुपत्नीः) सिन्धु में गिरने वाली(सिन्धु राज्ञीः) सिन्धु से निकलने वाली (याः) जो (सर्वाः) सब (नद्यः) नदियां (स्थन) हैं वे (नः) हमको

(तस्य) उसका (भेषजम्) औषध (दत्त) देवें (तेना) इस कारण (वः) तुम्हारा हम (भुनजामहे) उपभोग करते हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार वेद में जल का चिकित्सा सम्बन्धी महत्व बहुत दिखलाया है। यहां दिग्दर्शन मात्र के लिये थोड़ा सा लिख दिया है। जल चिकित्सा अन्य औषध चिकित्सा की अपेक्षा अधिक लाभ देने वाली है यह वेद सम्मत है।

जल चिकित्सा निबन्ध

१. शारीरिक रोगों को दूर करने के लिये और शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के मार्ग विद्वानों ने आविष्कृत किये हैं। संसार में मट्टी, पानी, अग्नि और हवा और खुला

१. चिकित्सितंव्याधि हरं पथ्यं साधन मौषधम् ।
प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥
विद्याद्भेषज नामानि भेषजं द्विविधं च तत् ।
स्वस्थस्यौजस्करं किंचित्किंचिदार्तस्य रोगनुत् ॥ च०
चि. अ० १ श्लो. ३, ४ ॥

स्थान अर्थात् (आकाश) इन को एक २ कर के बुद्धिमानों ने परख २ कर इन का स्वास्थ्य के लिये किस २ प्रकार उपयोग है यह अच्छी प्रकार प्रकट कर दिया है। शुद्ध मिट्टी लेकर, जिस में किसी प्रकार की गन्दगी न हो, उसे शारीरिक शोथों को दूर करने में, स्वेद लाने में, विष उतारने में प्रयोग किया जाता है। शारीरिक मलों को नर्म कर के शरीर से पृथक् करने में जल का बड़ा अच्छा उपयोग है। अग्नि की शरीर में बढ़ी हुई ऊष्मा को जल शान्त करता है। शरीर में जब जल की मात्रा बढ़ जाती है तब अग्नि का ही काम है कि शरीर के मार्गों को खोल कर जल को बाहिर निकाल दे। जब धातुओं का परिपाक मन्द पड़ जाता है तब वायु का ही काम है कि व्यायाम भ्रमण आदि के द्वारा अपना प्रभुत्व जमा कर धात्वन्तर परिणाम को ठीक कर दे। जहां खुला स्थान नहीं होता वहां हवा, आग, पानी और मट्टी कोई भी शुद्ध नहीं रहते सब में मलिनता भर जाती है पृथक्

नहीं हो सकती।

शारीरिक स्वास्थ्य और चिकित्सा के लिये मट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश सभी की एक दम आवश्यकता है किसी को भी छोड़ा नहीं जा सकता। इन पांचों में एक के दोष का प्रती-कार दूसरा करता है, और एक को दूसरे से मदद मिलती है। ये पांचों इतने मिल जुल कर रहते हैं कि किसी कारण एक भी नाराज़ हो जाय तो सब को उसकी फ़िक्र पड़ जाती है। कोई पीछे रह-जाय तो उसको अपने साथ मिलाने के लिये और भी पीछे रह जाते और उसको अपना साथी बनालेते हैं। कभी २ यदि कोई अपनी पञ्चायत से आगे बढ़ जाय तो उसके साथ मिलने के लिये सब में तेज़ी आ जाती है कि न जाने उसका क्या हो जाय, या वे किसी एक या दो को ही, जैसा उचित समझें, अपने में से आगे या पीछे भेज देते हैं, जो आगे या पीछे अपने साथी के साथ मिल कर उस की मुसीबत में उसका साथी बन जाता है। इन पांचों

की इसी प्रकार खेल होती है और मनुष्य समझते हैं कि हम बीमार होते हैं। इन पांचों की इस खेल में जब मुसीबत आकर पड़ती है तब जल किस प्रकार और क्या खेल में हिस्सा लेता है आज यही देखना है।

संसार में जल कैसे २ काम करके दिखाता है ज़रा आपकी दृष्टि उस ओर खींचता हूं फिर आप जल्दी ही समझ जावेंगे कि जल अपने साथियों को किस प्रकार मदद करता है और आप उस परोपकारी से किस प्रकार अपने लिये मदद ले सकते हैं।

परमेश्वर का कार्यालय यह जगती तल जब सूर्य ताप से खूब तप जाता है तब मेघों को हुक्म होता है कि शीतल जल धाराओं से इस के देह का परिषेक कर के इस के ज्वर को दूर करदें। मैं भी जब मुझे तीव्र ज्वर हुआ हो तब वैद्य जी के आदेशानुसार जलावगाहन कर के अपने ज्वर को हलका करलेता हूँ। तपी हुई धरती पर जब पानी

पड़ता है तब पृथ्वी में जज़्ब हुई गर्मी सहसा निकलती है। पृथ्वी पर पड़ा हुआ पानी वाष्प रूप होने लगता है और उस के वाष्प होने के लिये पृथ्वी में से अधिक २ गर्मी निकलती रहती है। इस क्रिया से भू देह के स्रोत खुल जाते हैं और पसीना आकर ज्वर सर्वथा दूर हो जाता है। तापमान (Temparature) साधारण (Normal) हो जाता है। इसी प्रकार शीत जलावगाहन से ज्वर यद्यपि घट जाता है तथापि जब तक पसीना नहीं आता तब तक ज्वर पूरी तरह से न उतर कर साधारण तापमान नहीं होता। ज्वर उतारने के लिये यदि पसीना लाना हो तो एक साधारण सी विधि उपर्युक्त सिद्धान्त से आप के सामने रखता हूँ। जिस रोगी को धीमा २ बुखार रहता हो और पसीना न आता हो उसे गीली चद्दर में लपेट कर कम्बल वा रज़ाई उढ़ा कर लिटा दीजिये। बड़े ज़ोर से पसीना आयेगा और बुख़ार उतर जायगा। मैंने आप को रोगी की चिकित्सा के लिये ज्वर उतारने

में जल का किस प्रकार और क्या उपयोग है बतलाया। यह सब जल के इस गुण पर अवलम्बित है कि जल शीत है अग्नि को शान्त करता है और अग्नि के द्वारा वाष्प बन कर उड़ जाने से अग्नि को कम करता है।

जल का और गुण देखिये। जब वर्षा होती है तब पृथ्वी पर स्थान २ पर इकट्ठा हुआ मल, मूत्र, कूड़ा करकट आदि जल से बह जाता है और स्थान स्वच्छ हो जाता है। अनेक प्रकार के अमोनिया आदि लवण और गैसें जल में घुल कर जल के साथ पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाते हैं, जो पृथ्वी से वनस्पति में प्रविष्ट हो कर उस को पुष्ट करते हैं और जो कूड़ाकरकट आदि ऐन्द्रियक पदार्थ (organic matters) जल से बहा हुआ विच्छिन्न हो कर उस स्थान से दूर हो जाता है वह वनस्पति का खाद्य (खाद) होजाता है। जल का काम हमारे शरीर में इसी प्रकार संशोधन का कार्य है। अनेक सूक्ष्म मल, लवण, और गैसें जल में घुल कर मूत्र

मार्ग से मूत्र द्वारा और त्वक्मार्ग से प्रस्वेद के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। इसी प्रकार प्रश्वास के द्वारा जल में मिले गैस रूप मल शरीर से निकल जाते हैं। घर में जब कूड़ा कचरा नाली में अटक कर सड़ता है तब सारे घर में बदबू फैल जाती है। खिड़कियां बन्द रहें तो सड़ांद से पैदा हुई गैसें जल वाष्प में मिली हुई घर को इतना बदबूदार कर देती हैं कि मकान मालिक को वहां रहना और बैठना भी मुश्किल होता है इसी प्रकार जब मनुष्य के शरीर में से मलों को निकालने वाले स्रोत मल से पूर्ण हो कर रुद्ध हो जाते हैं अर्थात् जब कब्ज़ हो जाती है, मलावरोध हो जाता है तब उचित है कि स्रोतों में जल का प्रवाह चलाकर उन को साफ़ कर दिया जाय। शरीर के मलाशय में मल द्वार से पानी चढ़ा कर अर्थात् बस्तिकर्म (एनीमा) करके मलाशय को तो आसानी से साफ़ किया जा सकता है, परन्तु दूरस्थ अङ्गों से मलों को खैंचने के लिये शरीर की विचित्र यन्त्र योजना के नियमों से काम लिया गया है। जैसे चित्र २

कार्यालयों में लगे हुए आदमियों को उन के अपने२ काम में ठीक २ लगाने के लिये, सब कार्यालयाध्यक्षों के साधारण अध्यक्ष (general manager) उनको, उन के कार्यों में टैलिग्राम दे २ कर, सूचना देते रहते हैं और वे अपना २ कार्य स्वाभाविक तौर पर (Automaticaly) करते रहते हैं, वैसे हमारे शरीर में (Sympathatic nervous systum) अनैच्छिक कार्यसञ्चालक संस्थान है, जिस के द्वारा हमारे शरीर में वे कार्य होते हैं, जिन को हम इच्छा से नहीं करते, जो हमारी इच्छा के बिना स्वयं हो रहे हैं। उस नाड़ी संस्थान का प्रधान केन्द्र मूत्रेन्द्रिय के समीप है। यदि उस प्रधान केन्द्र को संचालित कियाजाय, तो सम्पूर्ण शरीर पर उस का प्रभाव पहुंचने से, सारे शरीर के अवयवों से मल खिंच कर, मूत्रेन्द्रिय की तरफ़ आजाता है, और बाहिर निकल जाता है। यह कार्य करने के लिये मेहनस्नान नाम से एक विशेष प्रकार से स्नान किया जाता

है। इस स्नान का प्रकार आगे दिखाया जायेगा। यहां तो इतना ही कहना पर्याप्त है, कि शरीर के मलों को शरीर से बाहिर निकालने के लिये, जल का महत्व पूर्ण प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोग का आधार जल का यह गुण है कि जल द्रव है, बहता है उस में अनेक प्रकार के द्रव क्षार, लवण, गैस आदि घोलने का सामार्थ्य है।

अब तक जल के द्वारा शरीर के तापमान को कम करने, और शोधन करने के कुछ अंश का वर्णन किया है। जब तक शरीर का शोधन न हो तब तक शरीर में रोग बना रहता है। शोधन ठीक हो चुकने पर, शरीर के अन्दर सब अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा धातु, ठीक कार्य करने लग जाते हैं। *इससे

---

* द्वे अधः सप्त शिरसि खानि स्वेदमुखानिच।
मलायनानि बाध्यन्ते दुष्टैः मात्राधिकै र्मलैः॥
मलवृद्धिं गुरुत्वेन लाघवान्मलसंक्षयम्।
मलायनानां बुध्येत सङ्गोत्सर्गादतीव च॥

यह सिद्धान्त निकलता है, कि शरीर के अन्दर सञ्चित हुआ विकृत या मलभूत पदार्थ ही स्थान २ में अपने विशेष प्रभावों को दिखाता हुआ भिन्न २ नामों के रोगों को उत्पन्न करता है। मलभूत पदार्थ ही वायु, अग्नि, जल पृथ्वी अथवा वात,

---

तान्दोषलिङ्गै रादिश्य व्याधीन् साध्यानुपाचरेत्।
व्याधि हेतु प्रतिद्वन्द्वै मात्रा कालौ विचारयन्॥
च० सू० अ० ७ श्लो. ४२—४४.

मल और प्रसाद का लक्षण—शरीर धातव स्त्वेवं द्विविधाः संग्रहेण मलभूताः प्रसाद भूताश्च। तत्र मलभूतास्ते शरीरस्य, ये बाधकराः स्युः तद्यथा—शरीरछिद्रेपूपदेहाः पृथग् जन्मानो बहिर्मुखाः परिपक्वाश्च धातवः। प्रकुपिताश्च वात पित्त श्लेष्माणो ये चान्येपि च केचित् शरीरे तिष्ठन्ति भावाः शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते सर्वां स्तान् मलान् संप्रचक्ष्महे। इतरांस्तु प्रसादाख्यान् गुर्वादींश्च द्रवान्तरान् गुणभेदेन रसादींश्च शुक्रान्तान् द्रव्य भेदेन॥ च० शा० अ० ६ वाक्य १०॥

पित्त, श्लेष्मा के अपने २ कार्यों को बिगाड़ देता है और लक्षण भेद से वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक रोगों को उत्पन्न करता है। प्रारम्भ में वात, पित्त, श्लेष्मा में से किसी में भी अपने २ विकारक कारणों के द्वारा विकार उत्पन्न हो सकता है, परन्तु विकार का अन्तिम स्वरूप मलभूत पदार्थ का शरीर में सञ्चय हो जाना है। वह मलभूत पदार्थ जिस दोष के दुष्ट होने से उत्पन्न होता है उस दोष के लक्षण वह मलभूत पदार्थ शरीर में उत्पन्न करता है। जल द्वारा मलभूत पदार्थ के शोधन के लिये जल को अपने साथी वायु अग्नि, पृथ्वी में से किसी एक से या अनेक से सहायता लेनी पड़ती है; जिस सहायता से वह शोधन करता हुआ उस दोष के लक्षणों को भी आसानी से दूर कर डालता है। इसी सिद्धान्त के कारण शरीर की त्वचा से मलों को निकालने के लिये जल को गर्म किया जाता है और उसकी भाफ़ शरीर को देकर त्वचा से मलों को बाहिर निकाला जाता है। जल

को गर्म करके त्वचा के रास्ते से मल को बाहिर निकालने के प्रयोग को वाष्प स्नान कहते हैं। वाष्प स्नान की विधि आगे लिखी जायगी। यहाँ इतना ही बतलाना है कि जल को गर्म करने की क्या आवश्यकता है। ताप से शरीर के स्रोत खुल जाते हैं। यदि शरीर को केवल अग्नि से तपा दिया जावे तो शरीर के स्रोत तो खुल जावेंगे और कुछ स्वेद भी बाहिर निकल जावेगा, परन्तु ठण्डा होने पर शरीर में पीछे रूक्षता इतनी बढ़ जावेगी कि अनेक स्थान में मल के पूर्णतया न निकलने से और उस से विष पैदा होकर शरीर में फैलने से तथा वात संस्थान के क्षोभसे शरीरमें स्थानिक वा व्यापी दर्द पैदा हो सकती हैं। इसी लिये चिकित्सा शास्त्रज्ञ स्वेदन करने (तपाने) से पूर्व शरीर को स्निग्धकर लिया करते हैं वा स्नेहन कर्म करलेते हैं। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर स्वेदन दो प्रकार का है रूक्ष स्वेदन और स्निग्ध स्वेदन। जल चिकित्सा का नाम ही जल चिकित्सा है

वस्तुतः चिकित्सा विधि में कोई भी तत्व नहीं छूटता, सब से उपयोग लिया जाता है। जल को गर्म करके बाष्प के द्वारा स्वेदन करने से रूक्ष स्वेदन नहीं रहता स्निग्ध स्वेदन हो जाता है। इस स्निग्ध स्वेदन के कारण वे दर्द नहीं होतीं जो रूक्ष स्वेदन के पश्चात् सम्भवनीय थीं। जल में अग्नि मिलाकर जल का चिकित्सा के लिये उपयोग करने का सिद्धान्त आपने जान लिया।

अब आप जल में विशुद्ध मट्टी को मिलाकर उसका जल चिकित्सा में उपयोग करने का क्या सिद्धान्त है वह देखिये। स्निग्ध स्वेदन विधि में अर्थात् वाष्पस्नान में आपने यह जाना कि शरीर नर्म पड़जाता है, पसीना खूब आता है, शरीर हलका होजाता है और शरीर में रक्त सञ्चार तीव्र होजाता है, कोष्ठादि में वायु का सञ्चार ठीक न हो रहा हो वा वात तन्तु ठीक कार्य न करते हों तो वे उत्तम रीति से काम करने लगजाते हैं। स्निग्ध स्वेद एकाङ्ग सम्बन्धी या सर्वाङ्ग सम्बन्धी जैसी

भी आवश्यकता हो लिया जा सकता है। जब यह स्वेद स्थिरता से देरतक लेना हो तब पानी के साथ मट्टी का प्रयोग किया जाता है।

शरीर में जब एक स्थान पर विकृत पदार्थ इकट्ठा होजाता है तब एकाङ्ग शोथ होजाता है और सारे शरीर में विकृत पदार्थ फैलकर इकट्ठा होजावे तब सर्वाङ्ग शोथ होजाता है। जब विकृत पदार्थ इकट्ठा होजाता है तब यह तो निश्चित ही समझ लेना चाहिये कि मल मार्ग रुद्ध हैं और मल साफ़ करने वालों ने नाराज़ होकर हड़ताल करदी है अपना काम बन्द कर दिया है। वृक्क (गुर्दे) रक्त में से मूत्र को पृथक् करने का काम नहीं करते, आंतें ढीली ढाली पड़ी मल को बाहिर नहीं फेंकतीं, यकृत् आराम से पड़ा सोता रहता है न आंतों की मदद करता है और न रक्त को साफ़ करता है उलटा बिगाड़ता है। शरीर में मल सञ्चय के कारण उत्पन्न हुई विषों को, मार्ग में से साफ़ करने के लिये जगह २ रक्खे हुए गिल्टी रूप चौकीदार खोंच २

कर अपने घर में ढेर लगाते चले जाते हैं। लोग कहते हैं सूजन होगई वरम पड़गया। चिकित्सक कहते हैं शोथ होगई है शोथ का इलाज करो। भङ्गियों को उत्तेजना दी जाती है, प्रोत्साहित हो कर वे अपना कार्य जल्दी २ शुरू करते हैं। एक स्थान में शोथ हो तो एक स्थान में, नहीं तो सब स्थानों में पानी में मिट्टी घोल कर लेप कर दिया जाता है। दोष के लक्षणों के अनुसार गर्म पानी में वा ठण्डे पानी में मट्टी घोल कर लेप किया जाता है। जब ग्रीष्मऋतु के अन्त में शरीर पर घाम निकलता है—छाती, गले और पीठ पर छोटी २ लाल २ फुन्सियां पित्त की निकल आती हैं तब मुलतानी मट्टी को पानी में भिगोकर उससे सारे शरीर को लीप लेते हैं और सूख जाने के भी कई घंटे पश्चात् जहां तक हो सकता है वर्षा के पानी से नहाते हैं। यदि वर्षा का पानी न मिले तो नदी के बहते पानी से नहाते हैं, और नदी भी न मिले तो कूप जल से ही स्नान करलेते हैं। इसी प्रकार जब स्थानिक दर्द

हो, शोथ हो, दाह विशेष न हो तो गर्म पानी में मट्टी घोल कर गर्म लेपकिया जाता है। दोष विशेष के अनुसार भिन्न २ प्रकार की मट्टी ली जाती है। कोई मट्टी स्निग्ध और कठोर गाचनी जैसी लीजाती है, कोई भुर भुरी क्षार युक्त मट्टी लीजाती है जिस में शोरा आदी हो, कहीं खड़िया, कहीं चूना, कहीं पिण्डोल, जैसी आवश्यकता हो वैसी मट्टी लीजाती है। घाम निकलने पर गाचनी मट्टी, जलोदर में शोरे वाली मट्टी का गाढ़ा लेप पेट और कमर पर करना चाहिये। जहां फोड़ा पकने की वा बिठाने की आवश्यकता हो वहां चूने का लेप, हाथ, पांव सूज जावें तो खड़िया वा पिण्डोल का लेप कर सकते हैं। इस प्रकार द्रव्य गुण शास्त्र से मट्टियों के गुण दोषों का यथार्थ विवेचन करके यथा स्थान जल के साथ उनका प्रयोग कर सकते हैं। मट्टी लेखन, भेदन, चूषण, रोपण इत्यादि गुण वाली होने से जल के साथ यथेष्ट कार्य को देर तक कर सकती है जब कि अग्नि संयुक्त जल वा केवल जल

देर तक कार्य नहीं कर सकता है। मट्टी सूख कर शरीर के अन्दर से जल में घुले हुए मलों को चूसती रहती है और शरीर को साफ़ कर डालती है। यहां तक जल के साथ मट्टी मिलाकर चिकित्सा के लिये उद्योग करने का क्या सिद्धान्त है यह बतला दिया।

अब जल के साथ भिन्न २ गैसों को मिला कर अर्थात् जल वायु की सहायता लेकर कैसे चिकित्सा कार्य करता है, उसका क्या सिद्धान्त है यह दिखलाया जाता है। जल में कर्बनिकाम्ल गैस घोल कर यदि अजीर्ण रोग में जल पिलाया जाय तो पाचन शक्ति को तीव्र करता है। जल में थोड़ी क्लोरीन गैस घोल कर अजीर्ण में जल पिलाया जाता है। ऐसा ही जल बनाकर यदि बस्ति कर्म किया जाय तो आंतों को साफ़ करता है, आन्त्र क्रिमियों का संहार करता है, आंतों में सड़ांद पैदा करने वाले (Ferments) फर्मेन्ट्स को नाश करता है। इसी क्लोरीन जल से स्नान किया जाय

तो वह रोगी जो पिडिकाऽऽक्रान्त त्वक् रोगों (Eruptive diseases) से रुग्ण है रोग मुक्त होता है। यह आप जानते हैं कि नदी वा सरोवर के किनारे, पहाड़ों के ऊपर, समुद्र के किनारे और जिस ऊंचाई पर बादल होते हैं उस ऊंचाई पर वायु में मिश्रित ओषजन ओज़ोन के रूप में बदलती रहती है। यह ओज़ोन जल के कणों में मिली हुई और वर्षा के जल में मिली हुई अपने स्पर्श से प्राणियों को तृप्त करती रहती है। इस ओज़ोन मिश्रित जल को त्वचा पर स्पर्श करने से त्वचा में कान्ति आति है, रक्त शुद्ध होता है, त्वचा और रक्त के रोग दूर होते हैं, मनुष्य के शरीर में जितने भी कार्य हो रहे हैं उनको उत्तजना मिलती है। इस प्रकार आप समझगये कि जल अग्नि, वायु और पृथ्वी को अपने साथ लेकर किस प्रकार रोगों को दूर करता है और स्वास्थ्य प्रदान करता है। जलचिकित्सा में केवल जल के प्रयागों का विचार नहीं होता किन्तु जल के साथ अन्य तत्वों

के मिलने से जो समास वा मिश्रण बनते हैं उनके प्रयोगों का भी विचार होता है।

जल के साथ अन्य तत्वों के मिलने से जो प्रभाव होता है वह एक प्रकार से वर्णन किया। जल में अन्य तत्वों के मिलाने का अन्य भी एक प्रकार है। पृथ्वी पर जो भी कुछ तत्वों की सामर्थ्य पदार्थों में प्रकट है वह सब सूर्य से आरही है। यदि सूर्य के भिन्न २ रङ्गों की किरणों को, निरन्तर कई घंटों तक धूप में रखकर, जल में से गुज़ारा जाय तो जल में उसी तत्व की सामर्थ्य पैदा हो जाती है जिस २ तत्व की सामर्थ्य सूर्य से पदार्थों में पैदा होती रहती है। यदि एक शुद्ध पीले रङ्ग की बोतल में परिस्रुत जल (Distilled water) अथवा साधारण जल ही ५, ६ घन्टे धूप में रक्खा जावे तो वह जल पीने से उन लक्षणों को पैदा करेगा जो पृथ्वीतत्व के हैं। शरीर में श्लैष्मिक लक्षण स्निग्धता, गुरुता, दृढ़ता, गम्भीरता, स्थिरता, आदि उत्पन्न होंगे। जो

मनुष्य कोष्ठ बद्धता के कारण बेचैन हो उसे यह जल पिलाने से कोष्ठ बद्धता दूर होगी और व्याकुलता शान्त होगी। यह जल कोष्ठ की वायु का अनुलोमक होगा। यदि जल को लाल रङ्ग की बोतल में डाल कर उसी प्रकार धूप में रक्खा जावे तो तय्यार हुआ जल अजीर्ण रोग को दूर करेगा। यह जल दीपन पाचन होगा। वायु और श्लेष्मा के विकारों को दूर करने की सामर्थ्य इसमें होगी। आमवात और गठिये में इस जल को पिलाने से लाभ होगा। जो रोग त्वचा से फूट कर निकलते हैं उन्हें पसीना लाकर निकाल देगा। यदि हरे रङ्ग की बोतल में पानी भर कर धूप में रक्खें तो उस पानी में पित्त और श्लेष्मा के विकारों को दूर करने की सामर्थ्य होगी। शीत पित्त में विदग्धाजीर्ण में इस जल को मिला कर लाभ उठाया जा सकता है। यदि नीले रङ्ग की बोतल में जल भर कर धूप में तपावें तो उसमें ज्वर उतारने की अच्छी सामर्थ्य आ जाती है। शरीर में या कोष्ठ में

दाह को दूर करता है। रक्त पित्त में उपकारी है। पित्तज विकारों को दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। यदि आस्मानी (violet) रङ्ग की बोतल में जल भर कर धूप में तपावें तो उस जल में शरीर में से सब मलों को निकाल कर शरीर को साफ़ करने की अच्छी सामर्थ्य होती है। यह जल अच्छा रक्त शोधक होता है। बीमारियों के मिश्रित लक्षणों में कई जलों को आपस में मिला कर भी दिया जा सकता है। चिकित्सा शास्त्र में रोगों की चिकित्सा के लिये जिन औषधियों का प्रयोग किया जाता है वे भी भिन्न २ तत्वों का समास वा मिश्रण ही होती हैं। शास्त्रीय विधि से उनको ऐसे रूप में मिलाया जाता है कि उस मिश्रण में मिले हुए तत्व रोगों के लक्षणों को दूर करने के लिये अभीष्ट फल प्रकट करते हैं। द्रव्य वा द्रव्यों को मिला कर चिकित्सा के लिये प्रयोग करने पर रोगी को एक कठिनाई उपस्थित होती है कि

शरीर पर प्रभाव दिखलाने वाले द्रव्यों के कोष्ठों (cells) में स्थित पदार्थों को उन पर अपने पाचक रसों को क्रिया करके पृथक् करना पड़ता है। यह कार्य किसी रोगी के लिए सुगम और किसी रोगी के लिए कठिन होता है। इस दृष्टि को लक्ष्य में रख कर और रोग के बलाबल पर एक ही औषध की मात्रा भिन्न २ रोगियों के लिये भिन्न २ करनी पड़ती है। द्रव्यों की रचना पेचीदा होने से भी उतना शीघ्र प्रभाव देखने में नहीं आता जितना हमारी कल्पना में होता है वा हम चाहते हैं। प्रभावोत्पादक द्रव्यस्थ पदार्थों का शरीर में आत्मीकरण (assimilation) करने में पर्याप्त समय लग जाता है। इन उलझनों को सुलझाने के लिये विज्ञ चिकित्सकों ने जल चिकित्सा विधि का अविष्कार किया है। उपर्युक्त कठिनाईयों को दृष्टि में रख कर जल चिकित्सा के प्रयोक्ता चिकित्सकों ने यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि रोगी को औषधि ऐसे रूप में देनी चाहिये

जैसे रूप में वह शरीर में अति शीघ्र जज़्ब हो सके। औषधि साधारण से साधारण रूप (Simplest Form) में होनी चाहिये। इन सिद्धान्त को लेकर जल चिकित्सक शुद्ध जल को इस प्रकार अन्य तत्वों से संस्कृत करते हैं कि वह जल शरीर में जज़्ब हो कर रोग पर अति शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करता है।

यहां तक आप को बतलाया जा चुका कि शरीर में दोषों की विषमता से उत्पन्न मलसञ्चय का नाम रोग है।† रोगकी चिकित्सा के लिये शोधन और शमन उपायों में से शोधन उपाय, श्रेष्ठ है। लक्षणों कीतीव्रता में और व्याकुलता में शोधन उपाय के साथ जल के द्वारा ही शमन उपायभी प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त विचार के आधार पर कोई भी रोग ऐसा नहीं है जो जल चिकित्सा के द्वारा शोधन और शमन उपायों से दूर न होसके। जीवाणु जन्य

† शोधनं शमनं चेति चिकित्सा द्विविधा मता। अष्टाङ्ग हृदय।

रोगों में जीवाणुओं का नाश भी, जीवाणुओं की वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक प्रकृति जान कर, जल चिकित्सा द्वारा हो सकता है। उन २ जीवाणुओं की प्रकृति उस २ रोग के लक्षणों से स्पष्ट हो जाती है जिस २ रोग को वे जीवाणु प्रकट करते हैं। जीवाणुओं की प्रकृति के विरुद्ध भिन्न २ तत्वों से भावित जल को पिलाने या त्वचा, मांस अथवा रक्त स्रोतों में प्रवेश कराने से उन जीवाणुओं के विरुद्ध ऐसी परिस्थिति पैदा करदी जा सकती है जिसमें वे जीवाणु न जीसकें सर्वथा मर जावें। जल चिकित्सा में शोधन क्रिया द्वारा विकृत पदार्थ के दूर हो जाने से, और उचित भोजन लेने से शरीर में प्रबल रोगप्रतिरोधकशक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है जिस के कारण रोग से मुक्त हुआ रोगी आगे रोग को रोक देने के लिये प्रबल योद्धा बन जाता है।

जल चिकित्सा के द्वारा रोगी को रोग मुक्त करने का क्या सिद्धान्त है इस का निरूपण अच्छी प्रकार हो चुका। अब यह दिखलाना है कि रोगी का भोजन

जैसा होना चाहिये उस का क्या सिद्धन्त है ? रोगी को औषध देने के सिद्धान्त में यह बतलाया गया था कि औषध साधारणतम रूप (Simplest-form) में होनी चाहिये । उसी विचार को लक्ष्य में रख कर भोजन के विषय में भी स्पष्ट कहा जा सकता है कि भोजन भी साधारणतम अवस्था में होना चाहिये । जो भोजन अधिक प्रक्रियाओं (processes) में गुज़र कर न बना हो वह भोजन रोगी के लिये उत्तम है। भोजन के अन्दर से सार पदार्थ को खैंच लेने के लिये पाकशास्त्र में पकाने की उत्तम विधि का निरूपण कर दिया है। जो भोजन अधिक प्रक्रियाओं में नहीं गुज़रा वह इसी इस लिये ग्रहण करने योग्य है क्योंकि उस में से सार पदार्थ को ग्रहण करने के लिये पाचक अङ्गों को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती है और वह शीघ्र हमारे शरीर का अङ्ग बन जाता है। इसलिये सरलतम भोजन करना चाहिये । मान्स और वनस्पति में इस दृष्टि से मान्स का परित्याग और

वनस्पति का ग्रहण उत्तम है। वनस्पति में भी वह भाग जिस के कोष्ठ (cells) अधिक कठोर नहीं हैं। जिन में से शरीरस्थ पाचक अङ्गों के पाचक रसों के प्रभाव से शीघ्र ही सार भाग प्राप्त हो जाता है। वनस्पति का वह भाग फल और फूल है। वह रोगी जो जलचिकित्सा करता है उसको फलों के स्थान में फलों का रस बार २ पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिये। जब रोगी की अवस्था अच्छी होजावे तब उसको फलदिये जावें। अवस्था अधिक उन्नत होने पर व्रीहि, यव, गोधूम आदि दिये जावें। अन्न को तथा अनेक कठोर फलों को आग में भून कर वा पानी में गला कर अथवा आग और पानी दोनों से पका कर देना चाहिये। भूनने गलाने वा पकाने से खाद्य पदार्थ के कोष्ठ फूल जाते हैं। उन की दीवार जो काष्ठोज (cellulose) से बनी होती है वह नरम और पतली पड़ जाती है उस पर भी पाचक रसों का कुछ प्रभाव हो सकता है, पाचक रसों के प्रभाव से कोष्ठस्थ ग्राह्य पदार्थ

सुगमता से गृहीत हो जाता है। द्रव्यों को पकाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उनका पाक उस मात्रा से बढ़ने न पावे जितने से उन द्रव्यों के छिलकों में वर्तमान वह पदार्थ नष्ट न हो जावे जो उस द्रव्य को पचाने में सहायक होता है। प्रायः प्रत्येक अन्न और फलों के छिलके में एक प्रकार का पदार्थ रहता है जिसे Vitamine कहते हैं और जो उस अन्न वा फल को पचाने में सहायक हुआ करता है। परीक्षणों के द्वारा यह खोज करना चाहिये कि किस द्रव्य का Vitamine कितने तापांश पर मर जाता है और उस तपांश से ऊपर किसी प्रकार उसकी रक्षा हो सकती है वा नहीं। पाक शास्त्र में जो द्रव्यों को पकाने की विधि लिखी है वह इस लक्ष्य को सन्मुख रख कर लिखी है कि कोष्ठों की दीवारों (cellulose) के ढीला पड़जाने से पाचक रसों का कार्य कोष्ठगत ग्राह्य पदार्थ पर अच्छी प्रकार होसके और वह शरीर का अङ्ग बनसके। इस दृष्टि

से पाक शास्त्र की विधि रोगी वा नीरोग दोनों के लिये उत्तम है। जिन फलादि द्रव्यों के गूदों पर पाचक रसों का प्रभाव बिना पकाये ही सुगमता से हो सकता है उनको पकाकर न खाना चाहिये कच्चा ही खाना चाहिये। केला, नारङ्गी, सन्तरा, तरबूज़, खरबूज़ा, कच्चीककड़ी, खीरा, अनार, सेव शरीफ़ा, पका पपीता आदि फल कच्चे ही खाये जासकते हैं। इसप्रकार आपको पता लगगया कि भोजन को कच्चा खाने का क्या सिद्धान्त है। Vitamines की दृष्टि से और रोग के लक्षणों के अनुसार चुनकर कच्चे अर्थात् बिना भूने, उबाले, और गलाये तथा सुपच खाद्य पदार्थों का सेवन रोगी वा नीरोग दोनों के लिये हितकर है।

जलचिकित्सा के विशेष उपाय

भोजन के विषय में सिद्धान्त कथन कर चुकने के बाद अब आपके सामने जलचिकित्सा के विशेष उपायों का कथन करता हूं। यह तो आप समझ चुके कि जल चिकित्सा शोधन प्रधान

चिकित्सा है। शरीर शोधन के लिये तीन स्नानों का निर्देश किया जाता है। इन स्नानों से शरीर के अङ्गों में स्फूर्ति (tone) उत्पन्न होती है । अङ्गों में स्फूर्ति उत्पन्न होने से शरीर का काम ठीक चलने लगता है । वाष्प स्नान (steam bath) कटि-स्नान (Hipbath) और सीवन स्नान (Pari-neal bath) इन तीन स्नानों का निर्देश प्रधान-तया जल चिकित्सा में किया जाता है । जो चिकित्सा की दृष्टि से और स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

वाष्प स्नान

वाष्प स्नान दो प्रकार से दिया जाता है—एक बिठा कर और दूसरा लिटा कर। जब स्नान बिठाकर कराया जाता है तो रोगी को एक कुर्सी पर बिठाया जाता है। रोगी ज़मीन से दो फ़ीट के लगभग ऊँचा होता है। रोगी के सब वस्त्र उतर-वा दिये जाते हैं। रोगी और कुर्सी को चारों ओर से कम्बल से ढक देते हैं । कम्बल इस प्रकार

लिपटा हुआ होता है कि बाहिर से हवा अन्दर नहीं जा सकती। सिर कम्बल से नहीं ढका जाता कई चिकित्सक सिरको भी ढक देते हैं। इससे रोगी के सिर में अधिक ख़ून भर जाने से कभी २ पागलपन भ्रम या बेचैनी होजाती है। सिर में ख़ून अधिक न भरे और किसी प्रकार का उपद्रव न हो अतः सिर को ढांकना तो चाहिये ही नहीं प्रत्युत सिर पर ठण्डे पानी का गीला कपड़ा रखना चाहिये। रोगी को बिठाने की एक तरफ़ तय्यारी के साथ साथ दूसरी तरफ़ एक बर्तन में जल खौलाने के लिये रखदिया जाता है। जब जल पर्याप्त गर्म हो चुके और अभी खौला न हो तभी उसे कम्बल के अन्दर कुर्सी के नीचे रखदेना चाहिये, और दूसरे पतीले में जल भर कर उसे भी कहीं पहिले से ही खौलाना चाहिये। जल खौल चुकने पर उसे कुर्सी के नीचे रख देना चाहिये और पहिला पतीला निकाल कर उसके पानी को खौलाना चाहिये इस प्रकार गर्मी में १०

मिनिट तक और सर्दी में २० मिनिट तक तथा शारीरिक दोषों के बलाबल के अनुसार और रोगी के बलाबल के अनुसार वाष्प स्नान कराया जाता है। वाष्प स्नान कराते समय रोग के लक्षणा-नुसार जल में ऐसे पदार्थों का प्रक्षेप भी कर दिया जाता है जो उस रोग के लिये चिकित्सा और द्रव्यगुण शास्त्रों की दृष्टि से उत्तम हों।

जब वाष्प स्नान रोगी को लिटा कर देना हो तब एक छिदी २ बुनी हुई चारपाई पर रोगी को लिटा दो। रोगी के कपड़े उतरवा दो। रोगी और चारपाई को चारों ओर से कम्बल से इस प्रकार ढक दो कि बाहिर से हवा न लग सके। यदि रोगी कम्बल और चारपाई के खुरदरेपन को न सहन कर सके तो उसे हलके और खुली बुनावट के कपड़े से ढक कर फिर कम्बल उढ़ाना चाहिये। सिर को यहां भी खुला रखना चाहिये और उस पर ठण्डे पानी का कपड़ा रखना चाहिये। लिटा कर जब वाष्प स्नान कराया जाता है तब चार-

पाई के नीचे तीन बर्तन खौलते हुए जल से पूर्ण रक्खे जाते हैं। एक बर्तन कन्धों के नीचे, दूसरा कटि के नीचे और तीसरा पांव के नीचे रखना चाहिये। एक दम खौलते जल को रखने से पहिले हल्के गर्म जल के पतीले रखने चाहियें जिससे वाष्प सह्य हो जावे। यहां भी खौलते जल में रोग के लक्षणों के अनुसार औषध प्रक्षेप किया जा सकता है। ठण्डे पानी का कपड़ा सिर पर बार २ बदलते रहना चाहिये। रोगी को चाहिये कि सारे शरीर पर वाष्प लेने के लिये करवट लेता रहे, कभी २ उल्टा लेट जावे। चारपाई से आधफुट नीचे रक्खे पतीलों की वाष्प आने से स्वेद अच्छा होता है।

जब कोष्ठ गत दोष अधिक हों तो वाष्प कुर्सी पर बिठा कर देना अच्छा होता है। जब दोषों का विकार शरीर व्यापी हो तो लिटा कर स्नान कराना चाहिये। त्वचा से फूट कर निकलने वाले रोगों में लिटा कर स्नान कराया जाता है।

शोधन क्रिया से जिन मलों का अपहरण शरीर में से किया जाता है वे दो प्रकार के होते हैं— एक वात, पित्त, श्लेष्मा सम्बन्धी मल दूसरे सप्त धातु सम्बन्धी मल। वात, पित्त श्लेष्मा जब सप्त धातु (Tissue) रूप में नहीं आते, वृद्धि कोप के कारण सीधे ही मलभूत हो जाते हैं, तब प्रथम प्रकार के मल होते हैं और जब सप्त धातुओं में स्थानिक वा व्यापी धात्वन्तर परिणाम (Tissue Formation) बन्द हो जाता है तब धातवीय मल प्रकट होता है। जिस समय दोष धातुओं में परिणत होते हुए कुछ मात्रा में मल भूत हो जावें और कुछ मात्रा में धात्वन्तर परिणाम उत्पन्न कर रहे हों तब मल अपक्वावस्था में कहलाते हैं; जैसे प्रवाहिका (पेचिश—Dysentry) में पक्व मल के साथ अपक्व मल का भी अंश निकला करता है। यही अपक्वावस्था दोष की साम अवस्था कहलाती है, और पक्वावस्था निराम अवस्था कहलाती है। दोष निराम अवस्था में

अपने २ मार्गों से सब बाहिर निकल जाते हैं। साम अवस्था में वे अपने मार्गों से नहीं निकल सकते, नाना प्रकार के रोगों का स्वरूप धारण करके शरीर को क्लिष्ट करते हैं और जैसे २ परिपक्व होते जाते हैं वैसे २ आसानी से बाहिर निकलते जाते हैं। दोषों को अपक्वावस्था में निकालने से रोगी को बहुत कष्ट होता है इस लिये चिकित्सक लोग साम दोष को निराम कर के अर्थात् उसे पक्वमल बना कर फिर यथोचित मार्ग से औषध प्रयोग द्वारा निकाल दिया करते हैं। जल चिकित्सक भी इस सिद्धान्त को खूब समझते हैं कि सामदोष को निराम कर के चिकित्सा करनी चाहिये। जल चिकित्सकों की युक्ति बड़ी अच्छी है। वे ऐसे ही स्थानों में वाष्प स्नान का प्रयोग करते हैं। ऊष्मा के कारण सामता दूर होती है। साथ ही ऊष्मा के कारण स्रोत खुल जाते हैं और निराम हुआ मल बाहिर निकल जाता है। ऊष्मा के कारण जो रुक्षता उत्पन्न होती है वह जल से

शान्त होती रहती है। इस प्रकार यह वाष्प स्नान शोधन प्रकरों में अत्युत्तम है।

वाष्प स्नान सर्वाङ्ग और एकाङ्ग दोनों प्रकार का किया जाता है। जिस मनुष्य के गले में अन्तः शोथ हो, स्वरभङ्ग हो उसे पानी में अजवायन और कपूर डाल कर गले में भफारा दिया जाता है। इस से गले की श्लेष्मा पक कर निकल जाती है, शोथ बैठ जाती और स्वर खड़ा हो जाता है। निमोनिया में छाती में से और गले में से 'कफ़ निकालने के लिये छाती को तो आर्द्रस्वेद दिया ही जाता है, परन्तु १ सेर पानी में १,२ बूंद क्रियोज़ोट वा कपूर को डाल कर उस की वाष्प को मुख से लेकर गले में अन्तः स्वेद भी दिया जाता है। इस प्रकार वाष्प स्नान के अन्तः तथा बाह्य प्रयोग से अद्भुत लाभ देखा गया है। एक गठिये के रोगी को लिटा कर वाष्प स्नान विधि पूर्वक दिया गया। उस पानी में निर्गुण्डी के पत्ते और लहसन की फांक काट २ कर डाल दी गईं थीं। रोगी के गोड़े

और गिट्टे अधिक सूजे हुए थे, कोहनी और कलाई में भी पर्याप्त शोथ थी। रोगी चल फिर नहीं सकता था, पड़ा रहता था। वाष्प स्नान लेने के पश्चात् उस के जोड़ ढीले पड़गये वह अगले ही दिन अच्छी प्रकार चलने फिरने लगगया।

एक रोगी को चिरकाल से अजीर्ण रहता था। इसी कारण मल बन्ध की शिकायत प्रायः सुनी जाती थी, पसीना नहीं आता था, बेचैनी रहती थी। वाष्प स्नान के पश्चात् पेट ढीला पड़ गया, मल बन्ध की शिकायत कम हो गई। पसीना नियम पूर्वक अच्छी प्रकार आने लगा। शरीर हलका हो गया। भूख बढ़ गई। एक रोगी शीत पित्त (Eczema) से व्याकुल था। खुजाते २ चैन नहीं पड़ती थी। वाष्प स्नान कराया गया। उस की खाज बिलकुल बन्द हो गई। शरीर हलका पड़ गया। वह स्वस्थ हो गया।

एक रोगी को खसरा (measles) था। दाह और खाज के मारे मरा जाता था। वाष्प स्नान

कराया गया । दो घण्टे के अन्दर २ रोगी बिलकुल स्वस्थ हो गया । केवल निर्बलता रह गई जो कुछ ही दिनों में दूर हो गई ।

जब रोगी को ठंडी हवा लगने का भय होता है, तब वाष्प स्नान बन्द कमरे में कराया जाता है, यदि लू चलती हो तो भी कमरे में ही वाष्प स्नान कराना चाहिये । वाष्प स्नान करा चुकने के पश्चात् गर्म पानी को नीचे से हटालो । लगभग ५ मिनिट तक रोगी को लेटे रहने दो । फिर उसे कटि स्नान के लिये कहो । कटि स्नान करने के पश्चात् कार्बोलिक सोप मलकर नहाकर तेल की मालिश करके नहाने के पश्चात् सर्दी गर्मी के अनुसार शुद्ध कपड़े पहिन कर स्नान शाला से रोगी को बाहिर आजाना चाहिये । रोगी के शरीर से बहुत सा जल और मल निकल जाने से उसके रक्त का दबाव (Blood Pressure) बहुत कम होजाता है । इसी कारण उसका ताप मान कम हो जाता है । शरीर के अधिक ठण्डा पड़जाने से मृत्यु

तक हो सकती है। रोगी का तापमान बढ़ाने के लिये मकरध्वज, गर्म दूध या ब्रान्डी का प्रयोग करना चाहिये। जिस समय वाष्प स्नान कराया जाता है, उस समय शरीर का तापमान बढ़ना आरम्भ होता है २, ३ डिग्रीतक बढ़जाता है। नाडी स्पन्द बढ़जाता है। हृत्स्पन्द भी तीव्र हो जाता है। श्वास शीघ्र २ चलने लगता है। प्रस्वेद निकल चुकने के पश्चात् ये सब घटने लगते हैं। श्वास साधारण होजाता है। हृदय की और नाडी की गति भी साधारण होजाती है। तापमान पहिले से भी कम होजाता है। रक्त गाढ़ा पड़जाता है। रक्त का दबाव कम होजाता है। शरीर का वर्ण स्वच्छ होजाता है। इस प्रकार वाष्प स्नान का विचार कर चुकने पर अब कटिस्नान पर विचार किया जाता है।

कटिस्नान

गुदा से नाभि तक के स्थान को पानी में रख कर आगे पीछे चारों ओर कटिप्रदेश को रगड़ना

कटिस्नान कहलाता है। कटिस्नान को पेड़ू स्नान भी कहते हैं। वाष्पस्नान के पश्चात् तो अवश्य कटि स्नान करना होता है। जिसे वाष्प स्नान की अपेक्षा न हो वह भी कटिस्नान करता है। कटि स्नान खुले पानी में और घिरे पानी में दोनों प्रकार से हो सकता है। नदी आदि का खुला स्थान सुभीते के अनुसार कटिस्नान के लिये न मिले तो घर में एक टब में इतना पानी भरो जिसमें बैठने से कटितक प्रदेश डूब जाय। टांगे टब से बाहिर रखो। टांगों पर और धड़ पर गर्म कम्बल लपेट लो। खद्दर के खुरदरे कपड़े को जल में भिगो कर कटि प्रदेश को खूब मलो। १५, २० मिनिट तक इस प्रकार कटिस्नान कर चुकने के बाद सूखे कपड़े से अङ्गों को पूंछ कर अपने कपड़े पहिन लो। इस प्रकार कटि स्नान पूरा होता है। कटि स्नान से उदर प्रदेश के सब अंगों को जैसे आन्त्र, वृक्क, वस्ति, प्लीहा, आमाशय, यकृत्, पैन्क्रियास आदि को स्फूर्ति

(tone) मिलती है। पित्त के ठीक कार्य करने से पाचन क्रिया भी दीप्त होती है, मलबन्ध भी नहीं होता और वृक्कों के ठीक कार्य करने से रक्त में से मल दूर होकर रक्त शुद्ध होता है। इस प्रकार वाष्प स्नान जहां श्लेष्मा के रोगों के लिये विशेष उत्तम है वहां कटिस्नान पित्त के रोगों के लिये विशेष उपकारी है। शरीर में से सञ्चित ऊष्मा को दूर करने के लिये, पाण्डु रोग, रक्तपित्त, ज्वर आदि रोगों की पैत्तिक अवस्थाओं में विशेष उपकार कटिस्नान से होता है। यहां तक कटिस्नान के विषय में निरूपण किया।

अब तीसरे स्नान का वर्णन किया जाता है। इस स्नान का नाम सीवन स्नान है।

सीवन स्नान

सीवन स्नान को Parineal bath भी कहते हैं। गुदा और अण्ड कोष के बीच के अन्तर में रहने वाली शरीर की मध्य रेखा के भाग का नाम सीवन है। इस रेखा पर वर्तमान प्रदेश को

सीवन प्रदेश या Parinium कहते हैं। एक टब में या नदी के किनारे केवल चार इञ्च गहरे पानी में मनुष्य सीवन प्रदेश को रख कर बैठ जाता है। पानी ठण्डा होता है। इस में बैठने के सिवाय कुछ और नहीं करना पड़ता केवल बैठना होता है। इस प्रदेश में विद्यमान नाडिजाल पर ठण्डे जल के असर से शरीर का सब मल मूत्रेन्द्रिय की ओर खिचता है। वहां से शनैः शनैः बाहिर हो जाने से शरीर शुद्ध हो जाता है। वात संस्थान बलवान हो जाता है। रक्त सञ्चार ठीक होने लगता है। सिर का भारी पन, सिर का बहुत गर्म रहना हट जाता है, शौच साफ़ होता है। मूत्र की कोई शिकायत हो दूर हो जाती है। यकृत काम न करता हो तो करने लग जाता है। हृदय की धड़कन अनियमित हो वा किसी प्रकार से दुष्ट हो वह ठीक हो जाती है। इस प्रकार यह स्नान सब स्नानों में उत्तम स्नान है। इसको करते हुए टांगों पर और धड़ पर सर्दियों में गर्म कपड़ा और

गर्मियों में ठण्डा कपड़ा लपेट लेना चाहिये। इस स्नान से मलों का स्राव बढ़ कर शरीर शुद्ध हो जाता है। यदि रोगी वा नीरोगी मनुष्य धैर्य से अपने को इस स्नान से शुद्ध करले तो कालान्तर में मनुष्य सम्पूर्ण रोगों से मुक्त होकर स्वतन्त्र तथा सुखी ओजस्वी, तेजस्वी बनता है। इस प्रकार यह स्नानों का वर्णन समाप्त हुआ। इन तीन स्नानों से अतिरिक्त अन्य कई विधियां जल चिकित्सा में चल रही हैं। गुदा से पानी वा तैल आदि द्रव चढ़ा कर गुदा वा मलाशय को साफ़ किया जाता है। मूत्रेन्द्रिय से भी जल वा तैल को यन्त्र से वा प्राण क्रिया से अन्दर प्रविष्ट करा कर ऊर्ध्व वस्ति की जाती है और वस्तिशोधन के अतिरिक्त वात संस्थान को बलवान किया जाता है। नासा छिद्रों से पानी वा तैल ऊपर चढ़ा कर द्रव बाहिर फेंक देते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वजत्रु विकारों को दूर कर के शिर का आप्यायन करते हैं। इस के अतिरिक्त प्रकरण बाह्य होते हुए भी यह

कहना अनुचित न होगा कि शिरो रोगों को विशेष प्रकार से दूर करने के लिये शिरो वस्ति का प्रयोग किया जाता है। शिर पर एक चर्म की पट्टी बांधी जाती है जो शिर से ३,४ अङ्गुल ऊपर उठी रहती है। उस में तेल भरा जाता है। प्राय: गुनगुना तेल डालते हैं जिस से शोधन और प्रीणन हो। इस चमड़े की टोपी के नीचे के किनारों पर आटा लगा कर छिद्र बन्द कर देते हैं कि जिस से तेल नीचे नहीं गिरता। २० मिनिट तक इस प्रकार शिर पर तैल धारण करने से नासिका से अनेक प्रकार के बदबू-दार मलों का स्राव होकर शिर हलका हो जाता है। वातनाड़ियों को बल मिलता है स्मरण शक्ति बढ़ती है। शिर के सब रोग दूर हो कर नाडिसंस्थान बलवान होकर शरीर के अन्य रोगों के दूर होने में बड़ी भारी सहायता मिलती है।

अन्तिम निवेदन

इस प्रकार यह जल चिकित्सा चिकित्सा शास्त्र का ही एक अंश है। इस के सिद्धान्त चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तों से भिन्न नहीं हैं। उसी की यह अत्युन्नत शाखा है। विज्ञ लोगों का कर्तव्य है कि चिकित्सा शास्त्र के आधार पर जल चिकित्सा को उन्नत करके उस को प्रयोग में लावें और लाभ उठावें॥

देवराज विद्यावाचस्पति
११—५—२६ ई०

परिशिष्ट

(१)

रश्मि जल चिकित्सा के सिद्धान्त

सूर्य की रश्मियों में मुख्य रङ्ग तीन होते हैं—

१ लाल (Red), २ पीला (yellow), ३ नीला (Blue) अन्य सब रङ्ग इन्हीं तीनों रङ्गों की कमी बढ़ती और मेल से बने हैं। लाल रङ्ग का स्वभाव शरीर में गर्मी पैदा करना है। पीला रङ्ग अनुलोमक है और नीला रंग शरीर की गर्मी को शान्त करके शरीर में ठण्डक पैदा करता है। मैं यदि इन रङ्गों को पाञ्च भौतिक परिभाषा में कहूँ तो लाल रङ्ग को तैजस, पीले रङ्ग को पार्थिव और नीले रङ्ग को वायवीय कह सकता हूँ। यदि लाल और पीले रङ्ग को इस प्रकार मिलाया जाय कि लाल की अधिकता रहे तो रङ्ग का नाम नारञ्जी होता है। नारञ्जी रङ्ग में अग्नि प्रधान होने से यह पीले रङ्ग की क्रिया को ऊपर के अवयवों में विशेष प्रकट करता है क्योंकि अग्नि की ऊर्ध्व गति है, अर्थात् नारञ्जी रङ्ग

श्वास संस्थान पर विशेष क्रिया करके निर्बल श्वास को तीव्र करता है और सञ्चित श्लेष्मा को शरीर से बाहिर फेंक कर शरीर को शुद्ध करता है। जब मिश्रित पीले रङ्ग की अधिकता होती है तब वह आँतों की क्रिया को उत्तेजित तो करता ही है परन्तु साथ ही वायु को अनुलोमन कर के मल बन्ध को भी दूर करता है। नीले और पीले रङ्ग को मिला कर हरा रंग बनता है। नीला रंग अधिक रहे तो गहरा हरा और पीला अधिक रहे तो हलका हरा रङ्ग होता है। गहरा हरा रङ्ग दाह को शान्त करता है और कुछ अनुलोमक भी है। रोगों में प्रायः शोथ, दाह वा ताप की वृद्धि होती है। जिस रोग की चिकित्सा करनी हो उस में पहिले शोथ दूर की जाती है। शोथ दूर करने में दाह के लिये नीला रङ्ग शीत होने से उत्तम है। यदि शोथ स्थान में सञ्चित द्रव्य को वहां से हटाना हो तो उस स्थान को लाल रङ्ग से उत्तेजित करना चाहिये। इन दोनों कार्यों के लिये गहरा नीला रङ्ग अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि उस में कुछ लाल रङ्ग

रहता है। यदि शोथ बैठाने के लिये विशेष प्रयत्न की आवश्यकता हो तो नारङ्गी रङ्ग का प्रयोग उत्तम है। यदि किसी प्रकार की स्थानिक वा व्यापी उत्तेजना की आवश्यकता न हो तो दाह दूर करने के लिये और शोधन के लिये गहरे हरे रङ्ग का प्रयोग उत्तम है। यदि दाह विशेष न हो केवल शोथ हो तो फीका हरा प्रयोग कर सकते हैं।

यदि हम चाहते हों कि क्रिया शीलता बढ़ जावे परन्तु दाह न हो तो जामनी (violet) रङ्ग का प्रयोग करना चाहिये। यदि दाह की शान्ति विशेष अभीष्ट हो, कुछ पाचन शक्ति को बल देना हो और कुछ क्रिया शीलता रखनी हो तो गहरे नीले रङ्ग (Indigo) का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार सूर्य की रंग दार किरणों से जल को भावित कर के पाञ्च भौतिक वा त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा हो सकती है,इस में कुछ संशय नहीं है। विज्ञ महानुभावों को जल चिकित्सा की उत्तमता ध्यान में रख कर अपने अनुभव करने चाहियें और उन्हें प्रकाशित करना चाहिये।

परिशिष्ट

(२)

मेहन स्नान

मूत्रेन्द्रिय के स्नान को मेहन स्नान कहते हैं। मूत्रेन्द्रिय स्नान की विशेष विधि है। इतना ही नहीं है कि मूत्रेन्द्रिय पर पानी डाल लिया जाय। जब मूत्रेन्द्रिय का स्नान अर्थात् मेहन स्नान करना हो तब एक मुलायम कपड़े का टुकड़ा या रेशम के कपड़े का टुकड़ा लो। मूत्रेन्द्रिय की त्वचा (limo-sis) को आगे को ओर इतना बढ़ाओ कि मूत्रेन्द्रियमुण्ड की खाल ढक जावे फिर उस कपड़े को ठंडे पानी में भिगोकर उस त्वचा पर पानी बार २ डालते जाओ और उस कपड़े से बहुत धीरे २ उस त्वचा पर आगे को स्पर्श करो। इस प्रकार ५ मिनिट से १० मिनिट तक मेहन स्नान करना पर्याप्त है। मेहन स्नान से वात संस्थान पर एक दम प्रभाव

पड़ता है। यहां तक देखागया है कि एक रोगी को आधे सिर में दर्द कई मास से रहती थी। उसने कटि स्नान ४ दिन किया परन्तु विशेष लाभ नहीं हुआ, पश्चात् ज्यूंहि प्रातः सायम् दो ही दिन मेहन स्नान किया कि उस की सिर दर्द बिलकुल दूर होगई। जिस रोगी क रीढ़ की हड्डी में दर्द हो उसको भी इससे फ़ायदा होता है। सारे शरीर पर दिमाग़ शासन करता है। दिमाग़ के कार्य को अच्छे से अच्छे रूप में नियमित करने के लिये इस स्नान से अच्छा और कोई स्नान नहीं है। वात संस्थान को यदि कोई मनुष्य बलवान करे तो उस के सब अङ्गों में स्फूर्ति (tone) प्रकट होती है। इस स्नान से भी मलों का स्राव बढ़कर शरीर शुद्ध होजाता है। कोई भी मनुष्य धैर्य से इस स्नान के द्वारा अपने आप को शुद्ध करले तो कालान्तर में सम्पूर्ण रोगों से मुक्त होकर सुखी, ओजस्वी, तेजस्वी बन जाता है।

परिशिष्ट

(३)

रोगोत्पादक जीवाणुओं के नाश में

जल चिकित्सा की सहायता

एक प्रश्न उठता है कि शरीर में विद्यमान जीवाणु जगत् के एक हिस्से में गुणकारी लाभदायक औषध का प्रयोग सफल होता है और दूसरे हिस्से में उसी रोग में उसी औषध का प्रयोग निष्फल होता है। इस का क्या कारण है।

इस का उत्तर यह दिया जाता है कि वह दूसरा हिस्सा शरीर में होते हुए भी कार्य की दृष्टि से बहुत दूर है, इतना दूर है कि चिकित्सा के लिये आर्सनिक (संखिया) की पूर्ण मात्रा की एक हज़ार गुणा मात्रा शरीर में प्रवेश कराई जाय तो उस के थोड़े से भाग का भी उस स्थान में कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता क्योंकि आर्सनिक उस में घुस नहीं सकता। इस के अतिरिक्त अन्य कई ऐसी अवस्था

ये भी हैं जिन में रासायनिक द्रव्य प्रवेश नहीं कर सकते हैं। जब उस स्थान की रक्त वाहिनियों की अन्तःकला रासायनिक द्रव्यों को गुज़रने न देगी उस के लिये रोक बन जावेगी तब वह द्रव्य उस स्थान में नहीं जावेगा। जब ग्रन्थि के स्रावक काष्ठ की दीवार में से वह द्रव्य नहीं गुज़र सकेगा तब भी वहां नहीं जावेगा। किन्हीं तन्तुओं में अंशों में या पूर्ण रूप से रक्तसञ्चार हो बन्द हो जावे तब उन तन्तुओं में वह द्रव्य नहीं जावेगा। रक्त वाहिनी में रक्त के जम जाने से भी वह द्रव्य नहीं जा सकता। सूक्ष्म रक्त वाहिनी के मोड़ में यदि छेद बन्द हो गया हो तब भी द्रव्य नहीं जावेगा। इस प्रकार उस स्थान में रहने वाले जीवाणु, रक्त सञ्चारी अपने नाश करने वाले द्रव्यों से, बिलकुल सुरक्षित हो जाते हैं। सिफ़लिस की हालत में इस प्रकार की अवस्था की कल्पना करना कुछ भी कठिन नहीं है। सिफ़लिस का रोग रक्त वाहिनियों का रोग है। रुग्ण रक्त वाहिनियों के कारण किसी स्थान विशेष में रक्त संचार रुक जाता है। इस

प्रकार उस स्थान में रहने वाले जीवाणु रक्त संचारी अपने नाश करने वाले द्रव्यों से बिलकुल सुरक्षित हो जाते हैं। सिफ़लिस की हालत में इस प्रकार की अवस्था की कल्पना करना कुछ भी कठिन नहीं है। सिफ़िलिस रोग में रक्त संचार रुक जाता है। इस प्रकार छोटे २ रक्त कोष बन जाते हैं। शरीर की रोगी हालत से अतिरिक्त स्वस्थ अवस्था में तिल्ली ही एक बड़ा सरक्त कोष है। शरीर में रक्त की मात्रा को सम रखने का काम तिल्ली करती है। शरीर में रक्त की राशि बहुत बढ़ जाय तो मात्रा से अधिक बढ़ा हुआ रक्त तिल्ली में इकट्ठा हो जाता है। शरीर में जब रक्त की अधिक आवश्यकता पड़ती है तब तिल्ली उस इकट्ठे किये हुए रक्त को बाहिर निकाल देती है। इसी से यह भी स्पष्ट है कि रोगोत्पादक जीवाणुओं से रक्त की राशि शरीर में बहुत बढ़ जावे तो तिल्ली जीवाणुओं सहित रक्त को अपने अन्दर भरलेती है। ऐसा होने से जीवाणु तब तक सुरक्षित रहते हैं जब तक शरीर में रक्त की मात्रा कम नहीं हो जाती। शरीर में रक्त

की मात्रा के कम हो जाने से तिल्ली में भरा हुआ रक्त शरीर में घूमने लगता है और जीवाणु भी स्वतन्त्र हो कर रक्त में चक्कर काटने लगते हैं।

सिफलिस में रक्त कोषों के बनने को रोकने के लिये दो बातों के लिये प्रयत्न करना पड़ता है एक तो यह कि रक्त वाहिनियां खुली रहें और दूसरी यह कि तिल्ली की संकोचन शक्ति बढ़जावे जिस कारण जीवाणु स्वतन्त्र रूप से रक्त में सन्चार कर सकें। जिस अवस्था में रक्त वाहिनियों में रक्त के जमाव के कारण रक्त कोष पैदा हो जाते हैं, उस अवस्था में नीम्बू की खटाई (citric acid) रक्त के जमने में बल को कम कर देती है इस प्रकार रक्त कोषों की रचना के साथ मुकाबला करने का अच्छा साधन बनती है। आर्सीनोबैन्ज़ीन (Arsenobenzene) के समासों की छोटी २ मात्रायें कई वार देने से भी रक्त के जमने की शक्ति कम हो जाती है। साल्वरसन(Salvarsan)की कई मात्रायें देने से रक्त के जमाव की शक्ति कम हो कर रक्त कोष खुलते तो हैं, परन्तु इस के प्रयोग से पहिले

नीम्बू की खटाई की पर्याप्त मात्रा देकर रक्त के जमने की शक्ति को कमकरना चाहिये पश्चात् रक्त कोषों को खोलने के लिये सालवरसन देना चाहिये इस प्रकार चिकित्सा अच्छी होती है।

त्वचा में रहने वाले रक्त कोषों को खोलने के लिये ताप और रक्त वाहिनियोंमे प्रसार पैदा करने वाले पदार्थों से मदद ली जाती है। रक्त का वेग त्वचा की ओर करके तिल्ली में संकोच पैदा किया जाता है या एड्रेनैलीन (Adrenaline) के प्रयोग से तिल्ली पर सीधा ही प्रभाव डाला जाता है।

सिफ़लिस के इलाज में ताप देने के लिये वाष्प स्नान का प्रयोग उत्तम है। ताप के कारण रक्तका वेग त्वचा की ओर होजावेगा, तिल्ली में संकोच पैदा होगा, और बहुत सा मल त्वचा के रस्ते से बाहिर होजावेगा। गर्मी के प्रभाव से और त्वचा में रक्त संचार बढ़जाने से रक्त कोप (Niduse) भी खुल जावेंगे। जब सालवरसन का प्रयोग आरम्भ नहीं हुआ था तब उष्ण वायु के स्नान बहुत उपयोगी समझे जाया करते थे। अब सिफ़-

लिस की रक्षा में ज्वरोत्पादक साधनों ने ख़ास स्थान प्राप्त किया है। बहुत से प्रयोक्ता समझते हैं कि sp. Pallida पर बड़ा प्रभाव उच्चतापमान का पड़ता है, परन्तु बन्द हुए कोष्टों को खोलने के लिये कुछ न कुछ प्रभाव इनका भी पड़ता है। Krundratitz ने सिफ़लिस का इलाज वही किया जो मलेरिया का किया जाता है। ७ वीं ८ वीं बार तापमान की वृद्धि हुई तो Sp Pallida रक्त में प्रकट हुआ। वह समझता था कि ज्वर के आक्रमणों ने Sp. Pallida के घोंसलों को खोलदिया है कि उन पर आर्सिनोबैन्ज़ोल के समासों का प्रभाव पड़ सके। यह भी ख़्याल किया जाता है कि ज्वर सम्बन्धी इलाजके पश्चात् रासायनिक द्रव्यों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि केवल ज्वर स्वयं Sp. Pallida को मारने में असमर्थ है।

इससे स्पष्ट है कि औषधचिकित्सा के साथ यदि जल चिकित्सा सम्बन्धी अनेक विधियों का प्रयोग किया जाय तो इस मिश्रित चिकित्सा से रोगियों को बहुत लाभ हो सकता है।

परिशिष्ट

(४)

शीत और उष्ण जल स्नानों का हृदय पर प्रभाव

उष्ण जल के द्वारा स्नान करने से रक्त का प्रभाव त्वचा की ओर हो जाता है। रक्त वाहिनियां फैल जाती हैं। रक्त वाहिनियों के फैल जाने से रक्त का वेग कम होजाता है। रक्त का वेग कम हो जाने से हृदय पर रक्त का बोझ कम होजाता है। हृदय शीघ्र और आसानी से रक्त को फेंकता है। उष्ण स्नान के द्वारा Systolee कम और Dystolee बढ़ जाती है। यदि शरीर के आशयों में रक्त भरजाने से conjestion होगया हो तो उष्ण जल स्नान या वाष्प स्नान करना चाहिये।

शीत जल के द्वारा स्नान करने से त्वचा की रक्त वाहिनियां सुकड़ जाती हैं। हृदय पर रक्त का

अधिक ज़ोर पड़ता है। Systolee बढ़ जाती है और Dystolee कम हो जाती है। शरीर के आशयों में रक्त जाने से आशयों को उत्तेजना मिलती है। भूख कम लगती हो तो तीव्र हो जाता है। मल साफ़ होता है। यदि आशयों में रक्त कम होने से आशय निर्बल हों तो शीत जल स्नान या त्वचा पर शीत का प्रयोग करना चाहिये।

गङ्गाराम-पाठक के प्रबन्ध से
गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित